दूसरे की तो मैं क्षणभर में ही खबर लेलेता। क्योंकि "पिता चाहे जो कहें अथवा अपमान करें तो भी विनयशील पुत्र का धर्म है कि वह उनके प्रति कभी उद्दण्डताका व्यवहार नहीं करे।" इस नीति सूत्रके अनुसार ही मुझे मौन धारण करना पड़ता है। ऐसी दशामें दिन रात पिताके त्राससे बचनेके लिए मैंने यदि नगरको भी प्रणाम कर लिया तो इसमें क्या अनुचित किया? बल्कि उनके लिए तो यह अच्छा ही हुआ। क्योंकि मैं पिताको अप्रिय था; अतः मुझे देखते ही प्रतिदिन वे मनमें न जाने क्या-क्या विचार करते रहते थे? अतएव मेरे चल देनेसे उनके चित्तको शान्ति प्राप्त होगी। साथही पिताजी मुझे युवराज पद देकर पछताये होंगे। यद्यपि मैं यह निश्चय नहीं कर सका हूँ कि मुझे कहाँ जाना है? फिर भी भाग्य जहाँ ले जाय, वहाँ जाना ही होगा। आज देश छोड़े कितने ही दिन बीत गये; किन्तु अभी तक भी मेरा कोई स्थान निश्चित नहीं हो सका है। इस तरह अनेक प्रकार के विचार उसके मस्तिष्क में उठ रहे थे। साथ ही क्षत्रिय स्वभावके अनुसार स्वाभाविक जोश भी उसके हृदयमें उमड़ रहा था।

सूर्यनारायण अस्ताचलको चले गये थे और

निशादेवीने अपने आगमन की सूचना दी। फलतः हमारे युवापथिकने रात्रिको चुनौती देते देखकर एक विशाल वट वृक्षके नीचे मुकाम कर दिया। रात्रि वहीं व्यतीतकर प्रातः सहस्र किरणकी साक्षी से आगे बढ़नेका निश्चय होनेसे उसने वहीं सोने की तयारी की। किन्तु उसी समय मनमें विचार हुआ कि इस प्रकारके भयंकर वनमें निर्भय होकर सोना उचित नहीं; क्योंकि निशाचर प्राणी रात्रिमें भटकते ही रहते हैं। अतः वे हिंसक वन-चर हमारी असावधानी से लाभ उठाकर हानि पहुँचा सकते हैं; इससे तो रात्रिमें जागते रहना ही उचित है। जिससे कोई विघ्न-बाधा नहीं सता सके। यद्यपि पिता द्वारा अपमानित होनेके साथ ही घर छोड़कर दीन-हीनकी भाँति भटकना जाते जी मरने के ही समान है; फिर भी मनुष्य को यत्नपूर्वक जीवन की रक्षा तो करनी ही चाहिए। क्योंकि जीवित मनुष्य ही 'भद्रा'-कल्याण प्राप्त करता है।" इस प्रकार विचार करते हुए उसने रात्रिका बहुत-सा भाग तो जागरणमें ही बिता दिया, साथ ही प्रभु-स्मरण भी किया।

रात्रिके तीन पहर व्यतीत हो गये और चतुर्थ प्रहर में राजकुमारको निद्राके झोंके आने लगे। यात्राके [illegible] और रात्रिके जागरणसे उसके हृदयमें व्याकुलता

बढ़ने लगी। क्योंकि शरीरको विश्रामकी आवश्यकता थी। स्वास्थ्यकेलिए कमसे कम छह घन्टे निद्रा आवश्यक होती ही है। अर्थात् प्रकृति के नियमको भङ्ग करनेसे तबियत बिगड़नेका भय बना रहता है। क्योंकि प्रकृति तो अपना कार्य किये ही चली जाती है। यदि उसके गति-विधिमें मनुष्य बलात्कार करके बाधा डाले या उसका भङ्ग करे; तो उसका अनिष्ट परिणाम भी भोगना ही पड़ता है। इस प्रकार प्रकृतिके विरुद्ध चलनेपर कौन सफल हो सकता है।

फलतः रात्रिके चतुर्थ प्रहरमें निद्रादेवीने राज-कुमारको अपनी गोदमें विश्राम लेनेको बाध्य कर ही दिया। उधर रात्रिकी धमा चौकड़ीसे थककर वनचर प्राणी भी अपने-अपने स्थानमें विश्राम करने लगे थे। ग्रीष्म ऋतुका समय होनेसे उस समयका शीतल मन्द पवन प्राणियोंकी शान्तिमें वृद्धि कर रहा था। अतः प्रातःकालमें प्रायः प्राणियोंको निद्रा अधिक ही सताती है, क्योंकि उस समयकी निद्रामें ऐसी मिठास होती है कि सूर्योदय होजानेपर भी मनुष्य जागना नहीं चाहता। रोगी, शोकी, वियोगी और दुखियाजनोंको भी प्रातःकालमें शान्त निद्राकी झपकी लगही जाती है।

उस प्रातःकालीन मधुर निद्रामें लीन युवराजको एक भावी लाभका सूचक दृश्य (स्वप्न) दिखाई दिया। स्वप्न में उसके सम्मुख बिजलीकी चमकके समान एक देव प्रकट हुए। उस तेजस्वी पुरुषको देखते ही युवराजने अपने नेत्र सफल करते हुए पूछा :—"आप कौन हैं, और यहाँ कैसे पधारे हैं?"

"मैं तेरा मित्र हूँ युवराज! तू मुझे नहीं पहचानता? किन्तु इस विपत्तिकालमें तेरी सहायता करने के लिए तो मैं देवलोकसे यहाँ आया हूँ।" उस दिव्य व्यक्ति ने कहा।

"आप देव हैं! मेरा अहोभाग्य है कि ऐसे सङ्कटके समय मुझे आपके दर्शन हुए हैं। आपके दर्शन से निश्चित ही मेरा जीवन सफल हो गया। पिताजी द्वारा अपमान किया जाना भी इस समय तो मेरे लिये हितकर ही सिद्ध हुआ है" इस प्रकार युवराजने आभार पूर्वक संतोष व्यक्त किया।

"राजकुमार! पिताजी की ओर से फटकार मिलने पर यदि तुझे दुःख होता है तो यह तेरी भूल है, क्योंकि पिता द्वारा पुत्रका निरादर उसके मङ्गल के लिए ही होता है। यद्यपि तेरे पिताने प्रकट में तेरा अनादर किया है; किन्तु उसके वास्तविक कारण

को तू नहीं समझ सका। फिर भी यह तो तू निश्चित समझना कि पिताका सबसे अधिक प्रेम तुझपर ही है। इतने पर भी तेरे लाभ के लिए उस वात्सल्य भावको छिपाकर उस उत्तम नरको तेरी भर्त्सना करनी पड़ी, इसके लिये अनेक कारण हो सकते हैं।" इस प्रकार उस दिव्य व्यक्तिने युवराजके मनका समाधान किया।

"आपका वचन कदाचित् सत्य हो सकता है। क्योंकि मैंने सुना है देवता कदापि असत्य भाषण नहीं करते, और वे विना किसी विशेष प्रसंगके प्रकट भी नहीं होते। अतः आपने प्रकट होकर मुझे जो हितकारी शिक्षा दी उसके लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ।"

"तुझे तो अपने पिताके प्रति भक्तिमान होना चाहिए। पुत्रके नाते पिताके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन अवश्य करना चाहिए। पिता चाहे जिस कारण को लेकर उपालम्भ दें; किन्तु उसमें उद्देश्य कुछ दूसरा ही होता है। अर्थात् पिता की वह शिक्षा पुत्रके लाभ के लिए ही समझना चाहिए। माता अपने प्रिय पुत्रको जो कड़वी दवा पिलाती है उसमें उसका हितही होता है। नीति शास्त्र में कहा है :—

"पितृभिस्ताड़ितः पुत्रः, शिष्यस्तु गुरु शिक्षितः।
घनाहतं सुवर्णं च, जायते जनमण्डनम् ॥१॥"

अर्थात् :—पिता-द्वारा ताड़न किया हुआ पुत्र, गुरुसे बारम्बार शिक्षा (दण्ड) पाया हुआ शिष्य और बड़े हथौड़े (घन) के प्रहारसे पिटा हुआ सोना, ये तीनों समाज में आभूषणरूप सिद्ध होते हैं ; यानी बड़ेही महत्वको प्राप्त करते हैं।"

"आपका कथन यथार्थ है। पिताजी जो भी बारम्बार मेरा अपमान करते थे ; किन्तु मेरे मनमें हमेशा यही विचार होता था कि उस अपमान को सहते हुए जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है, किन्तु अब वह भ्रम दूर हो गया है। फिर भी अब मैं वापस घर तो नहीं लौटना चाहता। विदेशमें घूम-फिरकर मैं अपने भाग्यकी परीक्षा करना चाहता हूँ। इसीलिए वापस घर न लौटकर आगे बढ़नेकी इच्छा रखता हूँ।" युवराज ने कहा।

"ठीक है। तेरा यह विचार भी प्रशंसा के योग्य है। अतः तेरी यह विदेश यात्रा सफल हो, इसकेलिये मैं तुझे कुछ देना चाहता हूँ।" यहाँ से दो कोस दूर नदी के तट पर परस्पर मिले हुए दो पीपल के वृक्ष हैं। उनके बीचमें एक सफेद पाषाण है। उसे बलपूर्वक एक ओर हटाने से उसके नीचे अठारह रत्न प्राप्त होंगे ; उन्हें तू लेकर अपने साथ रखना।

विदेशमें वे रत्न तुझे बहुत काम देंगे। तेरे लिए वे अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे। प्रत्येक रत्नका प्रभाव अलग-अलग है। बीस वर्ष पर्यन्त उन रत्नोंका प्रभाव बढ़ता रहेगा और फिर तो बहुत ही बढ़ जायेगा। उनमें पहले रत्नके प्रभाव से विष उतरता है; दूसरे रत्नके प्रभावसे किसीके भी जादू-टोने का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। तीसरे रत्नके प्रभावसे इच्छानुसार भोजन एवं खान-पान प्राप्त हो सकता है। चौथा रत्न संतान सुख प्राप्त कराता है। पाँचवा रत्न पासमें होनेपर बिना पढ़ेही सब कुछ ज्ञान हो जाता है। छठे रत्नके प्रभावसे रोग शोक निकट नहीं आ सकते। सातवें रत्न के प्रभाव से जहाँ जाओगे वहीं लक्ष्मी प्राप्त होगी। आठवें रत्नके प्रभावसे मन चाहा स्वरूप धारण किया जा सकता है। नवें रत्नके प्रभावसे नदी, सरोवर या विशाल समुद्रमेंसे तैरकर पार पहुँच सकते हैं। दसवें रत्नके प्रभावसे जवाहरातकी परीक्षा की जा सकती है। ग्यारहवें रत्नके प्रभावसे विवेक-बुद्धि जागृत होती है। बारहवें रत्नके प्रभावसे अग्निका उपद्रव शान्त होता है। तेरहवें रत्नके प्रभावसे शूलादिक रोग नष्ट होते हैं। चौदहवें रत्नके प्रभावसे वध-बन्धन प्राप्त नहीं होते।

पन्द्रहवें रत्नके प्रभावसे लोगों में मान सम्मान प्राप्त होता है, और सोलहवें रत्नके प्रभावसे राजाकी ओरसे सम्मान प्राप्त होता है। सत्रहवें रत्नके प्रभावसे जाति अन्ध (जन्मान्ध) भी देख सकता है और अठारहवें रत्नके प्रभावसे मनुष्यकी समस्त व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। इस प्रकारके अद्भुत प्रभाववाले अठारह रत्न मैं तुझे दिखाता हूँ। सो तू वहाँ जाकर उन सबको ले जाना।" यों कहकर वे देव अदृश्य हो गये।

प्रातःकाल हो जानेसे वनवासी पक्षियोंके मधुर कलरव यात्रियोंको जागृतकर सावधान कररहे थे। उन पक्षियोंके शब्दने राजकुमारको भी निद्रासे जगा दिया। निद्रा दूर होते ही वह एकदम उठकर बैठ गया। "अहा! कैसा सुन्दर स्वप्न! ऐसे संकट कालमें भी मेरा भाग्य अभी जागृत ही है। अतः चलकर पहले उस स्थान का पता लगाना चाहिए। दिन कितना चढ़ गया है। "एक पंथ, दो काज" नदीके तटपर जानेसे देवताके बताये हुए वे रत्न भी प्राप्त हो जायेंगे और देह शुद्धिके साथ मुख शुद्धि भी हो सकेगी। इस प्रकार निश्चय कर युवराज तत्काल नदीकी ओर चल दिया।

इष्टदेवको स्मरण करता हुआ कुमार नदीके तट पर जा पहुँचा। वहाँ नहा धोकर शुद्ध होने के बाद देवता

के कहे अनुसार वे पास-पास जुड़े हुए पीपलके वृक्ष उसने खोज निकाले। उनके बीचमें रखा हुआ सफेद पत्थर भी उसने देखा और ज्योंही शक्ति लगाकर उसे एक ओर हटाया कि उसके नीचे से पूर्वोक्त अठारहों रत्न दिखाई दिये। तत्काल ही युवराजने सावधानीके साथ उन्हें, अपनी थैली में रख लिये।

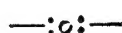
इसके पश्चात् संसार की विचित्रता पर मनमें विचार करता हुआ और उन देवताका आभार मनाते हुए भाग्यकी प्रशंसा करते युवराज वहाँ से आगे बढ़ चला।

यह युवराज मगध नरपति प्रसेनजित राजाका पुत्र बिम्बिसार—श्रेणिक था।



दूसरा परिच्छेद

भिल्ल बालाके पञ्जे में



सरिताका मन्दगतिसे प्रवाहित जल वनकी स्वाभाविक सुन्दरतामें वृद्धि कर रहा था। साथही सरिताका वह उज्ज्वल रूपहरा जल सूर्यके प्रचण्ड ताप

से थके-पके मुसाफिरोंको शान्ति प्रदान करता था। ग्रीष्म ऋतु होनेके कारण चार-पाँच समवयस्क कुमारियाँ उस सरिताके शीतल मन्द-प्रवाहमें स्नान कर रही थीं। यद्यपि उनकी देहका श्यामवर्ण अवश्य था, किन्तु फिर भी वे सुगठित एवं सुडौल थीं। वे बालाएँ जल क्रीड़ा करती हुई परस्पर जल उछालकर एक दूसरी को परास्त करने में व्यस्त थीं। इस प्रकार जल क्रीड़ा करते हुए उन्हें बहुत समय व्यतीत हो गया। अचानक एक बालाकी दृष्टि सामने की ओर गई और वह चौंककर बोली :—"अरी ! देख तो, वह कौन है ?" "कोई अपरिचित मनुष्य जान पड़ता है। यह कौन हो सकता है ?" उन भिल्ल कुमारिकाओं में से एक मुख्य बालाने अपनी सखियों से ही पूछा।

"अरी ! देख तो सही कि यह कितना सुन्दर है।" दूसरी एक बालाने कहा। हाँ ; है तो ऐसा ही ! किन्तु देखना, कहीं तू उस पर मोहित न हो जाना ! यों कहती हुई वह मुख्य भिल्ल बाला हँस पड़ी। उसके साथ अन्यान्य कुमारियाँ भी हँसने लगीं।

"चलो, हम उससे पूछें कि वह कौन है ?" इस प्रकार जल क्रीड़ा समाप्त कर वे सब बाहर आईं और अपने-अपने वस्त्र पहन कर तैयार हुईं कि तब

तक वह पुरुष नदीके तटपर आया और हाथ मुँह धोकर जल पीने लगा।

जलपान कर तृप्त हुए उस युवक को देखकर एक भिल्ल बाला उसके पास आई और पूछने लगी :—"आप कौन हैं ? और कहाँसे आरहे हैं ?"

इस पर उस पुरुषने भी उससे पूछा :—"तुम कौन हो ? और यह सब क्या है ?"

"यह भिल्ल लोगोंके रहनेका स्थान पल्ली ग्राम है। मेरे पिता इस बस्तीके स्वामी हैं। यहाँसे सौ-सौ कोस तक चारों ओर मेरे पिताकी हुकूमत चलती है। आप यहाँ पधारे, यह तो बहुत ही अच्छा किया। अब आप चलकर हमारे मेहमान बननेकी कृपा कीजिये। मेरे पिता आपका भलाभाँति सत्कार करेंगे। मैं भी आपकी सेवा करूँगी।" उस भिल्ल बालाने उससे अनुरोध किया।

किन्तु तुम्हारे पिताको मैं जब पहचानता ही नहीं, तब उनका मेहमान कैसे बन सकता हूँ ? इसी प्रकार जब तुम्हारे पिता इस प्रदेशके राजा हैं; तो उनके सामने मुझ जैसे साधारण मनुष्य की क्या गिनती है ? इस प्रकार उसने अकस्मात् आई हुई विपत्ति से छुटकारा पानेके लिये प्रयत्न किया।

इधर भिल्ल बाला कुमारका सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो गई थी ; अतः वह टक-टकी लगाये उसकी ओर देखती रही। उसकी इस चेष्टा को देखकर साथ में आई हुई अन्य भिल्ल बालाएँ हँस-हँस कर कहने लगीं "अरी, चलती है न घर! ले हम तो जाती हैं!"

"सखि! ऐसे अतिथि तो भाग्य योगसे ही पधारते हैं! भला, देख तो सही! ऐसा सुन्दर और शक्तिशाली युवा तूने इससे पहले कभी देखा है? हमारे वस्तीमें ऐसे सुडौल शरीरवाला कौन है?" ? उस भिल्ल बालाने अपनी बातका समर्थन करते हुए कहा।

"किन्तु इसे देखकर भी तू क्या करना चाहती है?" एक सखिने पूछा। "यह तो मैं तुझे फिर बताऊँगी, समझी! "ठीक! तब हम तो घर जाती हैं तू भले ही यहाँ ठहर!" यों कहती हुई वे सब चली गईं। भिल्ल कुमारी को एकाकी अपने पास खड़ी देखकर राजकुमार चौंका। भिल्ल बालाने अपने हाव-भाव एवं ललचानेवाली मधुर वाणी, श्याम सौन्दर्य और अभिनय कला द्वारा कुमार को ललचाना चाहा।

"तो आप हमारे आदरणाय अतिथि बनना स्वीकार करते हैं न?" इस प्रकार कहते हुए उस भिल्ल

-बालाने अलङ्कार रूप धारण किये हुए मोर-पंख नचाना आरम्भ किया।

किन्तु एक अनजान पुरुष से इतना आग्रह करते देखकर मुझे तुझपर आश्चर्य होता है। मुझे अभी बहुत दूर जाना है। इसलिए कृपा करके मुझे अपने मार्ग पर आगे बढ़ने दो।"

"तो क्या आप मेरा अनादर करके चले जाएँगे; मेरा आतिथ्य स्वीकार नहीं करेंगे? आह! आपको देखकर मेरे मनमें कितनी प्रसन्नता हो रही है!" उसने कुछ अधिक स्पष्टतासे अपनी मनोभावना प्रकट की।

"किन्तु एक अनजान पुरुषके प्रति तुम इस प्रकार स्नेह भाव दिखलाती हो, यह अनुचित है। भला, तुम इतना अधिक आग्रह किसलिये करती हो?" कुमारने पूछा।

"अरे, तुम इतना भी नहीं समझते; उसमें भी पुरुष होकर! स्त्रियों की तो बात ही क्या, किन्तु मुझ जैसी युवती कुमारियाँ आप जैसे सुन्दर पुरुषके प्रति यदि इतना स्नेह भाव दिखावें तो इसमें भी कोई खास कारण तो होना ही चाहिए! मैं तो आपकी शरणागत हूँ। आपकी दासी बनने आई हूँ।" इस प्रकार भिल्ल बालाने अपना मन्तव्य स्पष्ट किया।

"तो क्या तू मेरे साथ विवाह करने की इच्छा रखती है ?"

"मुझ जैसी युवती बालाएँ आपसे इसके सिवाय और क्या इच्छा रख सकती हैं ? आपको देखते ही मेरे अन्तर में काम की ज्वाला जाग उठी है। स्वामिन् ! मुझे अपनाकर उसे शान्त कीजिये !"

"अरी, तू यह क्या कह रही है ? भला, मैं एक भटकता हुआ परदेशी मनुष्य हूँ ! तू कहीं पागल तो नहीं हो गई है ! यदि तेरे पिताको पता लग जायगा तो वह तुझे और मुझे दोनों को ही जीवित नहीं रहने देगा। हमारी दुर्गति किये बिना नहीं रहेगा !"

"कुमार ! मेरे पिता कुछ भा नहीं कहेंगे। यदि आप मुझसे विवाह करलें तो पिताजी के भी आप आदरणीय बन जायेंगे। रात दिन मैं आपके चरणों की सेवा करूँगा। आपको सब प्रकार से सुखी बनाने का यत्न करूँगी। मेरे पिताके राज्य में आप ऊँचे पद पर अधिकारी हो सकेंगे। यदि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करलेंगे तो सब प्रकारसे सुखी होंगे।

"अच्छा ! यह बात है ?" इस प्रकार तिर्छी निगाहसे देखते हुए कुमारने कहा।

"हाँ ! मैं आपसे ठीक ही कह रही हूँ कि अबतो

आपको मुझसे विवाह करनाही पड़ेगा। मुझे अपनी दासी बनाना ही पड़ेगा !"

"और यदि मैं ऐसा न करूँ तो ?"

"तो आप मेरे पंजेसे बचकर नहीं निकल सकते ! सौ-सौ कोस तक मेरे पिताकी दुहाई फिरती है ? तब आप उससे बचकर कैसे जा सकते हैं ? अतः आप अपने ही हाथोंसे अपना अमंगल न करें। और मेरी प्रार्थना स्वीकार कर विवाह कर लें !"

भिल्ल कन्याकी इन प्रपञ्चभरी बातोंको सुनकर राजकुमार विचारमें पड़ गया। "अरे ! यह पिशाचिनी जैसी काली-कलूटी रण्डा कहाँसे मेरे पीछे पड़ गई ? यह नीच जातिकी मलिन वेष धारिणी अपवित्र नारी है ! इसे अपनाकर भला मैं अपने उत्तम कुलको कैसे बिगाड़ सकता हूँ ? मुझे देखकर ही यह कामातुर हो इस प्रकार की बातें कह रही है। सच है, क्षुद्र-ओछी श्रेणीके लोग भले-बुरेका विचार किये बिना जो मनमें आता है, कर डालते हैं। किंतु समझदार व्यक्तिको तो सोच समझकर आगे पाँव बढ़ाना चाहिए ; जिससे कि पीछे पछताना नहीं पड़े।" इस प्रकार विचार करनेवाला हमारी कथाका नायक स्वयं श्रेणिक ही था।

अठारह रत्नोंका प्रभाव सुनकर उन्हें अपने साथ गुप्तरूपसे रखते हुए कुमार श्रेणिक आगे बढ़ने पर इस भिल्ल बस्तीमें आ पहुँचा और नदीके तटपर भिल्ल राजकी पुत्रीके ही चक्रमें फँस गया। भला कहाँ यह भिल्ल कन्या और कहाँ श्रेणिक राजकुमार! कहाँ सरसोंका दाना और कहाँ मेरु पर्वत?

किंतु प्रकृतिके नियमका अनुसरण कर सियार भी सिंहको पींजरे या शिकंजेमें फँसा लेता है। क्या छोटे लोग बड़े बननेका प्रयत्न नहीं करते?

"बाला! तेरा मेरा सम्बन्ध किसी भी प्रकार जुड़ नहीं सकता। अतः तू मेरी आशा छोड़ दे, और अपने इस ग्राम या प्रदेशमें से ही किसी योग्य युवकको चुनकर उससे विवाह करले।"

"नहीं, आपहीको मेरे साथ विवाह करना होगा। अभी भी मैं आपसे विनयपूर्वक निवेदन करती हूँ। फिर भी आप नहीं समझते? सच है, संसारमें सीधी उँगलीसे घी नहीं निकलता। भिल्ल बालाने अपने जाति-स्वभावका परिचय देना आरम्भ किया।

"नहीं तो भिल्ल बाला! मुझ जैसे पुरुषका तू क्या कर सकती है? क्या तू अपने पिताको बुलाकर मुझे कैद करा सकती है! पिताकी सहायतासे क्या

अवश्य तू मुझसे विवाह कर सकती है?" कुमारने उसके अन्तरकी थाह लेना आरम्भ किया।

"आप यदि मुझसे विवाह कर लेंगे तो सब प्रकारसे सुखी हो सकेंगे। नहीं तो मैं अनेक प्रकारकी शक्तियाँ रखती हूँ। चाहे जिस शक्तिसे मैं आपको अपने वशमें कर सकती हूँ।"

"अरी, आखिर है तो तू नारी। तेरी क्या हिम्मत? स्त्रियोंका बल तो रुदनमें ही समाया रहता है! क्या तेरी शक्ति भी रुदनमें ही समाई हुई है?

"मेरी शक्तिका पता अभी आपको नहीं लगा है। जगत्में मणि मंत्र-तंत्र और औषधियाँ जड़ीबूटीके जो कुछ भी प्रभाव हैं; उन सबको मैं जानती हूँ। मैं मनुष्यको पशु और पशुको मनुष्य बना सकती हूँ। मैं व्याघ्र या सिंहसे भी नहीं डरती। भूत-प्रेत, पिशाच चोर या सर्प राक्षस-निशाचर सभी से मैं भय नहीं खाती। बड़ेसे बड़े गजराज-हाथीको भी कान पकड़कर खड़ा रख सकती हूँ। किंतु········इतना कहकर मनमें कोई विचार आजानेसे वह चुप हो गई!

"किंतु········और क्या कर सकती है? मालूम होता है तू बड़ी ही चतुर और शक्तिशालिनी है!"

"सो, तो कुछ नहीं; किंतु मैं संसारमें किसीसे

नहीं डरती। पानीकी बाढ़ आनेपर मैं भर-पूर नदीको तैरकर पार जा सकती हूॅ। भयङ्कर आॅधी तूफ़ानवाले जंगलोंमें अकेली घूम सकती हूॅ। केवल एकही ऐसी वस्तु है ; जिससे मैं डरती हूॅ।"

"वह कौनसी वस्तु है ?" राजकुमारने आतुरताके साथ भिल्लबालासे पूछा !

"वह वस्तु है अग्नि ! बस, केवल अग्निसे ही मैं दूर भागती हूॅ। बाकी तो सभी वस्तुओंको अपने अधिकारमें करनेके लिए औषधियों का प्रभाव मेरे हाथोंमें रहता है ! इसीलिए कहती हूॅ कि मेरी बात मानलो। भाग्य लक्ष्मीकी तरह मुझ जैसी भिल्ल राजकी रूपवती पुत्री स्वयं आपको वरण करने आई है ; अतएव अब मुॅह धोने मत जाइये !"

भिल्लबालाकी उस अद्भुत शक्तिकी बात सुनकर राजकुमार विचारमें पड़ गया था। उसने समझ लिया कि वास्तवमें ही मानवके रूपमें चुड़ैल या डाकिनी है। ऐसी नीच कुलकी कन्यासे विवाह कर मैं अपने उत्तम क्षत्रिय कुलको मलिन नहीं कर सकता। उस दशामें मैं क्या मुॅह लेकर जगत्में विचर सकूॅगा ? जरा-सी बात पर तो मैं पिताजीसे परस्त होकर घरसे

निकल पड़ा ; तो फिर अब इस नाच कुलकी कन्यासे विवाह करके मेरी क्या दुर्गति नहीं हो सकती ?"

इस प्रकार विचार करता हुआ कुमार आगे बढ़ा। उसे धीरे-धीरे चलते देखकर भिल्लबाला भी उसके पीछे-पीछे चलने लगी। किंतु पीछे चलते हुए भी वह राजकुमारको अनेक प्रकारके भयावने वचन सुनाती रही। उसने सोचाकि मधुर या नम्र वचन राजकुमार को ललचा नहीं सकते। अतएव भय युक्त शब्दों-द्वारा इसे वशमें करना ठीक होगा। किंतु थोड़ी ही देरमें उसे पता लग गया कि ये भयके वचन भी उसको प्रभावित नहीं कर सकते।

आगे चढ़नेपर दावानल जलता देखकर राजकुमारने अग्निस्तम्भन मणिका स्मरण किया और तत्काल वह उसमें कूद कर जा पड़ा। यह देखकर भिल्लबाला चकित होकर खड़ी रह गई! अहा! आश्चर्य!

तीसरा परिच्छेद

चूल्हे से बचे तो भाड़ में गिरे

वर्त्तमान समय और प्राचीन कालकी प्रवृत्तियों एवं परिस्थितियोंमें बहुत ही भिन्नता आगई है। प्रत्येक युगमें कुछ न कुछ तत्त्व अपना विशेष महत्त्व रखता ही है। हमारे इस उपन्यासका कथानक भी आजसे लगभग २५०० वर्ष पहलेका होनेसे आजके युगमें जो वस्तुएँ विद्यमान हैं, वे उस समय भी विद्यमान थीं, ऐसा सुननेमें नहीं आता। जब कि उस जमानेकी वस्तुएँ आज न भी हों, यह सम्भव है। विद्याधरकी विद्याकलाएँ, मणिरत्नोंके प्रभाव, संजीवनी आदि अनेक प्रकारकी अमूल्य औषधियोंका आज कहीं नाम तक भी सुननेमें नहीं आता। क्योंकि जिस जमानेमें जैसे पुण्यवान प्राणी उत्पन्न होते हैं; उन्हींके भाग्य योग्यसे वैसी ही वस्तुएँ भी उस समयमें विद्यमान होती हैं। आजका बुद्धिवादी मानव भले ही माने या न माने, किंतु संसारमें अनेक दिव्य वस्तुएँ

मौजूद हैं। फिर भी विना भाग्यके वे किसीको प्राप्त नहीं हो सकतीं।

श्रेणिक कुमारका भाग्य भी अद्भुत था। इसीलिए वह पितासे नाराज होकर वनमें चल दिया। मार्गके सङ्कटोंको सहता हुआ वह आगे बढ़ रहा था कि इसी बीच वज्रकर पर्वतके निकट कुमारको पुण्ययोगसे देव का दर्शन हुआ और अचिंत्य प्रभाववाले अठारह रत्न उसे प्राप्त हो गये। क्योंकि पूर्वकालके महान् पुण्यके योगसे ही देवता का दर्शन होता है और उनके दर्शन मात्रसे उसके समस्त दुःख-दारिद्र एवं शोक सन्ताप नष्ट हो जाते हैं।

ऐसेही एक रत्नके प्रभावसे राजकुमार श्रेणिक अग्निमें प्रवेश करके भी सुरक्षित बाहर निकल गया। क्योंकि इस प्रकारकी नीच नारीके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेकी अपेक्षा उसे मृत्यु ही श्रेष्ठ जान पड़ी। कुल को कलंक लगाकर पूर्वजोंकी कीर्ति नष्ट करते हुए जीवित रहने की अपेक्षा मृत्यु क्या बुरी है? धन देकर शरीरकी रक्षा करना और उस शरीरके द्वारा कुलकी लाज बचाना मनुष्यका परम धर्म है। क्योंकि संसारमें जिसकी इज्जत या प्रतिष्ठा अथवा माननीय स्थिति नहीं है; वह जीते हुए भी मुर्देके ही समान

है। इसीलिये बुद्धिमान पुरुष नीच कार्य करके संसारमें निन्दाके पात्र नहीं बनते—अपने कुलकी कीर्तिमें कलङ्क नहीं लगाते।

वह भिल्लबाला मन्त्र, तन्त्र और औषधियोंके प्रभावसे अनेक प्रकार शक्तिशाली थी अतः उसके पञ्जेसे छूटनेके लिए अग्निकी शरण लिये बिना अन्य कोई मार्ग ही नहीं था। उसके सामने दोही मार्ग थे या तो अग्निकी शरण या भिल्लबालाका ग्रहण! किन्तु उसके साथ विवाह करनेमें श्रेणिकको अनेक प्रकारसे हानि एवं सङ्कट की ही सम्भावना जानपड़ी।

"स्वयं उत्तम क्षत्रिय होते हुए भी उसे भील जैसा बनना पड़ता! न करने योग्य अनेक काम करने पड़ते। और उसके माता-पिताको नमन करना पड़ता। इस प्रकारकी अनेक विडम्बनाएँ उस दुष्ट स्त्रीके पञ्जेमें फँसनेसे सहन करनी पड़ती!" इन्हीं सब बातोंको सोच-कर वह उस बालासे पीछा छुड़ानेके लिए आगे बढ़चला; इधर वह भिल्लबाला भी उसके आकर्षणसे खिंचती हुई पीछे-पीछे चलने लगी। भय और प्रीति द्वारा उसे यही प्रतीत हुआ कि राजकुमार मुझसे विवाह कर लेगा। किन्तु मोहित और स्वार्थी मनुष्योंको मनमें छिपे हुए भावोंका कैसे पता लग सकता है?



अग्नि में रहते हुए श्रेणिक ने कहाः— 'हे बाला ! आओ आओ विवाह कर लें' पृष्ठ २५

कुमारको अग्निकी ज्वालामें कूदते देखकर भिल्लबाला चौंक पड़ी। उसकी अनेक आशाओंपर पानी फिर गया। अनेक प्रकारकी औषधियोंकी शक्ति रखते हुए भी वह अग्निसे टक्कर लेनेमें असमर्थ थी। इसीलिए उस सुन्दर राजकुमारको फिरसे प्राप्त करनेके लिए उसे कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा। इतने ही में अग्निमें रहते हुए श्रेणिकने कहा :—"हे बाला! आओ! आओ! विवाह करलें!"

यह सुन भिल्लबाला हाथ जोड़ कर विनय करने लगी। साथ ही मन ही मन पश्चात्ताप करते हुए उसने कहा :— 'स्वामिन्! बाहर आइये! बाहर आइये! मैं निरन्तर आपके चरण कमलकी सेवा करूँगी। आपकी आज्ञाके विरुद्ध एक पग भी इधर-उधर नहीं हटूँगी।"

"अवश्य ही, बाला! तेरे समान स्त्री बिना भाग्यके किसी भी पुरुषको कैसे मिल सकती है? यदि तू सच्चे हृदयसे मुझे चाहती हो तो मेरे पास चली आ!" राजकुमारने व्यंगमें कहा।

"अरे स्वामी! अग्निको देखकर तो मैं वैसेही जला जा ही हूँ। उसमें फिर अन्तरमें भी कामाग्नि अलग मुझे जला रही है। बाहरसे यह दुष्ट अग्नि मुझे भस्म करनेको उत्सुक हो रही है। हे प्राणनाथ!

इन दोनों भयसे आपही मेरी रक्षा कर सकते हैं। अतः मुझे बचाइये!"

"तो फिर यदि मेरे साथ विवाह करनेकी तेरी इच्छा नहीं हो तो मैं तुझसे विदा होता हूँ। आज तो जा रहा हूँ; किंतु फिर कभी तेरे पितासे मिलनेका अवश्य प्रयत्न करूँगा।" इस प्रकार उसे उत्तर देकर कुमार मन ही मन मणि रत्नके प्रभावका स्मरण करता हुआ उस दावानलसे आगे बढ़ गया।

कुमारको अपनी आँखोंसे ओझल होते देखकर भिल्लबाला हाथ मलने लगी। वह अपना सर्वस्व नाश हो जानेकी भावनासे विलाप करने लगी। "हे स्वामिन्! आप कहाँ चले गये! हाय हाय! मेरा तो भाग्य ही बुरा है कि इस प्रकार आप मुझे निराश कर चल दिये। भला! दरिद्रीके घरपर कल्पवृक्ष कब तक रह सकता है? भाग्यहीन मानव भी कभी चिंतामणि रत्न प्राप्त कर सकते हैं? अथवा यों कहना चाहिए कि मैंने ही जल्दी करके अपनी शक्तिकी चर्चाकर प्रभाव दिखाने का निरर्थक प्रयत्न किया। लोग ठीक ही कहते हैं कि स्त्रियोंका हृदय तुच्छ होता है। उनके पेटमें कोई बात टिकने नहीं पाती। यही बात मैंने अपने व्यवहारसे सिद्ध कर दी। यदि मैंने बातचीतमें

जरा भी सावधानी रखी होती तो ; अवश्य ही आप मुझसे विवाह कर लेते ! किंतु मैंने तो अपने हाथोंसे ही अपना भाग्य फोड़ लिया। हाय! अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? भला, रङ्कके घरमें ऐसा रत्न कैसे रह सकता है। इस प्रकार विलाप और पश्चाताप करती हुई भिल्लबाला बड़ी देर तक दावानलकी ओर देखती रही। क्योंकि अनेक प्रकारसे शक्ति सम्पन्न होते हुए भी वह अग्निके भयके सम्मुख विवश थी। अतः सिवाय छाती और सिर पीटने के उसके लिए अन्य कोई मार्ग ही शेष नहीं रह गया था। उसके विलाप विनय पूर्ण वचन एवं करुणापूर्ण हाव-भावकी पर्वाह न करके राजकुमार इस आकस्मिक संकटसे बचकर चल दिया। कुमार विना पीछे की ओर देखे आगे बढ़ता ही चला गया। कुछ दूर जाने पर उसे बड़े माहात्म्यवाली सरिता-गङ्गाके दर्शन हुए। वहाँ उसकी दृष्टि एक सूखे वृक्षपर पड़ी। उससे अपूर्व सुगन्ध निकल रही थी। फिर भी उस अनमोल वृक्षका उस निर्जन वनमें क्या महत्व हो सकता था! भला, रत्नकी परीक्षा जौहरीके सिवाय दूसरा कौन कर सकता था?

कुमारने चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई। क्योंकि अब तो वह भिल्लबाला भी अदृश्य हो चुकी थी।

अतः उसने पास जाकर उस सूखे वृक्षकी परीक्षा करना आरम्भ किया। तत्काल ही उसे पता लग गया कि यह चन्दनका वृक्ष है। उसने सोचा "अहा! यह कितना अनमोल चन्दन है! यदि यह नगरमें कहीं होता तो इसका उचित मूल्य होता! किंतु आज तो जङ्गलमें अनाथकी तरह खड़ा है। सच है, प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर होनेसे ही उसका मूल्य और महत्त्व हो सकता है। इस प्रकार सोचते हुए वह चन्दनके वृक्ष पर चढ़कर चारों ओर देखने लगा। उसे एक ओर जहाँ गङ्गाकाप्रवाह दिखाई दिया ; वहीं दूसरी ओर घोर दावानल जलता हुआ दृष्टिगोचर हुआ। अतएव वह यह निश्चय न कर सका कि किस ओर जाँय! इतनेहीमें वह वृक्ष (ठूंठ) एकदम ढहकर गंगाके प्रवाहमें गिर पड़ा।

भला, जबतक विधाताकी दृष्टि क्रूर रहती है ; तब तक मनुष्य किसी प्रकार भी सुख कैसे प्राप्त कर सकता है? भाग्य हीन मनुष्यके लिए तो संकट आगे-आगे ही दौड़ता चला जाता है। वह जैसे तैसे किसी एक संकट से छुटकारा पाता है कि तब तक दूसरा संकट सामने तैयार मिलता है। फिर भी सब प्राणियोंके भाग्य एक जैसे नहीं होते। राजकुमार श्रेणिकने उस भिल्लबालाके पंजेसे छुटनेके लिये दावानलमें प्रवेश किया और



वह वृक्षही टूटकर गंगामे गिर पड़ा ।

पृष्ठ २९

गंगा तटपर आकर चन्दनके वृक्षपर चढ़कर चारों ओर दृष्टि दौड़ाई ; तो वह वृक्षही टूट कर गंगामें गिर पड़ा। और वह भी अगाध प्रवाहमें ! इस सिवाय विधि विडम्बनाके और क्या कहा जा सकता है ?

किंतु इस प्रकार गंगाके प्रवाहमें पड़तेही राजकुमार ने जल-तारक रत्नका स्मरण किया और उसके प्रभावसे महान् सरिता-गंगा देवी भी उसको कोई हानि न पहुँचा सकी। और उसे वृक्षकी शाखापर बैठाकर सरलतापूर्वक आगे बहा ले चली। इस प्रकार वह लगातार बीस दिनों तक गंगाके प्रवाहमें बहता चला गया। वह वृक्षकी शाखापर इस प्रकार बैठा रहा, मानों किसी सुदृढ़ नौकामें भ्रमण कर रहा हो। क्योंकि उसके पास वे अठारह रत्न थे ; अतः गंगाके प्रवाह में भी वह सुरक्षित ही रहा। सच है, संकटके समय भी विधाता सुरक्षा के लिए कोई न कोई साधन सुलभ कर ही देता है !

इस प्रकार कुछ दिनों तक गंगाकी यात्रा करके राजकुमार गंगाके किनारे एक बड़े नगरके निकट पहुँचा। और जैसे ही वह किनारेपर उतरा कि उस चन्दनकी सुगन्धसे आकर्षित होकर चारों ओर भौंरे गूँजने लगे। वह गंगा तटपर थोड़ी देर विश्राम करके

नगरकी शोभा निहारने लगा। उसे अनेक व्यक्ति गंगा तटपर बातचीत करते एवं जलक्रीड़ा करते दिखाई दिये। नये-नये वस्त्र पहिन कर स्त्रियें अपने सौन्दर्यसे नगरकी शोभा बढ़ा रहीं थीं। वे गंगासे जल भरे हुए घड़े लेकर हँसी-मजाक करती हुईं घर लौट रही थीं। नगरकी उस शोभाके अनेक दृश्य देखता हुआ कुमार मन ही मन विचार करने लगा। "अरे! कहाँ मेरा राजगृह नगर और कहाँ यह बेन्नातट नगरी! कहाँ वह मेरा राजकुमारके रूपमें अपूर्व वैभव और कहाँ आजकी मेरी यह प्रवासीके रूपमें स्थिति?

चौथा परिच्छेद

बेन्नातट नगरमें

"स्थान मुत्सृज्य गच्छन्ति, सिंहा सत्पुरुषा गजाः।
तत्रैव निधनं यान्ति "काका कापुरुषा तथा ॥ १ ॥"

अर्थात् :—"सिंह सत्पुरुष और गजेन्द्र-हाथी एक स्थानमें पराभव होते ही तुरन्त दूसरे स्थानमें चले जाते

हैं। किंतु कौए और कापुरुष (डरपोक) पराभव होनेपर भी उस स्थानको नहीं छोड़ते, वहीं पर नष्ट हो जाते हैं।"

श्रेणिक कुमार जिस चन्दनके वृक्षपर बैठकर यहाँ तक आया था, वह बावना चंदन ही था। अतएव उसकी सुगंधसे मार्गपर आने जानेवाले अनेक मनुष्योंका ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। थोड़ी ही देरमें सारे नगरमें वायुवेगसे उसकी चर्चा फैल गई। अतः बड़े बड़े व्यापारी उसे खरीदनेके लिए वहाँ पहुँचे। जिस प्रकार सुगंधित पुष्पके आसपास भौंरे अनायासही आकर गूँजने लगते हैं, उसी प्रकार थोड़ी ही देरमें वहाँ अनेक व्यापारी आकर राजकुमारसे उस चंदनके लिए मोल-तौल और बातचीत करने लगे। फलतः श्रेणिक कुमारने भी उन्हें उचित उत्तर दिये।

एक व्यापारीने पूछा, "हे सज्जन ! इस चन्दनके वृक्षको बेचना चाहते हो या नहीं, यदि आप इसे बेचना चाहते हैं, तो इसका क्या मूल्य होगा ?"

"सेठजी ! यह बहुमूल्य बावना चन्दन है ! क्या इसको खरीद सकने वाले आपके नगरमें हैं ?"

"राजकुमार ! आप यह क्या कह रहे हैं ? इस नगरको आप ऐसा वैसा नगर मत समझिये ! इस धन-धान्यसे भरे पूरे नगरमें चाहे जैसी बहुमूल्य वस्तुको

खरीदने वाले भी मौजूद हैं! यह तो क्या; किंतु इससे भी अधिक चन्दन खरीदनेके लिये हमारे नगरके लोग समर्थ हैं! अतः आप बतलाइये कि इसका क्या मूल्य लेना चाहते हैं?" एक बड़े व्यापारीने कहा।

"यह बहुमूल्य चन्दन है। इसकी क्या बात कही जाय! यदि मणि माणिक्यसे भी इसको तौल कर इसके बराबर मूल्य दिया जाय तो भी वह मेरे लिए पर्याप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार कुमारने चन्दनका मूल्य बतलानेका प्रयत्न किया।"

"यदि आप इसे बेचना चाहते हों तो ठीक मूल्य बतलाइये। नहीं तो आपका माल है। ग्राहक स्वयं ही चलकर आपके पास आये हैं; अतः बहुत महँगा भाव न बतलाइये। लक्ष्मी जब तिलक करने आवे तब मुँह धोनेके लिए जाना उचित नहीं कहा जा सकता। क्योंकि गया हुआ समय फिर वापस नहीं आ सकता। अतः ठीक तरह विचार कर कीमत बतलाइयेगा तो सौदा पट जायेगा!

"सेठजी! आपका कथन ठीक है, मैं इसे सोनेके बराबर तौलकर दे सकता हूँ। क्योंकि जो उत्तम वस्तु होती है, वह शीघ्रही बिक जाती है। अतः जिसे चाहिए

वह खुशीसे खरीद सकता है। इस प्रकार श्रेणिक कुमारने चन्दनका वाजिब भाव बतलाया।

इतने ही में वहाँ पर बहुत सी भीड़ एकत्रित हो गई। यह देखकर दो एक बड़े व्यापारियोंने यह सोचा कि इस भीड़के कारण कदाचित् यह अकेला परदेशी घबरा जायगा और लोग इसका चन्दन लूट लेंगे। अतएव उन्होंने दर्शकोंको हटाना आरम्भ किया। उन्होंने कहा :— "लोगों! दूर हट जाओ। तुम नहीं देखते कि यह अकेला है विदेशी है और हम इतने हैं। यदि इसका चन्दन जरा भी इधर-उधर हुआ तो उसके लिए हम सब जिम्मेवार होंगे। अतः कोई इसमें हाथ न डालें। यदि कोई ऐसा करेगा तो वह चोर समझा जायगा। और राजदरबारसे उसे चोरीका दण्ड दिया जायगा। क्योंकि राजाका काम न्यायकी रक्षा करना ही होता है।"

फलतः व्यापारियोंके सिवाय अन्य लोग धीरे-धीरे बिखरने लगे। भाव निश्चित हो जाने पर व्यापारियोंने उस चन्दनको चीरने, फाड़ने और तौलनेके लिए कुल्हाड़े आदि नगरमें से मँगवाये। क्रमशः चन्दनके टुकड़े किये जाकर जिसे जितने चन्दनकी आवश्यकता थी; उसने उतने ही वजनका सोना देकर चन्दन ले लिया। इस प्रकार कुमारका सब चंदन बिकने पर बहुतसा सोना

उसे मिल गया। यह भी भाग्यकी विचित्रता ही कही जा सकती है।

किन्तु इसके बाद कुमारके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि इतना सोना साथ लेकर कैसे घूमा जाय? और यदि इसे रखा भी जाय तो कहाँ और किसके पास रखे? किन्तु अन्तमें वह इस निर्णय पर पहुँचा कि सोना देकर रत्न खरीद लिये जायँ! अतः उसने रत्न खरीद लिये और उन रत्नोंको साथ लेकर कुमार साधारण वेषमें नगर की ओर चला।

नगरके मनोहर मकान, मजबूत नगर कोट और उसके विशाल दरवाजे एवं बाजारकी पंक्तिबद्ध दुकानें तथा उनमें आने जानेवाले लोगोंको देखता हुआ वह नगरके मध्यभागमें होकर आगे बढ़ा। कहाँ जाना, यह तो निश्चय था ही नहीं और न उस नगरमें उसका कोई परिचित ही था कि जिसके घर जाकर वह ठहर जाता।

इस प्रकार सारे नगरमें घूमते हुए वह एकदम थक गया। वह उकताकर विश्रान्ति लेनेका विचार करने लगा। किन्तु कहाँ बैठे यह समझमें नहीं आरहा था। परदेशमें अनजाने मनुष्यके लिये अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ खड़ी हो जाती हैं। बिना जान-पहचानके कौन घरमें टिका सकता है? मुसाफिरको शीत, घाम, भूख-प्यास,

शयन-आसन आदि अनेक प्रकारके कष्ट भोगने पड़ते हैं। रात्रिके समय जहाँ भी एकान्तमें जगह मिले वहींपर नाना प्रकारके कष्ट सहते हुए पड़े रहकर समय बिताना पड़ता है। ये सारी बातें मनुष्यको बिना स्वयं अनुभव किये समझमें नहीं आती। इस प्रकार विचार करता हुआ कुमार अन्तमें थककर किसी एक सेठकी दुकानके बाहर चबूतरे पर आराम लेनेके लिए जा बैठा। उसे विचार हुआ कि कहाँ मेरा राज-भवन और कहाँ आजकी यह स्थिति? इसे केवल भाग्यकी लीला ही कह सकते हैं। अन्यथा सौ-सौ पुत्र होते हुए भी पिताजी अकेले मुझसे ही क्यों नाराज होते?

श्रेणिककुमारके उस चबूतरे पर बैठनेके बाद जिस सेठकी वह दुकान था, वह भी ग्राहकोंको सौदा देते देते थक गया था। और उसे लाभ भी अधिक हो रहा था। आज उत्सवका दिन होनेसे वह जहाँ बहुत ही फ़ुर्तीसे दस पाँच ग्राहकोंको निपटाता था कि तबतक फिर नये ग्राहक आपहुँचते थे। इस प्रकार उसे बहुत ही परेशानी होरही थी। साथ ही उसे रुपये-पैसेका अच्छा लाभ हो रहा था। अतएव वह विचार करने लगा कि:— "आज इस प्रकार लाभ होनेका क्या कारण हो सकता है? क्या फिरसे मेरा भाग्योदय होरहा है अथवा

अन्य मनुष्यका भाग्य ही मेरे लिए लाभका कारण हो रहा है ! आज तो मेरे लिए सोनेका ही सूर्य उदय हुआ है।"

इस प्रकार ग्राहकोंसे हिसाब चुकाते हुए सेठजीकी दृष्टि चबूतरे पर बैठे हुए युवककी ओर गई। उस समय वह पूरे बीस वर्षका भी नहीं हुआ था। साधारण और सफेद वस्त्र पहने हुए भी वह बहुत ही सुन्दर और भाग्यवान प्रतीत होरहा था। फिर भी वह परदेशी जान पड़ता था। सेठने सोचा कि निश्चित ही इसीके भाग्यसे आज मुझे इतना लाभ हुआ है। मैंने जो स्वप्न देखा था, वह इस प्रकार सत्य सिद्ध होगया।

किन्तु ग्राहकोंकी भीड़के कारण सेठजीको विशेष विचारनेके लिए समय नहीं था और ग्राहकोंके हो-हल्लेमें ऐसी विचार धारा कितनी देर टिक सकती है। अतएव सेठजीने व्याकुल होकर उस चबूतरे पर बैठे हुए युवकसे अपने काममें सहायता लेनेकी इच्छा की। सेठने युवकसे कहा :—"अरे भाई जरा मेरी सहायता करो! और मैं बतलाऊँ उन-उन वस्तुओंकी पुड़ियाएँ बाँधकर देते जाओ, तो मैं शीघ्रतासे ग्राहकोंको निपटादूँ !"

"अच्छी बात है!" कहकर कुमारने सेठकी दुकानमें

जाकर उसकी बताई हुई वस्तुओंकी पुड़ियाएँ बाँधकर ग्राहकोंको निपटाना आरम्भ किया। कुमारकी फुर्ती एवं चपलतासे उस दिन सेठजीको खूब लाभ हुआ। जगत्में जिसका भाग्य जागृत होता है उसे किस बातकी कमी रह सकती है। भले ही देश हो या परदेश।

अपनी मातृभूमिसे मनुष्य भले ही निर्धन अवस्थामें क्यों न निकल पड़ा हो ; किन्तु पुण्यवान पुरुषके साथ लक्ष्मी सदैव रहती ही है। वे अपने भुजबल एवं चतुराईसे लक्ष्मीको स्वतः अधीन कर लेते हैं। भाग्य हीनोंको ही पद-पद पर ठोकर खानी पड़ती है। अर्थात् राजकुमार श्रेणिकका भाग्य भी जागृत होनेसे यदि लक्ष्मी छायाकी तरह उसके पीछे-पीछे दौड़ती आवे तो क्या आश्चर्य था ?

ग्राहकोंका काम पूरा होनेके बाद सेठजीने पूछा :— "कुमार ! तुम कोई परदेशी जान पड़ते हो। बतलाओ, तुम कहाँसे आरहे हो ? और किनके अतिथि होना चाहते हो ?"

'सेठ साहब ! मैं बहुत दूरसे आरहा हूँ ; और यहाँ अभी तक तो मैं किसीका भी अतिथि नहीं बन सकाहूँ। किन्तु अब आपका अतिथि अवश्य बनना चाहता हूँ।"

"यह तो बहुत ही प्रसन्नताकी बात है कि आप मेरे अतिथि बन रहे हैं!" सेठजीने कहा।

"किन्तु मेरे कारण आपको कोई कष्ट या असुविधा तो नहीं होगी?" कुमारने पूछा।

"अजी, आप यह क्या कह रहे हैं! आप जैसे मेहमान तो भाग्यसे ही आते हैं। आलसीके घरमें गंगाजी स्वयं पधारी हैं और दरिद्रके घर लक्ष्मीजीने स्वयं पदार्पण किया है!"

उन सेठका नाम धनावह था। पहले तो उनके यहाँ धनका अटूट भण्डार भरा हुआ था; किन्तु इन दिनों कर्म संयोगसे वह निर्धन हो रहे थे। अर्थात् उस दरिद्री धनावह सेठकी दरिद्रता दूर करनेके लिए ही मानों कामदेवके अवतारके समान इस श्रेणिककुमार को विधाताने उसके घर भेजा था।

भोजनका समय होनेपर धनावह सेठने श्रेणिककुमारको साथ लेकर दुकान बन्द की और उसे अपने घर ले चले।

———

पाँचवाँ परिच्छेद

नन्दा

—:o:—

आज कितने ही दिनोंसे नव यौवनके प्रदेशमें विचरनेवाली एक युवतीकी दृष्टि एक वस्तु पर पड़ चुकी थी और जबसे उसने उस वस्तुको देखा था, तबसे उसके हृदयमें जो भाव अबतक उत्पन्न नहीं हुए थे, वे अनायास ही आज उत्पन्न हो उठे। बाला अपने वायु वेगसे दौड़नेवाले मनको रोकनेका भर सक प्रयत्न कर रही थी; किन्तु उसे जरा भी चैन नहीं थी। वह पढ़ने-लिखने या भोजन बनाने अथवा बुनने-सीने या उत्तमोत्तम ज्ञान-वैराग्यवर्धक पुस्तकोंके अवलोकनमें अपना समय व्यतीत कर स्मरणमें आनेवाले दृश्यको भूल जानेका प्रयत्न करती; किन्तु अब-अब तो किसी भी काममें उसका मन नहीं लगता था। अर्थात् जिस प्रकार उसका शरीर यौवन एवं सौन्दर्यमें विहार कर रहा था; उसी प्रकार उसके मनको भी दिवानी-जवानी की विषैली हवा लग जानेसे वह और भी गहरा-गहरा उतर रहा था। संसारमें विहार करने और नित्य नये सुख उपभोग करनेके लिये लालायित हो रहा था।

इसी कारण आज वह बहुत ही व्याकुल थी। भला, मनके आधीन हो जानेवाली वह बाला कर ही क्या सकती थी! संसारके मार्गमें भटकनेवाले मनको क्या कोई शीघ्रतासे वशमें कर सकता है?

वह बाला धनावह सेठकी पुत्री नन्दा थी। वह पढ़ी-लिखी एवं समझदार कन्या थी। विवेक, मर्यादा, रीति-नीतिको भलीभाँति पालन करती थी। साथ ही धर्मशास्त्रकी भी जानकार होनेसे बाला होते हुए भी ज्ञानकी दृष्टिसे गम्भीर एवं धर्म कार्यमें पूर्ण प्रीति रखती थी। अतः इस प्रकार सुशील बालाकी दृष्टि अपने घर आये हुए मेहमान पर पड़ते ही उसका चित्त विचलित होगया। वह जैसे-जैसे चित्तको रोककर दूसरी ओर लेजानेका प्रयत्न करती; वैसे-वैसे वह उस अतिथिकी ओर ही विशेष रूपसे आकर्षित होती; अतएव वह बेचारी निरूपाय हो गई। अन्तमें वह विवश होकर उस मेहमानके विषयमें ही दिन रात अनेक प्रकारके विचार करने लगी। उससे मिलनेके लिए मनमें नाना प्रकारके मनसुबे बाँधती और बारम्बार एक टक नजर लगाये उसकी ओर देखा करती। फिर भी उसके नेत्र तृप्त नहीं होते थे। कुमारको देखते ही उसका हृदय पुलकित हो उठता। अन्तरमें अनेक प्रकारके विचार

उत्पन्न होनेसे उसका हृदय काँपने लगता। अनायास ही उसके द्वारा विचित्र प्रकारके हावभाव प्रकट हो-जाते। एकबार देख लेने पर भी उस मनमोहिनी सूरतको देखनेके लिए उसका मन उत्सुक रहता। अपने माता पिताकी मौजूदगीमें वह बेचारी चोरी छुपकेसे उस मदनमूर्त्तिको देखा करती। उससे वार्तालाप करना भी उसे अत्यन्त प्रिय जान पड़ता। और उससे परिचय बढ़ानेकी इच्छा करती। वह सोचती :—"यदि यह परदेशी मेरा प्यारा स्वामी बन सके तो कितना अच्छा हो!" इस प्रकारके अनेक मनोरथ उसके युवा हृदयमें उथल-पुथल मचा रहे थे और उन विचारोंके तूफ़ानके सम्मुख वह बेचारी परास्त हो जाती थी। वह प्रयत्न करके भी अपने मनको शीतल न कर पाती थी।

"संसारमें सुख तभी मिल सकता है जब कि स्त्री-पुरुष दोनोंके स्वभाव मिलते हुए हों। अर्थात् यदि दोनोंके मन मिले हुए हों और परस्पर प्रीतिकी सुदृढ़ शृङ्खला हो तो कहना ही क्या? वैसे विवाह तो कौन नहीं करता? उसने सोचा कि जब मेरा मन इस कुमारकी ओर इतना अधिक आकर्षित हो रहा है; तब इसके साथ विवाह करनेमें क्या बाधा हो सकती है! और अभी मैं अविवाहिता ही हूँ। आज नहीं तो चार दिन बाद

किसीके साथ मुझे विवाह तो करना ही होगा ! ऐसा मन चाहा पति यदि घर बैठे मिल जाता हो और वह भी सब प्रकारसे योग्य एवं उपयुक्त हो तो कौन अभागिनि इस प्रकार आये हुए सुयोगको खोना चाहेगी ? अतः यदि विवाह करना ही है तो इसी प्रकारके योग्य पतिसे करना उचित होगा। यदि पिताजी इसके साथ विवाह न करें तो मुझे विवश होकर दीक्षा ले लेनी पड़ेगी। किन्तु इस प्रकार मनमाने पतिको छोड़कर मैं अन्य किसीके साथ विवाह कदापि नहीं करूँगी। क्योंकि जो पुरुष मनके अनुकूल हो, साथ ही गुणवान भी हो, और लोक विरुद्ध भी न हो, उसको ग्रहण करना कभी अनुचित नहीं कहा जा सकता। अतः ये कुमार ही मेरे पति हो सकते हैं।" इस प्रकार नन्दाने उस कुमारको वरण करनेका मन ही मन दृढ़ निश्चय किया।

किन्तु साथ ही उसके मनमें यह विचार भी आया कि इस प्रकार केवल मानोरथ कर लेनेसे काम नहीं चल सकेगा ; अतएव विचारके अनुसार कुछ कार्य भी होना चाहिए। अर्थात् अपने यह मनोविचार माता-पिताको भी प्रकट हो जाना चाहिए। क्योंकि इस प्रेमके संताप से उत्पन्न विरहका दुःख मैं अब नहीं सह सकती। इसके

सिवाय मुझे संसारमें अन्य कुछ भी नहीं सुहाता। जागते-सोते और काम-काजमें भी वही ध्यान रहता है।

चित्तकी इस प्रकारकी नित्य नयी उपाधिके कारण नन्दा सदैव उदास रहती। अपनी सखियोंके साथ हँसने-खेलनेमें भी उसका मन नहीं लगता। वह दिन-रात गम्भीर बनी रहती। उसमें इस प्रकारका विलक्षण परिवर्तन देखकर उसकी सखियाँ मधुर हास्य विनोद करतीं। उसे परेशान करनेमें भी कसर न रखतीं। उसकी दिन चर्या देखकर वे सभी समझ गई थीं कि नन्दाका मन किसीने चुरा लिया है। इसी-लिए इसकी यह दशा हो रही है। क्योंकि समान अवस्थाकी और परस्पर गहरा परिचय रखनेवाली सहे-लियोंके सन्मुख अपने हृदयके भाव छुपाये नहीं छुप सकते। वे तो बात ही बातमें उसके मनके झुकावका पता लगा ही लेती हैं। अतः सखियोंने पता लगा लिया कि इसका मन घर आये हुए अतिथिने चुरा लिया है। एक सखिने तो धीरेसे एक चुटकी लेते हुए कहा :—
"अरी सखि! तेरा मेहमान तो जबर्दस्त उठाई गिरा है; जिसे तेरे घरमें चुरानेके लिये और कुछ भी नहीं मिला तो उसने तेरा मनही चुरा लिया! उसे क्या दण्ड दिया जाय?

"किन्तु उसे दंड तो अवश्य ही देना चाहिए। क्योंकि आज यदि मन चुराया है ; तो कल और न जाने क्या चुराले! क्यों ठीक है न! इस प्रकार दूसरी सखिके हँसनेपर उसके साथ सभी हँस पड़ीं!

"आज तो अपने राजाको ही कहकर उसे दण्ड दिलाना चाहिए ; जिससे कि वह चोरी करना ही भूल जाय! भला, दिन दहाड़े इस प्रकार लूट लेना क्या कभी सहन किया जा सकता है?"

"नहीं, कदापि नहीं। उसे तो यदि नन्दा बहन ही दंड दे तो ठीक होगा। हमें राजाके पास जानेकी भी क्या आवश्यकता है? ऐसे धूर्तोंको तो जिसकी वस्तु चुराई या लूटी गई हो, वही दंड दे तो ठीक होगा।" इस प्रकार किंचित् मर्मभरी वाणीसे जयाने कहा।

"किन्तु सखि, यह तो बतलाओ कि ; यह सब उत्पात कबसे आरम्भ हुआ है? इसका मङ्गलाचरण कबसे हुआ कि तू चुरानेवालेको कोई सजा नहीं देती!"

सखियों-द्वारा इस प्रकार मीठा उपहास सुननेके बाद बेचारी नन्दा कर ही क्या सकती थी। उनपर चिढ़नेके सिवाय उसका क्या वश था! फिर भी मनमें तो उसे ये बातें सुनना सुहाती ही थीं। अर्थात् जिस

प्रकार उसे अपने भावी प्यारे पतिके सम्बन्धकी भी चुटकियाँ अच्छी लगती थीं। उसी प्रकार उसकी सखियाँ भी उस अमूल्य अवसरको व्यर्थ नहीं जाने देना चाहती थीं। इसलिए उनका हास्य विनोद चलता ही रहा। प्रकृतिके नियमानुसार इस प्रकारका हास्य विनोद समान उम्रवालोंको अच्छा लगता ही है। क्योंकि एक न एक दिन सभीकी बारी आती ही है। अतएव आज जो दूसरे की हँसी करती है ; उसको कल अपने विवाह सम्बन्धी धूमधाम होनेपर इस प्रकारकी मीठी चुटकियाँ सहनी ही पड़ती हैं। यह कोई आज कलकी रूढ़ि नहीं ; वरन् अनादि कालसे ही यह बाल चापल्यकी परम्परा चली आती है। इसमें किसे दोष दें ?

एक ओर सखियों-द्वारा होता हुआ हँसी-मजाक और दूसरी ओर हृदयमें विचारोंका तूफान, युवा मनकी मस्ती आदि अब नन्दाके लिए असह्य हो उठी। किन्तु असह्य व्याधियोंसे बचनेका उपाय उस दुःखी बालाको भला कौन बतला सकता था ?"

दिन उगते ही ये पीड़ाएँ जबतक उनका अन्त नहीं आजाता, तबतक बढ़ती ही जानेवाली थीं। उसमें भी फिर यह शंका बनी हुई थी कि वह विदेशी

मुसाफिर विवाह करनेके लिए तैयार भी होगा या नहीं ? इसी कारण उसका मन उदासीन हो रहा था। किन्तु राजकुमारके मनमें तो ऐसी कोई बात ही नहीं थी। क्योंकि वह तो था राजकुमार और यह थी एक साधारण वणिक या व्यापारी की कन्या !

राजकुमारके मनमें तो स्वप्नमें भी यह कल्पना तक नहीं थी कि इस कन्याके साथ मुझे विवाह करना होगा। क्योंकि वह तो कुछ दिन उस बेन्नातट नगरकी शोभा देखनेके पश्चात् दूसरे नगरमें जानेका विचार कर रहा था। अर्थात् विदेश जाकर अपने भाग्यकी परीक्षा करना चाहता था। संसारकी इस प्रकार विचित्र परिस्थिति होनेके कारण नन्दाके मनमें जहाँ किसी अन्य प्रकारके मनोरथ हो रहे थे, वहीं राजकुमार के विचार भिन्न ही प्रकारके थे। अतः इन दोनोंके संघर्षमें भावीकी इच्छा क्या हो सकती थी ; यह तो अन्तिम निर्णय होनेपर ही पता लग सकता था। इस सामान्य बुद्धि वाले लोग उसके गम्भीर भेदका रहस्य कैसे जान सकते हैं ? फिर भी संसारके अनुभव परसे एवं किञ्चित् वस्तु स्थिति परसे इतना अवश्य समझमें आ सकता है कि विधाता पुरुषकी अपेक्षा स्त्रियोंका ही पक्षपात विशेष रूपसे करता आया है। क्योंकि पुरुष तो

शक्ति सम्पन्न होता है; जब कि स्त्रियोंकी दशा अवलाके रूपमें होती है।

संसारमें भी सज्जन पुरुष निराधार, गरीब, दुःखी अबलाओं तथा निर्बलकी पहले सहायता करते हैं। दोनोंके विवादमें जो निर्बल होता है, उसकी सहायता करनेकी मनमें स्वाभाविक रूपसे ही प्रेरणा होती है। कौए और कोयलके झगड़ेमें लोग धूर्त कौएको ही उड़ा देते हैं; क्योंकि कोयलमें मधुरवाणी रूप गुण होता है। वह अबला नारी जातिकी होनेके साथ ही उसके कण्ठमें मिठास होनेसे वही उसके प्रति आकर्षण रूप हो जाती है।

छठा परिच्छेद

माता और पुत्री

एक दिन नन्दा अपनी माताके साथ रसोईके काममें लगी हुई थी। उसी समय अवसर पाकर उसने अपने हृदयकी बात माताके सम्मुख प्रकट करना आरम्भ किया। क्योंकि उसके प्रकट होनेपर ही कोई उपाय हो सकता था। अर्थात् वह व्यर्थ ही मन ही

मन छीजनेवाली मूर्ख लड़की नहीं थी। अतएव उसने निश्चय किया कि एकबार माताके सामने तो अपने मनकी बात प्रकट कर देनी ही चाहिये ; फिर परिणाम जो भी होना है, सो तो होगा ही। साथ ही उसका निश्चय भी अटल ही था फिर भी मनचाही वस्तुकी प्राप्तिके लिए कुछ तो प्रयत्न करना आवश्यक ही था।

नन्दा अब कोई छोटी बच्ची भी नहीं थी। वह सोलह वर्षकी बाला यौवनकी देहरी पर खड़ी हुई थी। इस बातको उसके माता-पिता भी भली-भाँति जानते थे। उसके विवाहके लिए भी माता नन्दाके पितासे बार-बार कहा करती थी। किन्तु बहुत खोज करने पर भी नन्दाके योग्य 'वर' अभी तक मिल नहीं सका था। अतएव इतने सब प्रयत्नके बाद योग्य 'वर' न मिल सकना नन्दाके भाग्यका ही दोष था। बेचारे माता-पिता क्या कर सकते थे ?

इतनेहीमें पड़ोसकी एक महिला किसी कामसे वहाँ आई, और नन्दाकी मातासे बातें करने लगी। उधर नन्दाकी माता भी काम करते-करते उसमें रस लेने लगी। बातचीतमें ही इधर-उधरकी चर्चाके साथ उस महिलाने कहा :—"बहिन सुलक्षणा ! तुम्हारी नन्दा तो अब विवाह करने योग्य होगई है। इसे कब तक

घरमें विठाये रखोगे ?" इस प्रकार बात करते हुए वह हँसप ।

"हाँ बहन ! यह बड़ी तो होगई है और इसके लिए हम चिंतातुर भी हैं। इसके पिता दिन-रात योग्य 'वर' की खोजमें लगे हुए हैं ! किन्तु योग्य 'घर और वर' मिले तव तो कुछ हो ! क्या तुम्हारी नजरमें कोई लड़का है ?"

"इसके पिता तो बहुत ही कुशल एवं चतुरपुरुष हैं। वे तो चाहे जहांसे नन्दाके लिए योग्य वरको खोज निकालेंगे। किंतु तुम्हारी वेटी जितनी सुन्दर एवं समझदार है, वैसा ही सुन्दर और बुद्धिमान 'वर' भी खोजना उचित है, जिससे कि नन्दा सुखी हो सके।"

"भला, अपनी पुत्रीका सुख कौन नहीं देखेगा ? उसके लिए योग्य वर खोजने में ही इतनी देरी हो रही है। जल्दी ही करना होता तो एकके बदले अनेक 'वर' मिल सकते थे। किंतु उससे क्या प्रयोजन ?"

नन्दा अपने सम्बन्धमें होती हुई इस वातचीतको बड़ेही ध्यानसे सुन रही थी। यद्यपि उसकी माता यही समझ रही थी कि नन्दा काम में लगी हुई है। किंतु काम करते हुए भी नन्दाका चित्त तो उस वार्तालापके सुनने में लगा हुआ था। इस बातको नन्दाकी माता कैसे समझ सकती थी ? घरके बड़े बूढ़े जिन्हें अनभिज्ञ बेसमझ और बालक समझते हैं, उन अवस्था प्राप्त कुमार या कुमारियोंके मनकी बात माता-पिता कदाचित ही जान सकते हैं ? यही

कारण है कि माता उस भोली-भाली नन्दाके हृदयमें मोहकी कौनसी हवा आर-पार हो चुकी है, इसे नहीं जान सकती थी। साथ ही दबे छुपे अपने सम्बन्धकी बात-चीत सुननेकी भावनाका भी बिना मुँहसे बोले पता लग सकना असम्भव ही था। इसी प्रकार किसीको लुक छिपकर देखने आदिमें भी नन्दा अब सब प्रकारसे कुशल हो गई थी। फिर भी उसने माता-पिता की मर्यादा अभी छोड़ी नहीं थी। नवयौवनके आंगनमें प्रवेश करने वाले युवक-युवतियाँ बिना किसीके सिखाये ही पूर्वके अभ्यासके कारण सुगमतासे सब कुछ जानलेते हैं। इसमें बेचारी नन्दाका क्या दोप हो सकता है?

इस प्रकार कुछ उलटी-सीधी बातें करके पड़ौसिन रुक्मिणी बाई अपने घर चली गई। किन्तु इस प्रकार नन्दाको आगेकी चर्चाके लिए रास्ता बता गई। फलतः उसने पूछा:-"माता! हमारे घर जो मेहमान आये हैं वे किस गाँवके हैं?"

"मुझे भी पता नहीं कि वे किस गाँवके हैं; किंतु तेरे पिताजी कहते थे कि वे मगधदेशके निवासी हैं! साथही वे किसी उच्चकुलमें उत्पन्न हुए भी जान पड़ते हैं।"

"मुझे तो वे कोई राजकुमार जान पड़ते हैं, किंतु इस प्रकार घर छोड़कर वे ग्राम-ग्राम क्यों भटकते होंगे?"

क्या इनके माता-पिता नहीं हैं? अथवा ये उनसे रूठकर तो घरसे नहीं निकल पड़े हैं?" इस प्रकार नन्दाने विषयको स्पष्ट करने का प्रयत्न किया।

"इस बातका कैसे पता लग सकता है! क्योंकि वे तो अपना जरा भी विशेष परिचय देना नहीं चाहते! आग्रह पूर्वक पूछनेपर भी इस विषयकी किसी बातका उत्तर तक नहीं देते। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इनके माता-पिता अवश्य हैं और संभव है किसी बातसे रूठकर ही ये घरसे निकल पड़े हैं।" माताने अपना अनुमान बांधते हुए कहा।

"किंतु इस प्रकार घरसे निकल पड़नेपर इनकी माताको कितना दुःख हो रहा होगा? ऐसा सुन्दर एवं नवयुवक पुत्रके अपने हृदयके सामने चल देनेपर कौनसी ऐसी कठोर हृदय वाली माता होगी, जो धैर्य रख सकेगी?"

"किंतु होनहारके आगे किसीका वश थोड़े ही चल सकता है? आतेहुए दुःखको सहन किये बिना किसीका छुटकारा थोड़ेही हो सकता है? उसे तो जैसे-तैसे सहना ही पड़ता है।"

"हमारे घर इतने दिनोंसे आये हुए हैं, किंतु कितने उत्तम गुण वाले प्रतीत होते हैं। आचार-विचारकी दृष्टिसे मुझे तो ये क्षत्रिय जान पड़ते हैं। जैसे गुणवान हैं वैसे ही

बुद्धिमान भी हैं। अतः जिस स्त्रीके ये पति होंगे, वह सचमुच ही बड़ी भाग्यवती हो सकती है। भला बिना किसी महान भाग्यके कन्याको ऐसे पति कभी मिल सकते हैं ?" नन्दाने युक्तिपूर्वक चर्चाकी दिशा बदलनेका प्रयत्न किया। क्योंकि बुद्धिमान् व्यक्तिको चतुराई की युक्ति सीखनी नहीं पड़ती।

"तेरा कथन कदाचित यथार्थ होसकता है। किंतु हमें इन बातोंकी गहराईमें उतरनेसे क्या लाभ होसकता है ?" माताने कहा।

"माता ! तू ऐसा क्यों कहती है ? हमें अवश्य इनका पूरा परिचय प्राप्त करना उचित है। क्या ये मनुष्य नहीं हैं ? उत्तम अतिथि नहीं हैं ?" नन्दा धीरे-धीरे मूल विषयकी ओर आनेलगी।

"परिचय प्राप्त करनेसे भी क्या होगा ? एक तो यह परदेशी है, फिर हमारी जातिका भी तो नहीं है। न जाने कौन होगा। कहाँका होगा !" इसप्रकार माताने उपेक्षा प्रकट की।

"माता ! मनुष्यका आचार-विचार एवं उसका रहन-सहन ही बतला देता है कि वह किस कुलका हो सकता है। साथ ही यह जातिमें भी हमसे नीचे दर्जेका

तो कदापि हो नहीं सकता। कुछ भी हो, क्षत्रिय हमसे तो हरतरह ऊंचे ही हैं।"

'बेटी नन्दा! आज तुझे क्या हो गया है? उस परदेशीका इतना पक्षपात तू क्यों कर रही है? बारंबार उलट-पलट कर तू उसीकी चर्चा क्यों चला रही है?' माताको नन्दाकी बात-चीतपर आश्चर्य हुआ। किंतु बेटीको अनसमझ माननेवाली उस माताको कहाँ पता था कि, मेरी एकमात्र लाड़ली पुत्रीने उस गुणवान युवकको अपने मनसे कभीका पतिरूपमें वरण कर लिया है।,

"क्या मेरा पक्षपात अनुचित है माता? ऐसे उत्तम पुरुष भाग्ययोगसे ही मिलते हैं। इस बातपर तू क्यों ध्यान नहीं देती? भाग्यलक्ष्मी स्वयं चलकर तेरे आँगनमें आई है, किंतु फिर भी तू उसे बाहर क्यों खोज रही है?" नन्दाने कुछ स्पष्टतासे अपना मन्तव्य प्रकट किया।

"तो तू स्पष्टतासे अपना विचार क्यों प्रकट नहीं करती? तू क्या कहना चाहती है? मैं बाहर किसे ढुँढ़ रही हूं। मुझे तेरी इन गोलमाल बातोंका अर्थ समझ में नहीं आरहा है।

"माता! पिताजी मेरेलिए योग्य वरकी खोजमें इतना-इतना प्रयत्न कर रहे हैं, किंतु फिर भी कहीं ठीक ठीकाना नहीं लग रहा है। तब तू उन्हें क्यों नहीं समझाती

कि इस प्रकार गुणवान व्यक्ति अपने घर आयाहुआ है; फिर भी वे बाहर इससे अच्छा युवक और कहाँ और कैसे प्राप्त कर सकेंगे ?

"अरे, पुत्री ! यह तू क्या कह रही है ? तू जानती है कि यह परदेशी है। यह हमारी जातिका नहीं ! पता नहीं किस कुल या समाजमें जन्मा है ! जरा इसका विचार तो कर !"

"यह चाहे जिस कुलका हो किंतु मेरे मनसे तो वह गुणोंका भंडार है। तेजका खजाना ही है। अतः अन्य खोज-पताल छोड़कर पिताजीको समझादे कि वे इसीके साथ मेरा विवाह करदें ?" नन्दाने स्पष्टतासे अपना मन्तव्य प्रकट कर दिया।

"अरी निर्लज्ज ढीठ छोकरी ! तू ऐसे उत्तम कुलमें जन्म लेकर भी यह क्या कह रही है! जरा तो शर्म कर ! भला ऐसे परदेसीके साथ तेरा विवाह कैसे हो सकता है ? क्या तू हमारी नाक कटवाना चाहती है ? विना इसकी जातपाँत जाने तू इसप्रकार कैसे कहनेकी हिम्मत करती है ?"

"माता ! वे क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुए हैं और संसारमें उत्तम कुल क्षत्रियका ही माना जाता है। हमारे तीर्थंकर भगवंत भी क्षत्रियकुलमें ही उत्पन्न हुए हैं। यह

क्षत्रियवंश नाभिनंदन श्री ऋषभदेवसे ही चला आरहा है, क्या तू इसे नहीं जानती ? हमारे वणिक कुलकी अपेक्षा यह क्षत्रियकुल क्या बुरा है ?"

"किंतु मूर्ख छोकरी ! इस प्रकार अन्यजातिमें लड़की नहीं दी जासकती ! कैसा ही उच्चकुल क्यों न हो ? अन्य-जातिमें अपनी लड़की देनेसे हमारी इज्जत मिट्टीमें मिल जायगी। जाति और समाजकी दृष्टिमें हम गिर जायेंगे। समझी ?"

"माता ! इसीमें तुम्हारी भूल हो रही है। अच्छा घर वर देख कर कन्या देनेमें कोई बुराई नहीं है। यदि अन्यजातिका योग्यवर हो और उसका कुल भी अच्छा हो तो उसमें ऐसी कौन वाधा पड़ती है कि जिसके लिए व्यर्थ जाति-पाँतिका नाम लिया जाता है ? कृष्णजी के बन्धु गज-सुकुमालने ब्राह्मणकी लड़कीसे विवाह किया था। पिता-मह शांतनुने नाविक (मल्लाह) की पुत्री सत्यवतीसे विवाह किया था। ऋषिकन्या शकुन्तलाके साथ क्या दुष्यन्तने विवाह नहीं किया था ? इसी प्रकार अन्य कई ऋषि-मुनि-योंने राजकन्याओंके साथ विवाह किये हैं !" नन्दाने अनेक उदाहरण देकर अपनी दलीलको पुष्ट करनेका प्रयत्न किया।

"अरी निर्लज्ज ! जरा तो शर्म कर ! छोटे मुँहसे

इस प्रकार तू क्यों बड़ी बात कर रही है ? क्या इतनी बड़ी होजानेसे तू हमारे बसके बाहर होगई है ! आज तेरी वह लजीली प्रकृति कहाँ लुप्त होगई ?" सुलक्षणाने किंचित् क्रुद्ध होकर नन्दाको दबाना चाहा !

"किंतु माता ! इस प्रकार क्रुद्ध होने जैसी तो कोई बात नहीं है। मैंने अपने मनमें जो कुछ निश्चय कर लिया है वह तो होगा ही। किंतु इतने पर भी यदि तेरी इच्छा न होगी तो मैं जन्मभर कुमारी ही रहकर संयम व्रतभी स्वीकार कर सकती हूँ।" नंदाने अपने अडिग विचारको प्रकट कर दिया।

"किंतु तूने अपने मनमें क्या निश्चय किया है ?"

"बस, यही कि यदि मैं विवाह करूँगी तो अपने घर पधारे हुए उस गुणवान पुरुषके ही साथ ! क्योंकि जबसे वे हमारे अतिथि हुए हैं; तभी से उन्होंने मेरा मन हरण कर लिया है। उन्हें ही देखकर मेरा मन प्रसन्न हो जाता है चित्त प्रफुल्लित होजाता है। अतः यदि तुम्हारी इच्छा हो तो उसके साथ मेरा विवाह करदो, अथवा मुझे चारित्र ग्रहण करनेकी आज्ञा दो !" नंदाने दृढ़तासे अपनी बात कही।

"किंतु उस परदेसीके साथ विवाह करके तू कैसे सुखी हो सकेगी ? यदि वह विवाह करके चलदिया तो

तेरी क्या दशा होगी ? इसका तो तनिक विचार कर!"

"भले ही विवाह करने के बाद वह मुझे छोड़कर चला-जाय ! उसका वियोग मैं शीलव्रत पालन कर सहलूँगी। और आत्म कल्याणका मार्ग प्राप्त कर सकूँगी। किंतु इस भवमें तो वही मेरेलिए शरण दाता हो सकता है !" नंदाने स्पष्ट शब्दोंमें अपना दृढ़ निश्चय प्रकट कर दिया।

"हठीली छोकरी ! अब भी थोड़ा समझसे कामले। अपना मनमाना करनेसे तुझे दुःख उठाना पड़ेगा। पीछेसे पछताएगी ! इसीलिए फिर कहती हूँ कि तू व्यर्थका हठ छोड़ दे।" माताने शान्तिसे समझाना चाहा।

"माता ! तू क्यों व्यर्थके लिए हठ कर रही है ? सत्यवादीका वचन एक ही होता है। आकाशमें सूय-चंद्रभी एक ही होते हैं। उसीप्रकार सतीके लिए भी एक ही पति हो सकता है। अतः मेरा तन, मन और सर्वस्व, जो कुछ भी कहो, वह एकमात्र वही पुरुष पुंगव है। उसे छोड़कर संसारमें मेरे लिए किसी भी वस्तुका कोई मूल्य नहीं हो सकता। अतएव माता ! कृपा करके मेरा विवाह उसी परदेशीके साथ करके शुभाशीर्वाद प्रदान कर, जिससे कि मेरा जीवन सुखी हो सके !"

"ठीक है ! मुझे भी इस विषयमें कुछ विचार करने दे !" यों कहकर माताने संक्षेपमें चर्चा समाप्त करदी।

इस प्रकार तू क्यों बड़ी बात कर रही है ? क्या इतनी बड़ी होजानेसे तू हमारे वसके बाहर होगई है ! आज तेरी वह लजीली प्रकृति कहाँ लुप्त होगई ?" सुलक्षणाने किंचित् क्रुद्ध होकर नन्दाको दबाना चाहा !

"किंतु माता ! इस प्रकार क्रुद्ध होने जैसी तो कोई बात नहीं है। मैंने अपने मनमें जो कुछ निश्चय कर लिया है वह तो होगा ही। किंतु इतने पर भी यदि तेरी इच्छा न होगी तो मैं जन्मभर कुमारी ही रहकर संयम व्रतभी स्वीकार कर सकती हूँ।" नंदाने अपने अडिग विचारको प्रकट कर दिया।

"किंतु तूने अपने मनमें क्या निश्चय किया है ?"

"बस, यही कि यदि मैं विवाह करूँगी तो अपने घर पधारे हुए उस गुणवान पुरुषके ही साथ ! क्योंकि जबसे वे हमारे अतिथि हुए हैं; तभी से उन्होंने मेरा मन हरण कर लिया है। उन्हें ही देखकर मेरा मन प्रसन्न हो जाता है चित्त प्रफुल्लित होजाता है। अतः यदि तुम्हारी इच्छा हो तो उसके साथ मेरा विवाह करदो, अथवा मुझे चारित्र ग्रहण करनेकी आज्ञा दो !" नंदाने दृढ़तासे अपनी बात कही।

"किंतु उस परदेसीके साथ विवाह करके तू कैसे सुखी हो सकेगी ? यदि वह विवाह करके चलदिया तो

तेरी क्या दशा होगी ? इसका तो तनिक विचार कर!"

"भले ही विवाह करने के बाद वह मुझे छोड़कर चला-जाय ! उसका वियोग मैं शीलव्रत पालन कर सहलूँगी। और आत्म कल्याणका मार्ग प्राप्त कर सकूँगी। किंतु इस भवमें तो वही मेरेलिए शरण दाता हो सकता है !" नंदाने स्पष्ट शब्दोंमें अपना दृढ़ निश्चय प्रकट कर दिया।

"हठीली छोकरी ! अब भी थोड़ा समझसे कामले। अपना मनमाना करनेसे तुझे दुःख उठाना पड़ेगा। पीछेसे पछताएगी ! इसीलिए फिर कहती हूँ कि तू व्यर्थका हठ छोड़ दे।" माताने शान्तिसे समझाना चाहा।

"माता ! तू क्यों व्यर्थके लिए हठ कर रही है ? सत्यवादीका वचन एक ही होता है। आकाशमें सूर्य-चंद्रमो एक ही होते हैं। उसीप्रकार सतीके लिए भी एक ही पति हो सकता है। अतः मेरा तन, मन और सर्वस्व, जो कुछ भी कहो, वह एकमात्र वही पुरुष पुंगव है। उसे छोड़कर संसारमें मेरे लिए किसी भी वस्तुका कोई मूल्य नहीं हो सकता। अतएव माता ! कृपा करके मेरा विवाह उसी परदेशीके साथ करके शुभाशीर्वाद प्रदान कर, जिससे कि मेरा जीवन सुखी हो सके !"

"ठीक है ! मुझे भी इस विषयमें कुछ विचार करने दे !" यों कहकर माताने संक्षेपमें चर्चा समाप्त करदी।

इसके थोड़ी ही देरबाद भोजनका समय होजानेसे धन-सेठके साथ राजकुमार श्रेणिक भोजनके लिए घर पधारे।

—:०:—

सातवाँ परिच्छेद

धन-सेठ

—:०:—

एकदिन दुकानमें एक ओर कुमारको एक वस्तु दिखाई दी। अतः उसका स्वरूप जाननेके लिए उसने धनश्रेष्ठीसे पूछा "सेठसाहब! यह क्या वस्तु है ?" धनसेठने कहा कि "हे भाग्यशाली! इसकी कथा बहुत लम्बी है। इसके बुरे मुहूर्त्तमें आनेसे मैं निर्धन हो गया हूँ इसीने मुझे धनवान होते हुए भी निर्धन बना दिया है।

किंतु यह सब कैसे हुआ सेठ साहब ? कुमार ने पूछा।

एक दिन चोरों ने अन्य द्वीपका कोई मालसे भरा हुआ जहाज समुद्रमेंसे पकड़कर तुरंत उसमेंका सारा माल उन्होंने मुझे सौंप दिया। किंतु मैं यह नहीं समझ सका कि यह चोरी का माल होगा, अतः सस्ता माल समझ कर मैंने लोभवश उसे लेलिया। किंतु वह लाभ ही मेरे लिए

सर्वनाशका कारण बनगया।" इस प्रकार उसने आप-बीती सुनाना आरम्भ किया। भद्रसेठ उस धनश्रेष्ठीका ही दूसरा नाम था।

"तो क्या राजाको उस बातका पता लग गया?"

"हाँ यही हुआ। तुम्हारा अनुमान सत्य है। राजाको पता लगते ही उसने मेरे सब धन मालको छीन लिया। यहाँ तक कि दण्डके रूपमें मेरी सारी जायदाद भी जप्त करली।

"सच है, जब किसी पूर्व संचित पापका उदय होता है, तभी मनुष्यपर राजाका कोप होता है। दुष्टग्रह की तरह भला, राजाका कोप क्या-क्या अनिष्ट नहीं कर डालता?" कुमारने सेठजी के प्रति दया भाव दिखाया।

"सब कुछ कर सकता है! दुष्टग्रहके गुप्त मारको कोई जान नहीं सकता; जबकि राजाके क्रोधको सभी जान लेते हैं कि वह सर्वस्व नाश कर सकता है!"

"किंतु जो कुछ होता है अच्छेके लिए ही होता है। राजाने आपको जीवित रहने दिया और सुखशांतिसे खाने कमानेका अवसर दिया, इसीको प्रभुका उपकार मानना चाहिऐ।"

"हाँ, राजाने अवश्य इतनी दया दृष्टि रखी है। फिरभी उस जहाजके साथ उसने मेरी अटूट संपत्ति छीनली,

तबसे मेरी स्थितिमें जमीन आस्मानका अंतर होगया है। अहा, कहाँ वह मेरा पूर्वकालका वैभव और कहाँ आजकी यह निर्धन स्थिति ?"

"सेठ साहब! यह सब संसार में भाग्यचक्रकी लीला है। हम जैसा भी अपना भाग्य निर्माण करते हैं, वैसा ही फल भी हमें प्राप्त होता है। मनुष्यके सभी प्रयत्न भी दुर्भाग्यके सन्मुख निष्फल सिद्ध हो जाते हैं। अतएव विधाताके इस विधि-विधान पर हर्ष शोकसे क्या लाभ हो सकता है ?"

"मैं भी जानता हूँ कि यह सब पूर्वपापके उदयसे हुआ है। अतः इसे समता पूर्वक सहन करना चाहिए। जिस प्रकार धैर्यवान पुरुष संपत्ति पाकर हर्षित नहीं होते, उसी प्रकार विपत्तिमें उनका चित्त उद्विग्न भी नहीं होता। इसी नीति-नियमानुसार निर्धन अवस्थामें भी मैं जैसे-तैसे व्यवसाय व्यापार करके अपना निर्वाह करता हुआ दुःखके दिन बिता रहा हूँ।"

संसार में दुःखके पश्चात सुखका आना तो स्वाभाविक है। किंतु सुख भोगनेके पश्चात जब दुःख आताहै, तब मनुष्य को बहुत ही अखरता है। पूर्वकी सुख-समृद्धि और वैभव आदि का स्मरणकर हृदयमें असह्य वेदना होने लगती है।

आज मेरीभी वही दशाहै। किंतु विधाताके इस विधानमें किसका वश चल सकता है। मेरी इस निर्धन अवस्थामें लोगभी हँसी करतेहैं। जो लोग कभी मेरीही दयापर जीवित रहते थे वे ही आज मेरी यह दुकान और घर-द्वारभी राजाको उलटा-सीधा समझाकर छिनवा लेनेका प्रयत्न करते हैं और वे मुझे इस नगरसे भगादेनेके विचारमें भी लगे रहतेहैं।

संसार ही स्वार्थमय है और लोग धनवानोंके दास बने हुए हैं। स्वार्थके लिए वे धनवानोंकी खुशामद करके उनको 'हाँ में हाँ, मिलाते हुए अपना काम बनालेते हैं। निरंतर खड़े पाँव उनकी सेवा करतेहैं। उनकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करते हैं। किंतु वे नहींजानतेकि यह सब लक्ष्मीदेवीका प्रताप है।

"आप ठीक कहते हैं। साधारण ही नहीं बड़े-बड़े विद्वान पंडित लोग भी लक्ष्मीकी लालसासे एक दिन मेरे सन्मुख सिर झुकाते और स्तुति करते थे। अपनी वाणीकी चतुराईसे मुझे प्रसन्न करनेका यत्न करते, अतः उनकी प्रशंसासे प्रसन्न होकर मैं कुछ न कुछ उन्हें दे डालता था।"

"संसारमें लक्ष्मी के सन्मुख सरस्वतीको झुकना ही पड़ता है। क्योंकि संसारमें मनुष्योंको द्रव्यकी जितनी आवश्यकता होती है, उतनी अधिक विद्याकी नहीं-होती। हाँ कई अंशोंमें विद्याका महत्व भी है, किंतु संसारका व्यवहार तो धन-माल के द्वारा ही चलता है।

"हाँ, तो उन्नतिके उच्च शिखरपरसे मेरा ऐसा अधःपतन होगया कि राजाने द्रव्यके साथ मेरी नगरसेठकी पदवी भी छीनली। किंतु हाय! इतना दुःख और अपमान सहनेके बाद भी मैं जीवित हूं। आखिर बनिया ही तो ठहरा।"

"संसारसे मेरा सर्वस्व चलागया। इज्जत-आबरू भी नहीं रही। ऐसी स्थितिमें सत्यशील और पराक्रमी पुरुष तो जीवनको ही तृणवत् समझकर त्याग देते हैं। लोकलाजके पीछे लोग अपने जीवनकी भी पर्वाह नहीं करते। इज्जत नष्ट होनेका समय आनेके पहले स्वयं ही चलेजातेहैं। किंतु मुझ-जैसे निर्बल मनुष्य बेचारे क्या कर सकते हैं! इसप्रकार भद्रसेठने अपनी निर्बलता प्रकट की।

"किंतु सेठसाहब! आप ऐसा विचार ही क्यों करते हैं? जीवित रहनेवाले मनुष्य फिरसे कल्याण और धन को प्राप्त कर सकते हैं। और उन धनके साथ इज्जत-आबरू भी अपने-आप चली आती है, जबकि मरेहुएके लिएइनमें से कुछ भी नहीं होपाता। अतः जिसकार्यसे बिना किसी लाभके केवल हानि ही होती हो, उस (पश्चात्ताप) के करनेसे क्या फायदा हो सकता है?" कुमारने उसे धैर्य बँधाते हुए कहा।

"आपका कथन ठीक हो सकता है। किंतु निर्धन मनुष्यका जीवन भी कोई जीवन है? निश्चित ही भूखे-प्यासे रह कर वनमें तप करते हुए मरजाना अथवा हिंसक

पशुओंका शिकार होजाना अच्छा है। किंतु स्वजनोंके बीच निर्धन होकर गरीबीसे दिन काटना बहुत ही लज्जा जनक होता है। इसे तो जिसे अनुभव हो, वही समझ सकता है। वनमें तो क्षणमात्रका ही दुःख होता है किंतु यह तो सारे जीवनका ही दुःख है। जो लोग सम्मान-इज्जत की दृष्टिसे देखते थे, उन्हींके द्वारा आज तिरस्कारके वचन सुनने पड़ते हैं। कदर्थनाएं सहन करनी पड़ती हैं, क्या यह कम पीड़ाका विषय है? इस प्रकारकी तो अनेक पीड़ाएँ सहनी पड़ती हैं।"

"फिर भी इतनी कठिनाइयोंको सहते हुए भी मनुष्यको जीवित रहना चाहिए। धर्म-पुन्यके कार्यकर पापोंको दूर करना चाहिए। जिस प्रकार अचानक ही दुःख आपड़ता है, उसी प्रकार अचानक सुखका आगमन हो सकता है। साथ ही पूर्व जन्मके किसी पुण्यके उदयसे उन्हीं बन्धुजनों के लिए क्षमा माँगनेका अवसर भी आ सकता है; क्योंकि संसारमे उलटफेरका चक्र चलता ही रहता है।

"जैसी विधाताकी इच्छा। राजाने भी हमें कम दुःख नहीं दिया। मेरा सर्वस्व छीन लेने के बाद भी जलेपर नमक लगानेमें उसने कोई कसर नहीं रखी। मेरी फजीहत करनेमें भी उसने कोई कमी नहीं की।"

"भला उसने ऐसा क्या किया?" कुमारने पूछा।

"देखिये! इस जहाजमें जो कुछ दिखाई दे रहा है, और जिसके विषयमें आपने मुझसे पूछा है, वह क्या है? उसीके लिये कहता हूँ, सुनिये!

इस जहाजमें किराना आदि माल था, जिसमें खूब धूल-मिट्टी भरी पड़ी थी। उसे देखकर राजाने कहाकि यह धूल-मिट्टी इस सेठके गले में बँधवा दो, जिससेकि फिर यह ऐसा काम न करसके। इस प्रकार वह सब धूल मेरे गलेमें बँधवा दी। लोगोंके सामने मेरा बहुत अपमान कराया। इसी-लिए मैंने इस धूल को संग्रह कर रक्खी है। क्योंकि यदि मैं इसे फिंकवादूँ तो राजा मुझ पर क्रुद्ध होकर लोगों में रही सही इज्जत भी धूलमें मिला सकता है। "भद्रसेठने अपनी कर्म कथा कह सुनाई।

कुमारने सेठजीकी कर्म कथा सुनकर धूलके पास जाकर बारीकीसे जाँच की। क्योंकि उसे विश्वास था कि द्रव्यसे भरे हुए जहाजमें धूलके बदले कोई दूसरी ही वस्तु होनी चाहिए। जिसकी सेठजीको परीक्षा नहीं है। अतः ये तो इसे धूलही समझ रहे हैं। फलतः उसे ध्यानपूर्वक देखने पर पता लगाकि यह धूल नहीं वरन् "तेजन्तुरी" है। ठीक ही है। जो मनुष्य किसी वस्तुके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान पाता उसके लिए तो वह धूलके समान ही हो सकती है।"

राजकुमारके मुखसे ये वचन सुनकर सेठजीने कहा :—"क्या अन्य लोगोंकी तरह आप भी मेरी हँसी कररहे हैं ? हायरे दुर्दैव ! मेरी यह क्या दशा है ?. सेठजीने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा।"

"सेठ साहब, आप क्यों व्यर्थके लिए दुःखी होते हैं ? विधाताने जो कुछ किया है, वह आपके सर्वथा लाभके लिए ही किया है। क्योंकि जो कुछ होता है, वह मनुष्यके लाभके लिए ही होता है।"

"क्यों, कैसे ? क्या इस धूलको रख छोड़ना भी मेरे लिए लाभकारी हो सकता है।

"हाँ, सेठसाहब यह जो धूल है वही आपके लिए धन हो जायगी। यह तो इतना धन है कि राजाने आपका जो द्रव्य छीनलिया है, उसकी अपेक्षा इसका मूल्य कई गुना अधिक हो सकता है ? समय आनेपर इसका पूरा-पूरा मूल्य आपको प्राप्त होगा। अतएव इसे सम्हाल कर रखिये। इसका कोई ग्राहक आनेदो। फिर देखिये कि इसको कितना मूल्य मिलता है !" कुमारने उस धूलका असल स्वरूप बतलाया।

तब सेठने धूलका स्वरूप समझते हुए कहा:—"कहीं आप मेरी हँसी तो नहीं कर रहे हैं ?"

"भला, मैं आपकी हँसी कैसे कर सकता हूँ ? आप इस "तेजन्तुरी" का स्वरूप नहीं जानते। इसीलिए ऐसा कह रहे हैं। किंतु आप थोड़ा धैर्य रखिये। आपकी विपत्ति थोड़े ही समयमें दूर होने वाली है। शीघ्र ही इसका ग्राहक आवेगा, और तब आपको मेरे कथनकी सत्यता ज्ञात होगी।"

सेठने कुमारका उपकार मानते हुए कहा "महानुभाव! यह धूल मेरे विचारसे तो धूलही थी; फिर भी आपके प्रभावसे यदि यह सुवर्ण बन गई तो हम परस्पर उस द्रव्यको आधा-आधा बाँट लेंगे। क्योंकि दूसरेकी दृष्टिसे निर्माल्यवत् रत्नका मूल्य जोहरी ही भली भाँति जान सकता है। जान पड़ता है कि मेरे किसी पूर्व पुण्यका उदय होनेसे ही आपके शुभ चरण मेरे यहाँ आ पड़े हैं, अन्यथा आप जैसे परीक्षकका सुयोग ही कैसे प्राप्त होता?"

इस प्रकार उस धूलका महत्व समझने पर भद्रसेठको संतोष हुआ। और पुनः उज्ज्वल भविष्यकी आशामें वे पूर्व वैभव एवं समृद्धावस्थाके स्वप्न देखने लगे।

—:०:—

आठवाँ परिच्छेद

पति-पत्नी

—:*:—

"मैंने आपसे कितनी बार कहा, किंतु आपतो उस पर ध्यान हो नहीं देते ! आपने कहीं खोज भी की है ?" एक दिन रात्रिके समय एकान्त कोठरी में बैठे हुए पति-पत्नीके बीच इस प्रकार वार्तालाप होने लगा।

"किप विपयकी खोजके लिए तू पूछ रही है !" भद्र सेठने पूछा।

"अपनी नन्दाके विषय में ! देखते नहीं कि लड़की कितनी बड़ी हो गई है ? इतनी बड़ी लड़की घरमें काँरी फिरती रहे, यह अच्छा नहीं, समझे !"

"यह कार्य तो मेरे ध्यानमें है ही। किंतु क्या करूँ ? उसके योग्य अच्छा ठिकाना मिले तब तो ?"

"जैसे भी हो, उसकेलिए योग्य 'वर' तो खोजना ही पड़ेगा। अब देर करनेसे काम नहीं चलेगा। क्या-आप और भी कुछ सुनना चाहते हैं ? लोग मेरे कान फोड़े डालते हैं। इतनी वड़ी लड़कीको देखकर मैं तो लज्जा के मारे मरी जा रही हूँ।"

"किंतु इस प्रकार जल्दी करनेसे कहीं आम पक सकते हैं ? विवाहका कार्य है, इसमें देर भी हो सकती

है ! यह कोई कुम्हारके घरकी हँडिया नहीं कि जिसे वापस लौटाकर बदला जा सके ! लड़कीको समूचा जीवन व्यतीत करना है । अतएव इसप्रकार शीघ्रता करनेसे काम नहीं चल सकता ।"

"तुम पुरुषोंको स्त्रियोंके चंचल मनका क्या पता लग सकता है ? इस प्रकार विवाह योग्य लड़की कुँआरी रहे और स्वभावकी चपलताके कारण यदि कुछ उलटा सीधा कर बैठे, तो जात-पाँतमें हमारी नाकही कट जाय ! इसका भी ध्यान है ?"

"क्यों ? क्या ऐसी कोई बात हुई है ? नन्दाके विषयमें इस प्रकार कहनेके लिए कोई कारण हुआ है क्या ?'

"हाँ, वह एकबात ऐसी कह गई है कि उसको सुन कर मुझे भय लगता है । इसीलिए कहती हूं कि लड़कीको विवाह योग्य होते ही ब्याह देना चाहिए । लड़का हो तो भले ही वह क्वाँरा रह सकता है । दोवर्ष बाद भी उसका विवाह हो सकता है । उसके लिए इस प्रकार चिंतामें जागरण नहीं करना पड़ता ।'

किंतु मुझे जरा साफ-साफ तो बतला कि ऐसी क्या बात हुई है जिसके कारण तू इतनी उतावली हो रही है" भद्रसेठने उस रहस्यको जानने का प्रयत्न किया ।

"हमारे यहाँ जो मेहमान आये हुए हैं उनकी ओर ़न्दाका झुकाव बढ़ता जा रहा है। मुझे तो ऐसा भी ़ान पड़ता है कि उन्हें देख कर यह पागल-सी हो गई है। उसीसे विवाह करनेका वह हठ धारण कर बैठी है।"

"अपने यहाँ जो मेहमान आये हुए हैं उन गोपालके साथ?" भद्र सेठने पूछा। सेठजीके यहाँ आने पर श्रेणिक कुमारने अपना नाम गोपाल बतलाया था।

"हाँ, उन्हींके साथ! रातदिन नन्दा उसी गोपालका चिंतन करती रहती है। अतः अब उसके लिए क्या उपाय हो सकता है? कहीं ऐसा न हो कि नन्दा हमारी रही सही इज्जत पर भी पानी फेरदे!"

"किंतु इसमें तू इतनी व्याकुल क्यों हो रही है? भला, गोपालमें ऐसी किस बात की कमी दीखती है! क्या तुझे वह अपनी नन्दाके योग्य नहीं जान पड़ता? नन्दा समझदार और बुद्धिमान लड़की है। उसने पूर्ण विचार करके ही गोपालको पसन्द किया होगा! यदि लड़कीको यह वर (पति) योग्य जान पड़ता हो तो हमें क्यों व्यर्थके लिए उसके मार्गमें रोड़ा डालना चाहिए? मनुष्यकी भाग्यानुसार ही तो मति होती है।"

"आप यह क्या कह रहे हैं? जरा तो शर्म कीजिये! उसके कुल या जातिको हम नहीं जानते। तब भला,

ऐसे व्यक्तिके साथ अपनी बेटीको कैसे ब्याह सकते हैं ?"

"अरी पगली ! कुल या वंशकी किसीके सिरपर छाप नहीं लगी रहती। मनुष्यके आचार-विचार एवं उसके रहन-सहन परसे ही उसके कुल-शीलका पता लग जाता है! हमारा महान् सौभाग्य है कि वह अनायास हमारे यहाँ आकर अतिथि बना है !"

"यदि यह भी मान लिया जाय कि वह उत्तम कुलका होगा ! किंतु इससे क्या वह हमारी जातिका हो गया ? पता नहीं कि वह किस जातिका है और हम हैं उत्तम वैश्यकुलके ! भला बिना पूरी तरह जाने पहचाने अन्य-जातिके युवक के साथ अपनी बेटीका विवाह कैसे कर सकते हैं।"

"वह जातिका क्षत्रिय है। अतः उसे कन्या देनेमें मुझे तो कोई आपत्ति नहीं जान पड़ती। और जब लड़की को वह पसंद है; तो उसे सुखी बनाने के लिए हमें जाति भेद की भी चिंता नहीं करनी चाहिए। यदि 'वर' उत्तम कुल-शील एवं चरित्रवान और सुन्दर तथा मिलनसार स्वभाव वाला हो तो, लड़की की इच्छानुसार उसे ब्याह देना उचित है। लड़केमें गुण होने पर ही वह योग्य हो सकता है। अन्यथा उत्तम कुलमें जन्म लेकर भी यदि वह पतित मनुष्यके समान दुराचारी हो तो किस कामका ?

उत्तम कुल या जाति-वंशको कोई खाना थोड़े ही है। हाँ, उत्तम कुल अवश्य देखना चाहिए। किंतु साथ ही लड़का भी चरित्रवान् देखना आवश्यक है। क्योंकि पहले 'वर' और उसके बाद 'घर' देखा जाता है।"

"हाँ, गोपाल है तो नन्दाके योग्य ही। किंतु यह हमारी जातिका तो नहीं है, यही रुकावट है।" इस प्रकार अंतमें सुलक्षणाने अपने विचार बदलना आरंभ किया।

"लेकिन इससे क्या? वह किसी हल्की जातिका तो नहीं है। क्षत्रिय कुल हमसे कुछ नीचा नहीं कहा जा सकता। हमारे तीर्थंकर भी प्रायः सब क्षत्रिय ही हुए हैं इस बातको क्या तू नहीं जानती? साथ ही गोपालको हम अपने साथ ही रख कर उत्तम प्रकारका व्यापारी भी तो बनादेंगे? क्योंकि वह बहुत बुद्धिमान है। उसके आगमनके पश्चात् हमें कितना लाभ हुआ है, इसका तुझे क्या पता है?"

"तो क्या वह आपके व्यापार व्यवसायमें इतना कुशल होगया है?" सुलक्षणाने पूछा।

"हाँ, वह बहुत ही कुशल व्यक्ति है। उसकी बुद्धि-मानीका तो तुझे आगे चलकर पता लगेगा। कदाचित उसके शुभ चरणोंके प्रतापसे हमारा भाग्य भी किसी दिन पलट सकता है!"

"आप किस बात परसे यह सब कह सकते हैं ?"

"उसकी बुद्धि परसे, उसकी दूर दर्शिता परसे! इतना ही नहीं वरन् आज तुझे मैं एक गुप्तबात भी बतला देना चाहता हूं कि जिसदिन वह हमारे घर आया, उसी रातको एक देवताने आकर स्वप्नमें मुझे बतलाया था कि आज तेरे घर जो तरुण पुरुष आयेगा, वह तेरे संकट दूर कर सकेगा! साथ ही नन्दाको भी मैंने उसे वर माला पहनाते हुए देखा।' यह स्वप्न देख कर जैसे ही मैं जागृत हुआ कि उसी दिन गोपालका हमारे घर आगमन हुआ और उसी दिन से व्यापार-व्यवसाय में भी हमें बहुत कुछ लाभ हुआ है। अतएव मेरी समझसे तो यह उत्तम 'वर' ही सब प्रकार हमारी नन्दाके लिए योग्य हो सकता है ?"

"जैसी आपकी इच्छा! किंतु उसे लड़की देने पर हमें जाति-पांति में लोगोंकी बातें सुननी पड़ेगी। लोग हमारी निन्दा करेंगे।" इसका भी आप विचार करलीजिये।

"अब भी तो लोगोंने हमें दुर्वचन सुनानेमें कौनसी कसर रक्खी है ? तो क्या हमें उनके भयसे अपना हित बिगाड़ लेना चाहिए ? स्वयं नंदा ही जब अपनी इच्छासे उसे अपनानेको आतुर हो गई है, तो समझ लेना चाहिए कि इसमें भी उनका पूर्व जन्मका

सम्बन्ध अवश्य होगा। क्योंकि पूर्वके सम्बन्ध हुए बिना किसीके प्रति इस प्रकार प्रेम नहीं हो सकता। अतः प्रकृतिकी इच्छासे जो कुछ हो रहा है, उसे होने दो।"

भद्रसेठके समझानेसे सुलक्षणा सेठानी भी अपने पुराने विचार बदल कर सेठके साथ सहमत हो गई। उसने विचार किया कि अब अनुकूलताके अनुसार गोपालके विचार जानकर दोनोंका विवाह कर देना चाहिए।"

पति-पत्नीका यह गुप्त वार्तालाप एक व्यक्ति चुप-चाप सुन रही थी। उसने अंतिम निर्णयके शब्द सुनकर छुटकारेकी साँस ली।" जो कुछ हुआ वह अच्छा ही हुआ। पिताजीके मेरे विचारोंके अनुकूल हो जानेसे ही अंतमें माताको भी अपने विचार बदलने पड़े।" वार्तालापका अंत अपने अनुकूल होने से उसे हार्दिक प्रसन्नता हुई। उसके अंतःकरणमें अनेक प्रकारके विचार-प्रवाह वहने लगे और उसी समयसे वह सुखकी मनोहर सृष्टिमें विहार करने लगी। उसके नव यौवन भरे शरीरके रोम-रोम विकसित हो उठे। वह मन ही मन पिताका अनंत उपकार मानने लगी। जिसकी कृपासे विना किसी परिश्रमके उसको मनोकामना सिद्ध हो रही थी।"

"अपने माता-पिताका वार्तालाप समाप्त होते ही वह स्वयं अनजानकी तरह चुप-चाप जाकर अपने बिस्तर पर लेट गई।"

सुलक्षणा भी अंतमें अपने पतिके विचारोंसे सहमत हो गई। गंभीरतासे विचार करनेपर उसे गोपालमें सब प्रकारकी योग्यता दिखाई दी। उसके आचार-विचार, रहन सहन और बुद्धिमानी तथा काम करने की शक्ति आदि पर आश्चर्य भी हुआ। प्रथम दृष्टिमें ही उसे वह भाग्यशाली प्रतीत हुआ। साथ ही उसे विश्वास भी हो गया कि इस प्रकारके पतिको पाकर हमारी नंदा निश्चित ही सुखी हो सकेगी। उधर भद्रसेठके मनमें भी नँदाके विवाहके विषयमें जो चिंता कई दिनोंसे घर किये बैठी थी, और गोपालकी बात भी उसके ध्यानसे बाहर नहीं थी, अतः अनायास ही आज सुलक्षणासे चर्चा होनेपर नन्दाका भाग्य निश्चित हो जानेसे वह बहुत बड़ी चिन्ता भी दूर हो गई।

—:०:—

नवाँ परिच्छेद

विवाह

—:०:—

बेनातट नगरमें भद्रसेठके घरकी मेहमान दारी करते हुए कितने ही दिन व्यतीत हो गये। सामान्य रूपसे जो लोग परदेशके सेर सपाटेके लिए जाते हैं, उन्हें एक ही स्थानमें अधिक दिन रहना पसंद नहीं होता! इसी नियमानुसार गोपालका मन भी अब उस नगरकी शोभा देखते हुए उकता गया था। अतएव उसने अन्यत्र जानेकी इच्छासे भद्रसेठके सन्मुख अपने विचार प्रकट किये। उससे कहा:—"सेठसाहब किसी परदेसीके लिए एकही स्थानपर टिकजाना नीति नियमानुसार अनुकूल नहीं कहा जासकता और मुझे भी परदेश जाकर अपने भाग्यकी परीक्षा करना है। अतएव मैं आपसे विदा होना चाहता हूँ। इतने दिनोंतक पुत्रके समान आपने मुझ जैसे अपरिचित पुरुषका स्वागत-सत्कार किया उसके लिए मैं हृदयसे आपके प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ।"

"किंतु इस प्रकार अचानक ही आप यहाँसे जानेकी इच्छा क्यों कर रहे हैं? क्या हमारी ओरसे सेवा

सत्कार करनेमें आपको कोई किस प्रकारकी त्रुटि प्रतीत हुई है ?" सेठजीने उदासीन होते हुए गोपाल से पूछा।

"अरे, आप त्रुटिकी बात क्या पूछते हैं। आपकी ओरसे की गई मेहमानगिरीमें त्रुटि या कसर बताना मानो दूधमें से पौरे निकाल कर बताना ही होगा। आप ठहरे व्यवहार कुशल वणिक महाजन, आपके विवेकमें भला क्या खामी हो सकती है ? किन्तु मैं नये-नये देश देखना चाहता हूँ। इसीलिए आपसे विदा होने की अनुमति माँग रहा हूँ।"

"नहीं, आप यहाँसे जानेका तो नाम ही मत लीजिये। हम आपको किसी प्रकार भी आज्ञा नहीं देंगे ! क्योंकि अभी आपके साथ हमारा एक बहुत बड़ा काम होना तो बाकी ही रहा है।"

"वह इस धूलके सम्बन्धमें तो नहीं है न ? हमारे आपके बीच उसदिन जो वार्तालाप हुआ था, उसका मुझे स्मरण है। देशांतरसे जब मैं वापस लौटूँगा, तभी आपको इस तेजंतुरीका मूल्य दिलवा सकूँगा। तब तक मैं अवश्य इसका कोई ग्राहक ढूँढ़लूँगा।"

"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। ग्राहक ढूँढनेके लिए आपका यहाँसे चला जाना हमें उचित नहीं जान पड़ता ! वह तो भविष्यमें जो कुछ होना होगा

सो होगा ही। किंतु दूसरा एक बहुत ही महत्वका काम होना अभी शेष रह जाता है।"

"वह कौनसा कार्य है सेठ साहब ?"

"आप जानते ही हैं कि मेरी नंदा नामकी एक पुत्री है। वह अब विवाहके योग्य हो गई है। उम्र योग्य हो जानेसे अबतक मैं उसके विवाहके लिए योग्य वरकी खोज में ही था। किंतु जबसे आप मेरे अतिथि हुए हैं; तबसे अनायास मेरी वह चिंता दूर हो गई है।"

"मेरे आगमनसे आपकी वह चिन्ता किस प्रकार दूर हो गई ?"

"मैं अपनी नन्दाका आपके साथ विवाह कर देना चाहता हूँ।" भद्रसेठने स्पष्टता पूर्वक अपना मनोविचार कह सुनाया। किंतु गोपालके मनमें भला इसकी कल्पना ही कैसे हो सकती थी ?"

उसने आश्चर्यके साथ पूछा "क्या मेरे साथ ?"

"हाँ, आप ही के साथ ! शांत भावसे गंभीरता पूर्वक सेठजीने कहा।"

"आपका मस्तिष्क तो ठिकाने पर है न, सेठ साहब ? मैं कोई आपकी जातिका नहीं। भला कहाँ आप उत्तम वणिक महाजन, और कहाँ मैं एक अनजान परदेशी सामान्य मनुष्य !"

"यदि आप वणिक नहीं तो फिर कौन हैं? आपने अबतक हमें अपनी जाति भी तो नहीं बताई? फिर भी आप क्षत्रिय जैसे तो अवश्य प्रतीत होते हैं!"

"तो उससे क्या हुआ? आप वणिक (वैश्य) और मैं क्षत्रिय ठहरा। हमारे आपके बीचमें तो आकाश-पातालका अंतर है। मियां और महादेवका मेल कैसे जम सकता है?"

"वह भी बन सकता है। संसारमें क्या नहीं हो सकता। इस विशाल संसारमें सब कुछ हो सकता है। लंका की लड़की के लिए काश्मीरका वर मिल सकना कोई असंभव नहीं है। समर्थ विधाता सब कुछ कर सकता है।

"किंतु जान बूझकर मुझ जैसे परदेसीको आप अपनी पुत्री सौंप कर उसे क्यों दुखी बनाना चाहते हैं? मैं तो परदेसी हूँ, आज यहां तो कल किसी दूसरी जगह चला जाऊँगा।"

"किंतु मेरी पुत्री ही आपके साथ विवाह करनेको आतुर है। उसकी इच्छासे ही मैं आपके साथ इतना आग्रह कर रहा हूं।"

"वह तो नादान लड़की कही जा सकती है। किंतु आप भी इतने समझदार होकर ऐसी बात कैसे करते हैं?"

"गोपाल ! उसकी नादानीसे हम भी ना समझी का काम करें यह संभव नहीं। बल्कि बहुत ही गंभीरताके साथ विचार करने पर हमने अपनी पुत्री आपको सौंपनेका निश्चय किया है। हमें भली भाँती विचार-विमर्ष करनेके बाद आपहीको अपनी कन्या सौंपनेमें कल्याण प्रतीत हुआ है।

"किंतु नन्दाको समझा बुझाकर अपनी जातिमें ही विवाह करना क्या बुरा है? इससे तो आपकी जाति-पाँतिमें आपका सम्मान बढ़ेगा। अच्छे घरसे सम्बन्ध स्थापित होने पर मान-सम्मानमें वृद्धि होगी, और आपकी लड़की भी सुखी हो सकेगी।"

"इनमें से कोई भी बात नहीं हो सकती। नन्दाने मनसे आपको वरण कर लिया है। यदि आप उससे विवाह नहीं करेंगे तो इस जन्ममें तो वह अन्य किसीसे विवाह न कर दीक्षा ले लेगी, यह निश्चय है।"

अंततः नन्दाका निश्चय और उसकी दृढ़ प्रतिज्ञा सुनकर गोपालके मनमें उसकी धार्मिक भावनाके सम्बन्धमें सद्भाव हुआ। उसने समझ लिया कि निश्चित ही इस प्रकारकी धार्मिक स्त्री ससुरालमें आकर उभय कुलको उज्ज्वल बना सकती है। ऐसी बुद्धिमती स्त्रीके साथ उसके पतिको भी सुखप्राप्त हो सकता है। किंतु इस प्रकारका

विचार मनमें आते हुए भी उसने सेठजी से यही कहा कि "सेठसाहब, आप मेरा वंश या कुल नहीं जानते। भले ही मैं क्षत्रिय हूं, इतना आपको ज्ञात हो गया हो, किंतु जब किसीको अपनी कन्या देनी होती है, तब उसके सम्बन्धमें कुलशीलका परिचय तो प्राप्त करना ही चाहिये। उसमें भी फिर क्षत्रिय किसी एक ही प्रकारके नहीं होते!"

"आपका यह सब कथन ठीक हो सकता है। आप भलेही अपने वंश या जातिका परिचय न दें, क्योंकि हमें उसकी आवश्यकता भी नहीं है। मैं तो आपसे केवल इतनी ही प्रार्थना करता हूँ कि, मेरी नंदाकी अभिलाषा और उसकी प्रतिज्ञाको आप पूर्ण कर दीजिये। अन्यथा अवश्य ही संसार त्याग कर चारित्र अंगीकार करलेगी।"

"उसके कहने परसे ही आप कह रहे हैं कि वह दीक्षा ले लेगी। यद्यपि बालक अपनी मन मानी बात करानेके लिए चाहे जो कह सकते हैं, किंतु घरके बड़े बुढ़ोंको तत्कालही उसे सत्य नहीं मान लेना चाहिए।"

"हमारे बालकका हमें पता हो सकता है। वह सच कह रहा है, अथवा मिथ्या, यह हमारे जानकारीसे बाहर नहीं हो सकता। धर्मशास्त्रका अध्ययन करनेके पहले हीसे नन्दाकी चारित्र ग्रहण करने की इच्छा थी।

और कितनी ही बार उसने इसके लिए हमसे आज्ञा भी मांगी। किंतु वह हमारी एकमात्र पुत्री होनेसे भला, हम उसे किस प्रकार इसकेलिए आज्ञा दे सकते थे? अतः वह विनयशील बालिका हमारी आज्ञा न मिलनेके कारण जिस प्रकार अनिच्छा पूर्वक किसी कैदीको बन्दी गृहमें रहना पड़ता है, उसी प्रकार वह हमारे साथ इस गृहस्थीमें रह रही है। हम किसी अच्छे घरमें उसका विवाह करनेके प्रयत्नमें थे। इतने ही में आपका हमारे यहां अतिथि रूपमें आगमन हुआ। और जबसे आपको नंदाने देखा है, तभीसे उसके दीक्षा लेनेके भी विचार बदल गये हैं। किसी पूर्वके संबन्धके कारण उसका मन आपके प्रति आकृष्ट हो गया है, अतएव आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करते हुए उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण करें।" इस प्रकार भद्र सेठने साफ-साफ अपनी मनोभावना प्रकट की।

"गोपालने कहा कि आपके अधिक आग्रहके कारण मैं विवश हूँ। किंतु फिर भी मैं परदेसी हूँ। अन्य जाति का हूं।वैसे भी परदेसीका मिलाप बादलकी छायाके समान होता है, आज यहाँ तो कल कहाँ।"

हम तो अब आपकी शरणमें हैं। आपके प्रति पूर्णस्नेह

रखनेवाली नंदा अन्य किसीको वरण नहीं करेगी। विवाह करनेके पश्चात् भले ही उसे छोड़कर चले जावें अथवा जैसा भी ठीक समझें वैसा करें। फिर हमारा भाग्य जैसा भी हो। जाति-पाँतिकी तो हमें कोई चिंता नहीं, क्योंकि आप कोई हल्की जातिके नहीं हैं। आपके आचार-विचार एवं रहन-सहन ही आपकी कुलीनता प्रकट कर देते हैं। अतः हमारे और आपके बीच जो नाममात्रका अंतर है उसकी मुझे जरा भी चिंता नहीं। अपनी पुत्रीके कल्याणके लिए मैं इन सब बातोंको सहन कर सकता हूँ। मेरी पुत्री यदि सुखी होती हो और उसके मनपसंद सब काम होता हो तो मुझे इन सांसारिक-बन्धनोंकी बिल्कुल पर्वाह नहीं है। मैं उन तुच्छ विचार रखने वालोंमेंसे नहीं हूँ कि जो जात-पाँतके बन्धनमें बंधकर अथवा लोक निंदासे भयभीत होकर अपनी पुत्रीके सुख-सौभाग्यमें बाधक बनूं। क्योंकि इस प्रकारके बन्धनमें बँधे हुए लोगोंको बहुत ही परेशान होना पड़ता है। यद्यपि उनमें कोई-कोई सुखी भी होते हैं; फिर भी इस विषयमें लड़कीके विवाह योग्य हो जानेपर उसकी मनोवृत्तिका भी विचार सबसे पहले किया जाना चाहिए। अर्थात् उसकी मनोवृत्तिका पता लग जाने पर यदि हमें उसके विचार उचित जान पड़ते हों और भविष्यमें लड़कीका

निकट भविष्यमें ही होने जा रहा है। जिसके लिए वह अब तक प्रतीक्षा कर रहा था, वही अवसर आ रहा है। यह ठीक ही है कि जिसके लिए जो समय निर्धारित होता है, वह जबतक आ नहीं जाता तबतक कार्य सिद्धि नहीं हो सकती। सेठजीके घरमें रखी हुई वह धूल ही तेजंतुरी थी। किंतु उसकी परीक्षा करने वाला कोई न होनेसे सब उसे धूल ही समझ रहे थे। इसीलिए राजाने उस जहाजका सब सामान लेकर उसमेंकी धूलका सेठकी दीवालके पास ढेर लगवा दिया था। उस समय उसे कहाँ पता था कि वह धूल ही एक दिन उसकी और उसके नगरकी लज्जा रख सकेगी! सुवर्णसे भी उसका मूल्य अधिक आँका जायगा। किंतु इस प्रकारके भावीका भेद जाननेकी कुंजी खोज निकालना यदि सामान्य मनुष्यकी शक्तिका काम होता तो कितने ही दुःख सहज ही दूर हो जाते।"

"सेठजी! आप पटहको स्पर्श कीजिये।" गोपालने वस्तुका रहस्य समझाते हुए जब सेठसे कहा, तो गोपालकी बात सुनकर भद्रसेठ एकदम चौंके।

"क्या आप मेरी हँसी कर रहे हैं? भला मैं तेज-न्तुरी लाकर उसे कहाँसे दूँगा? और यदि वह वस्तु

उसे न देसका तो राजा मेरी क्या दुर्गति करेगा, इ जानते हो ?"

"हाँ, मैं सब कुछ समझता हूँ। इसीलिए पटहको स्पर्श करनेके लिए कह रहा हूँ। क्योंकि उसे स्पर्श करते ही आपका भाग्य उदित हो जायगा। खोया हुआ समस्त धनमाल, यश, सम्मान आपको पुनः प्राप्त होकर राजाको भी आपसे प्रसन्नता होगी।"

"किस प्रकार!. जरा स्पष्टतासे कहो!" आतुर होकर सेठने पूछा।

"गोपालने सेठजीको दीवारके पास पड़ी हुई उस धूलका स्मरण कराते हुए बतलाया कि "उस जहाजमें को धूलके विषयमें मैंने आपसे पहले कहा था, वह आपको याद है? वही तेजंतुरी है, राजाने धूल समझ कर उसे आपकी दीवारके पास ढेर लगवा दिया और आपकी हँसी की थी। किंतु आज उसी धूलसे ही आपकी खोई हुई प्रतिष्ठा जिसमार्गसे वह गई थी, उसीसे वापस आनेवाली है। इस प्रकार उस धूलके सम्बन्धमें गोपालने विस्तारसे स्पष्टी करण करके सेठजीको समझाया।

फलतः भविष्यके सुन्दर स्वप्न देखते हुए और साथही हृदयके उछलते हुए वेगके साथ भद्रसेठ ने पटहको स्पर्श किया। किंतु उस सामान्य मलिन वस्त्रधारी

जान पड़ता था; क्योंकि संपदाएँ तो पुण्यके ही अधीन होती हैं। अन्यथा उसके लिए तो मनुष्य अनेक प्रकारके छल-कपट और पापाचरण करनेमें निरन्तर प्रवृत्त रहता ही है!

सारांश, लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिए इच्छुक मानवको जैसे भी हो सके सब प्रकारके धर्म कर्ममें ही प्रवृत्त होना चाहिए। वह धर्म, दान, शील, तप और भाव, इन चारों प्रकारसे हो सकता है। इसप्रकार धर्म द्वारा पुण्यका सँचय होनेसे सम्पदाएँ अपने आप उस पुण्योदयके कारण प्राप्त हो जाती हैं। संसारमें लक्ष्मी ही मनुष्यका जीवन है। धनहीन मनुष्य बेचारे लक्ष्मी-पतियोंकी सेवा करते हुए आशा ही आशामें अपना जीवन बिता देते हैं। संसारमें इसीलिए मनुष्यका मूल्य नहीं है। अर्थात् वह लक्ष्मीके ही कारण सम्मान पाता है। । लक्ष्मीका प्रभाव कुछ जुदे ही प्रकारका होनेसे वह अपने तेज या प्रकाशद्वारा सबको वशमें करके दास जैसा बनादेती है। बड़े-बड़े विद्वान् भी अपनी विद्याका गर्व त्याग कर धनवानोंकी स्तुति करते हुए उनकी प्रीति-संपादन करनेके लिए आतुर होते हैं। अतः यह लक्ष्मी जिसके अधीन हो, अथवा जिसके पराक्रममें लक्ष्मीका वासहो, ऐसे पुरुष पुँगवोंकी यदि जगत् सेवाकरे, तो इसमें आश्चर्य जैसी बातही क्या हो सकती है?

तेरहवाँ-परिच्छेद

गर्भवती-नन्दा

—:o:—

इस बीच दो वर्षका समय व्यतीत हो गया। साथही अनेक घटनाएँ भी घटित हो गईं। अनेक प्रकारके परिवर्तन भी हुए। नन्दा और गोपालका यह समय अत्यन्त सुखमें व्यतीत हुआ; क्योंकि स्वभावकी अनुकूलता होनेपर ही एक दूसरेके मन मिल सकते हैं और मन मिलजाने पर सुखकी प्राप्ति होना अनिवार्य ही है। फलतः दोनोंका प्रेम दिन प्रतिदिन बढ़ता चलागया! और उस स्नेहका प्रत्यक्ष फल नन्दाके शरीर पर होता दिखाई दिया। नन्दा गर्भवती हुई और जैसे-जैसे उसका गर्भ वृद्धि पानेलगा वैसे वैसे उसके शरीर और रहन-सहनमें भी फेरफार होनेलगा। उसकी भूख एकदम मंद हो गई। वह बहुत ही थोड़ा भोजन करने लगी। उसका शरीर भी फीका (दुर्बल) हो चला! साथ ही हृदयमें चिन्ताकी ज्वाला जाग उठी। उसने उसका शरीर जलाना आरंभ किया। उस विषम

चिन्ताके प्रभावसे उसका शरीर एकदम काँटेकी तरह सूख गया। वह बहुत ही कम बोलती और थोड़ा ही परिश्रम करनेसे थक जाती। चलते-चलते श्वास फूल जाता। इसप्रकार न जाने किस दुःखसे वह बाला प्रतिदिन सूखती जा रही थी। वह मन ही मन अनेक प्रकारके विचार करती कि :—"मेरा दोहद किसप्रकार पूरा होगा? उसे कौन पूर्ण करेगा! और यदि यह दोहद पूर्ण न होसका तो अवश्य मेरी मृत्यु हो जायगी! किंतु इस प्रकारकी अनहोनी बात किसीसे कही भी कैसे जा सकती है?"

इसप्रकार अपनी प्राणप्रिया नन्दाको दुःखी देखकर गोपालने एकदिन अवसर पाकर पूछा :—"प्रिये! तेरे हृदयमें ऐसा कौनसा दुःख उत्पन्न हो गया है कि दिनों दिन सूखती जा रही है। क्या तेरे मनमें किसी प्रकारकी इच्छा उत्पन्न हुई है?"

प्रियतमके वचन सुनकर नन्दाने कहा :-"स्वामिन्! मैं क्या निवेदन करुँ? कहते हुए लज्जा आती है और उसे सुनकर भी आप क्या करेंगे?" क्योंकि—

"अपना जन भी हो यदि, पीडा लै न सकाय।
दुखती अँगुली पासकी, उँगली दुखी न होय॥"

उसे जान कर आप उलटे दुःखी ही होंगे। इस अपेक्षा मैं अकेली ही क्यों न दुःखी होती रहूँ?

इसप्रकार तू अपने मनमें, अधीर क्यों हो रही है ? मनकी चाहे जैसी बात अपने आत्मीय स्वजनको बतलानेसे उसका उपाय हो सकता है। संसारमें प्रत्येक दुःखकी औषधि एवं उसके निवारणकी विधि अवश्य निर्माण की हुई है। अतएव उसकेलिए उपाय तो अवश्यही किया जाना चाहिए।

क्योंकि—

आस व्याधिसे छूटिये, श्रम लै करिये उपाय।
भँवर पडी नौका नहो, बिन उपाय तट पाय॥

अतः तेरी चिंता जान लेनेके बाद, उसके लिए चाहे सो उपाय किया जा सकता है; किंतु मन ही मन घुटते रहनेसे भला, उसका निवारण किस प्रकार हो सकेगा ?"

"प्यारे ! गर्भके प्रभावसे मेरे मनमें एक दोहद उत्पन्न हुआ है और वह यदि पूर्ण न हो सका, तो अवश्य ही मैं इस लोकसे विदा हो जाऊँगी !"

"किंतु तू इतनी निराश क्यों हो रही है ? एक बार तू मुझसे कह तो सही कि तेरी क्या इच्छा है ?"

"जब आपका आग्रह ही है तो सुनिये। यों कहते हुए नंदाने अपने दोहदका वर्णन करना आरंभ किया कि मैं हाथी पर बैठकर राजमार्गसे दान देती हुई जाऊँ और राजा अपने परिवार सहित मेरे सामने आकर आगे-आगे

चले। इस ठाठसे मैं जिनालयमें जाकर शासन-नायक पार्श्वनाथकी पूजा करुँ! उसी तरह श्रेष्ठ हाथी पर बैठी हुई मेरे समत्त बाजे बजें और राजाके नौकर नाटक करते हुए मेरे सिरपर छत्र धारण करें। मैं लोगोंको मनो वाञ्छित दान दे सकूँ। साधर्मिकोंको भोजन कराकर वस्त्रादिसे संतुष्ट करुँ और देशमें अपनी दुंदुभी बजवाऊँ! इसप्रकार गाजेबाजेके साथ चैत्यपरिपाटी करके चित्तको प्रफुल्लित करुँ! साधुओंको घृतादिक आहार प्रदान करके अपनी आत्माको भवसागरसे पार उतारुँ और प्रत्येक जीवको अभय दान दे सकूँ। यही मेरे दोहदका स्वरूप है।"

"प्रिये! तेरा दोहद उत्तम है। गर्भमें जैसा जीव आता है, उसके कर्मके अनुसार ही स्त्रियोंके मनमें अभिलाषा उत्पन्न होती है। तेरे दोहदके अनुसार कोई उत्तम पराक्रमी धर्मनिष्ठ भाग्यशाली पुत्रकी तू माता होगी। उस पुत्रके प्रभावसे तेरे सभी मनोरथ पूरे होंगे।"

किंतु वह दोहद पूर्ण हो सके तब तो! जो बातें स्वप्नमें भी नहीं हो सकें, उन्हें साक्षात् ही कैसे बनाया जा सकता है! नहीं बनने योग्य कार्यको कैसे बनवायाजाय?"

"तुझे जो बातें स्वप्नमें भी संभव नहीं जान पड़तीं; उन्हें जब तु अपनी आंखोंसे प्रत्यक्ष देखेगी, तब तो तुझे विश्वास होगा न? तेरे गर्भमें आयाहुआ बालक यदि

पुण्यशाली होगा, तो उसके पुण्य प्रभावसे तेरी यह अभि-लाषा भी अवश्य पूर्ण होगी। इसलिए तनिक धैर्य रख!"

"आपकी वाणी सत्यसिद्ध हो और मेरी अभिलाषा शीघ्रतासे पूर्ण हो सके।" यों कहते हुए नंदाने शकुनकी गाँठ बाँधी।

"हाँ, तू निश्चित ही समझले कि तेरी यह अभिलाषा अवश्य पूर्ण होगी।" इसप्रकार नन्दाको आश्वासन देनेके बाद कुमार गोपालने भद्रसेठके पास आकर यह सब वृत्तान्त कह सुनाया। पुत्रीकी यह अभिलाषा जानकर सेठ भी विचारमें पड़ गये और गोपालसे ही पूछने लगे कि:—"नन्दाकी यह अभिलाषा किस प्रकार पूर्ण हो सकेगी?"

"राजासे कहनेपर ही आपकी पुत्रीका दोहद पूर्ण हो सकता है। आप राजा साहबके कृपा पात्र हैं, नगर सेठ हैं। क्या वे आपका इतनासा काम भी नहीं कर सकेंगे?"

"वे भला, कैसे ऐसा कर सकते हैं? इतने बड़े आदमीको हमारी क्या पड़ी है जो वे छत्र उठाकर आगे-आगे चलें। वह तो कोई विशेष प्रसंग उपस्थित होनेपर ही राजा अपनी इच्छासे ऐसा कर सकते हैं।"

"इसमें प्रसंगका प्रश्न ही क्या है? राजाके कौन लड़का बैठा हुआ है। यदि वे आपकी पुत्रीको ही अपनी

पुत्री मान कर उसकी अभिलाषा पूर्ण करना चाहें तो क्या यह सब नहीं हो सकता ?"

"किंतु उनके भी तो एक पुत्री है। वह बेचारी जन्मसे ही अंधी है। फिर भी उसकी बड़ी-बड़ी आँखें होनेसे वे उसे सुलोचना कहकर ही पुकारते हैं। राजाका अपनी पुत्री पर अत्यधिक प्रेम है। अतएव यदि कोई उसे अन्धी कहदे तो वे उसे कठोर दंड देते हैं; किंतु उस बेचारीके अंधत्वके सम्मुख वे लाचार हैं। अनेक प्रकारके उपचार करनेपर भी वह अंधत्व तो मानों जन्म-सिद्ध अधिकारकी तरह दूर होना ही नहीं चाहता। गरीब बेचारी सुलोचना!" भद्रसेठने सुलोचनाकी दशापर दया भाव प्रकट किया।

"सेठ साहब! तब तो आपकी पुत्रीके दोहद पूर्ण करनेका उपाय अवश्य हो सकता है!" गोपालने मुसकुराते हुए कहाः—"संसारमें सभी कोई अपना भाग्य लेकर ही आते हैं। वह किसीको निराश कभी नहीं करता, यह निश्चित समझिये!"

"वह उपाय क्या होसकता है! क्या आप उस जन्मान्ध राज कुमारीको नेत्रप्रदान कर सकते हैं? उसे पुनर्जीवन दे सकते हैं?" गोपाल की बात सुनकर सेठजीने उत्सुकतासे पूछा।

"हाँ, विधाताकी इच्छा होने पर वह पुनः नेत्र-दृष्टि प्राप्त कर सकती है। उसका अंधापन दूर हो सकता है।" गोपालने मधुर मुसकानके साथ फिर अपने कथनको दोहराया।

"वह किस उपायसे दृष्टि लाभ करसकती है! क्या आपके पास कोई औषधि है? अथवा अन्य किसी शक्तिके द्वारा आप ऐसा कर सकते हैं?"

"अन्य शक्तिके द्वारा और वह शक्ति है मेरे पासका यह प्रभावशाली रत्न! इस रत्न को जलमें पवित्र कर राजकन्याके नेत्रोंको लगानेसे वह अवश्य फिरसे दृष्टि लाभ कर सकती है। इसप्रकार उसका सुलोचना नाम भी सार्थक हो सकता है। यों कह कर गोपालने जब वह दिव्य रत्न सेठजीको दिया तो वे उस अनमोल रत्नको देखकर आश्चर्य-चकित हो गये।

इस रत्नको लेकर आप राजाके पास जाइये और यदि इस चमत्कारिक रत्नके प्रभावसे राजकुमारी दृष्टि प्राप्त करले, तो महाराजकी कृपा होनेपर आप उनसे अपनी पुत्रीका दोहद पूर्ण करनेकी माँग कीजिये।" गोपालकी वाणी और शक्ति देखकर सेठजी चकित हुए।

गोपाल! तुम भले ही अपने कुल गोत्र या स्थानका परिचय मत दो; किंतु फिर भी यह तो निश्चित ही है कि

तुम कोई अद्भुत् शक्तिशाली पुरुष हो! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि तुम मनुष्यके रूपमें कोई देव हो! क्योंकि देवताओंमें ही इस प्रकारकी दिव्यशक्ति हो सकती है। इसप्रकारके अद्भुत् कार्य कर सकनेकी बेचारे मनुष्योंकी क्या गुँजायश?" सेठजीकी बात सुनकर गोपाल हँसपड़ा।

"मैं कोई देव या महापुरुष नहीं। क्या आप इतना भी नहीं समझते कि देव होनेपर वह देवाँगनाओंकी प्रीति छोड़ कर सामान्य मानवीय-स्त्रीमें कैसे अनुरक्त हो सकता है? और इतने समय तक ठहर सकता है? कैसी भी स्त्री अपूर्व सुन्दरी होनेपर भी वह देवाङ्गनाओंकी दासी बन सकनेके लिए भी योग्य नहीं हो सकती?"

"जो भी हो; किंतु निश्चित ही आप कोई अद्भुत् शक्ति शाली पुरुष हैं और मेरे पुण्यका उदय होनेसे ही यहाँ पधारे हैं। मैं चाहता हूँ कि इस जीवन पर्यन्त आप मेरे यहीं निवास करें और सुखपूर्वक रहें।" भद्रसेठने प्रसन्न चित्तसे गोपालके प्रति आभार प्रदर्शित किया।

"किंतु एक बात मेरे हृदयमें खटकती रहती है। कई दिनोंसे मैं आपसे पूछना भी चाहता हूँ; किंतु आज तो आपको उसका स्पष्टीकरण करना ही होगा।"

"वह कौनसी बात है?" गोपालने उत्सुकतासे पूछा।

"वह यह कि उस जहाजमें भरी हुई वह धूल तेजंतुरी थी और उस तेजंतुरीसे तांबेका सोना बनानेकी विधि जब आप जानते थे तो उसे दूसरेके हाथ बेचनेकी अपेक्षा अपने यहीं पर उसका सोना क्यों नहीं बनाया और इतने समय तक व्यर्थ ही क्यों दुःख उठाते रहे ? उस देवनन्दी सार्थवाहके आनेतक आप क्यों धैर्य धारण किये रहे ?"

"कारण यही था कि उस समय राजाकी आपपर नाराजगी थी। इसीलिए मैं किसी अनुकूल समयकी प्रतीक्षामें था। उस समय राजाको उसके महत्वका यदि पता लग जाता तो जानते हैं कि आपकी क्या दशा होती ? राजा उस सारी तेजंतुरीको उठवा ले जाता और आपके लिए फिरसे धन सम्पन्न होनेका मार्ग सदैवके लिए बंद हो जाता। अतः किसी ऐसे सुयोगकी प्रतीक्षा करना आवश्यक था, जिससे कि राजाकी कृपा दृष्टि प्राप्त हो सके।"

"आपका कथन सत्य है। सचमुच ही बुद्धि और लक्ष्मीने आपहीको वरण किया है। प्रबल पुण्यवान् पुरुष ही सुखभोग कर सकते हैं। भोगियोंको सर्वत्र भोगकी प्राप्ति होती है भले ही वे देशमें रहें या परदेशमें !"

इसके बाद अपने मनका समाधान हो जाने पर सेठजी वह रत्न लेकर राजदरबारमें गये।

—:०:—

चौदहवाँ परिच्छेद

"कार्यकी सफलता"



मध्याह्नके समय भोजनादिसे निवृत्त होकर महाराज अपने कमरेमें विश्राम कर रहे थे। राज्यमें सर्वत्र शांतिका साम्राज्य होनेके साथ ही अपनी न्यायनीतिके कारण वे अपनी प्रजाके लिये अत्यंत प्रिय होकर निश्चिन्त थे। यद्यपि दुःख केवल अपनी प्रियपुत्री सुलोचनाके अंधेपनका ही था। उसके लिए राजाने अपने प्रयत्नमें कुछ भी कसर नहीं रखी थी। अनेक देश देशांतरके धन्वन्तरिके समान वैद्योंको बुलाकर उपचार करवाये; किंतु क्रूर विधाताके सम्मुख उन्हें विवश रह जाना पड़ा। जब कोई उपाय नहीं हो सका; तब वे हताश हो गये और विधाताके विधान पर विश्वास रख अपना समय व्यतीत करने लगे। यह बात पुरानी पड़ जानेसे राजाके मनमें अब उस बातके लिए विशेष दुःख नहीं था; क्योंकि दुःखको भुलानेकी औषधि

समय बीत जाना ही है। जैसे-जैसे दिन बीतते जाते हैं, वैसे-वैसे चाहे जैसा भी दुःख हो वह पुराना हो जाने पर उसका प्रभाव स्वाभाविक रूपसे ही कम हो जाता है।

पान चबाते और मनमें अनेक प्रकारके विचार करते हुए महाराजका ध्यान सम्मुख आये हुए एक प्रतिहारी पर पड़ा। राजाने प्रतिहारीसे पूछा :-क्यों कैसे आये? प्रतिहारीने नमस्कार करते हुए महाराजसे निवेदन किया कि :— महाराज! "नगरसेठ पधारे हैं। वे आपसे मिलना चाहते हैं।" राजाने सोचा कि नगरसेठ तो अपने खास व्यक्ति हैं अतएव उसी समय आज्ञादी कि—"जाओ, उन्हें आदर पूर्वक यहाँ ले आओ!"

राजाकी आज्ञासे प्रतिहारी नगरसेठको आदर पूर्वक भीतर बुला लेगया। सेठ राजाके सम्मुख भेट रखकर हाथ जोड़े खड़े रहे। राजाने मुस्कुराते हुए उन्हें आसन पर बिठाया। प्रतिहारी नमस्कार कर बाहर चला गया। राजाने सेठजी से कुशल क्षेमके समाचार पूछते हुए कहा कि :—"कहिये, आज कैसे इस समय आपका आगमन हुआ है?"

"महाराज! यद्यपि आगमनका हेतु कहने योग्य तो नहीं है। फिर भी आपसे निवेदन किये विना काम चल नहीं सकता।" सेठकी इस प्रकारकी बात सुनकर राजाकी

उत्सुकता बढ़ चली और उन्होंने सेठजीकी ओर ध्यान से देखा।

"आप क्या कहना चाहते हैं ? और किस विषयमें जो भी बात हो आप निःसंकोच कह सकते हैं।" राजाने कहा।

"मैं आपकी पुत्रीके विषयमें कुछ कहना चाहता हूँ। वह राजकुमारी उत्तम मानव जन्म पाकर भी उससे कोई लाभ न उठा सकी !" सेठने मुख्य प्रश्नकी भूमिका बाँधी।

"मेरी सुलोचनाके सम्बन्धमें आप कह रहे हैं ?" राजाने लम्बी सांस लेते हुए कहा :—"हाय ! मेरे शांत चित्तको आपने फिर व्याकुल कर दिया !"

"महाराज ! आप शांत होइये ! मैं इस समय ऐसी कोई बात सुनाकर आपको दुःखी करने नहीं आया हूँ। आप अपने चित्तमें जरा भी खेद न कीजिये।" सेठजीने राजाको धैर्य बँधाया।

"भला, उसके विषयमें मैं कैसे धैर्य रख सकता हूँ ? वह बेचारी राजकुमारी होते हुए भी जीवनमें क्या सुख पा सकी ? इतना वैभव और सुख समृद्धि होते हुए भी उसका जन्म तो निरर्थक ही चला गया ! हा ! उसके लिए उपाय करनेमें मैंने किस बातकी कसर रखी है !"

"महाराज ! जब किसी दुष्कर्मका उदय होता है, तब अनेक प्रकारके उपाय करने पर भी प्राणियोंको उसका फल तो भोगना ही पड़ता है और उसकी स्थितिका परिपाक होनेतक अनेक उपाय करने पर भी वे व्यर्थ ही सिद्ध होते हैं।"

"निश्चित ही, यह बात है। मेरे अबतकके सभी उपाय व्यर्थ सिद्ध हुए हैं। संसारके किसी भी वैद्यकी औषधि एवं मंत्र तन्त्र करनेमें मैंने कोई कमी नहीं की। किंतु भाग्यके सम्मुख लाचार होना पड़ा है!" राजाने निराशाके उद्‌गार प्रकट किये। "आज संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं दिखाई देती, जिसके द्वारा मेरी सुलोचना यथार्थमें ही सुलोचना बन सके।"

"आप अबतकके सभी उपायोंके निष्फल हो जानेसे निराश हो गये हैं; किंतु ऐसी कोई बात नहीं है। प्रत्येक रोगके लिए संसारमें उपाय तो होता ही है। मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ मनुष्य, जिसके लिए कि सब प्रकार की आशाएँ टूट जाती हैं, वह भी उपायसे स्वस्थ हो जाने पर दीर्घकाल पर्यन्त जीवित रह सकता है और सब कुछ कर सकता है।"

"तो क्या मेरी राजकुमारी फिरसे दृष्टि प्राप्त कर सकती है ?"

"अवश्य कर सकती है महाराज! स्मशानमें गये हुए मुर्दे भी जब जीवित होकर वापस घर लौट सकते हैं, तब आपकी कुमारी क्यों फिरसे दृष्टि नहीं प्राप्त कर सकती?"

"तो शीघ्र ही बतलाइये कि ऐसा कौनसा उपाय है; जिसके द्वारा मेरे मनोरथ सफल हो सकते हैं? मेरी सुलोचना फिरसे दृष्टि प्राप्त कर सकती है?"

"वह उपाय करनेके लिए ही इस समय मैं आपकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ। अतः अभी मैं सुलोचना कुमारीको देखना चाहता हूँ। यदि आप उसे यहाँ बुलादें तो बड़ी कृपा होगी।"

भद्रसेठके वचन सुनकर राजा मनमें अति प्रसन्न हुआ उसने पूछा :-"क्या आप उसे दृष्टि प्राप्त करा सकते हैं? यदि ऐसा था तो आजतक उस उपायको क्यों नहीं आजमाया?"

"महाराज, क्षमा करें! इस कार्यमें जिस शक्तिकी आवश्यकता होती है, वह अबतक मेरे पास नहीं थी। अतः उसके प्राप्त होते ही उसकी सत्यताकी परीक्षा करनेके लिए मैं अब आपकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ।"

"अच्छा, यह बात है!" कह कर राजाने तुरंत सुलोचनाको अपने दीवान खानेमें बुलवाया और सेठने अपने साथमें लाया हुआ रत्न पानीमें भिगोया।

उस दिव्य एवं प्रभावशाली रत्नके संस्कारित जलसे सेठने सुलोचनाकी आँखें धोयीं और जैसे ही वह जल उसकी आँखोंमें पहुँचा कि उसके आंखोंके पटल खुल गये। दिव्यनेत्रोंका तेज प्रकट हो गया। सुलोचनाका नाम सार्थक हो गया। इसप्रकार पापकर्मका उदय नष्ट होने पर पुण्यकर्म प्रकट हो गया!

सुलोचनाके नेत्रोंका तेज प्रकट होते ही उसने आश्चर्यके साथ सब लोगोंको देखा। वह प्रत्येक वस्तुको ध्यानसे देखने लगी। इसप्रकार अपनी पुत्रीको दृष्टि प्राप्त हो जानेसे राजाको बहुत ही प्रसन्नता हुई। और उसने तत्काल सेठजी से कहा कि:—"मैं आपसे अत्यंत प्रसन्न हूं। कहो, इसके बदलेमें आपको क्या दूँ? क्योंकि अब तक जो काम सब प्रकारके प्रयत्न करके भी सिद्ध नहीं हो सका था, उसे आपने सहज ही कर दिखाया। अतः मेरे लिये तो आज सर्वस्व ही प्राप्त हो गया है।"

"हम जैसे गरीब प्रजाजन पर सदैव आपकी दया दृष्टि रहे यही क्या कम है! हम तो केवल आपकी कृपा-दृष्टिके ही भूखे हैं।"

"नहीं! ऐसा कहीं हो सकता है? यदि आप कहें तो आज मैं अपना आधा राज्य भी दे सकता हूं। चाहें

तो बड़ी जागीर या ग्राम अथवा जो भी मांगें, वही दे सकता हूँ !"

"किंतु महाराज ! हम ठहरे वणिक महाजन ! हम आपके राज्यको लेकर क्या करें ? यदि इस उपाधिको सिरपर झेल लें तो और न जाने किस संकटमें फँसना पड़े। राज्य-देश और जागीर तो आप ही जैसे समर्थ लोगोंको शोभा दे सकते हैं।"

"फिर भी आपको कुछ तो मांगना ही होगा। आपके उपकारको मैं वैसे ही रखना नहीं चाहता। कुछ न कुछ तो स्वीकार करनेकी आपको कृपा करनी ही होगी। आपके इस उपकारका बदला मैं किसी प्रकार भी नहीं चुका सकता ! फिर भी इसके बदले कुछ तो आपको स्वीकार करना ही होगा।"

"यदि आपका इतना आग्रह ही है तो थोड़ी-सी कृपा करनी होगी। मेरी पुत्रीको एक दोहद उत्पन्न हुआ है; उसे आप पूर्ण कर सकते हैं।"

राजाने उत्सुकतासे पूछा:-"उस दोहदका स्वरूप क्या है ?"

सेठने दोहदका सविस्तार वर्णन कह सुनाया। उसे सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने कहा:—"भला जिसे इतना उत्तम दोहद उत्पन्न हुआ हो, उसके गर्भकी संतान कितनी उत्तम होगी ?" यह कहते हुए राजाने

सुलोचनाके दोहदको पूर्ण करनेकी स्वीकृति प्रदान की। यथासमय राजाने अपनी सवारीके हाथीपर सुलोचना और नन्दाको बैठाया तथा राजा स्वयं उनके आगे चलने लगे। इसीप्रकार उसके सामने नृत्य होने लगे। छत्र-चामर डुलाये जाने लगे। बन्दीजन बिरुदावली गाने लगे साथही बाजोंके मधुरस्वर वातावरणको गुँजाने लगे राजाके साथ अनेक नरनारी भी चलने लगे। इस ठाठ साथ यह शोभायमान जुलूस नगरमें भ्रमण करता हुआ जिनमंदिरके सामने पहुँचा। नंदाने हाथीसे उतरक जिनराजकी द्रव्य और भाव पूजा की।

तत्पश्चात् उसी ठाट-पाठके साथ नंदाने घर वाप आकर, मोक्षके लिए धर्म-कार्यमें लगे हुए उत्त साधुओंको बुलाकर प्रासुक अन्न-पानादिसे प्रतिलाभ किया, दान दिया और समस्त देशमें अमारीपटह की घोषणा कराई। इसप्रकार राजाकी कृपासे नन्दाका दोहद परिपूर्ण हुआ।

नन्दाका दोहद पूर्ण होनेसे गोपालको भी हार्दिक प्रसन्नता हुई। उसने नन्दासे कहा कि तुझे धर्म-कार्यमें अत्यन्त श्रद्धा-भावना हुई और देशमें अमारीपटह घोषणा द्वारा सब जीवोंको अभय दान दिया गया। इसलिए तेरे पुत्रका नाम भी अभयकुमार ही रखा जायगा।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

ऐतिहासिक महापुरुषोंकी सफलता

युगके आदिमें यह भारत भूमि भरतक्षेत्रके नामसे विख्यात हुई थी। किंतु उसमें हम जैसे प्रपंची, कषाय वाले और असि, मसि, एवं कृषि रूप वाणिज्यसे युक्त मनुष्योंके बदले भोले, सरल, सुखी एवं इच्छित वस्तु प्राप्त करनेवाले, असि, मसि और कृषि रूप वाणिज्यसे रहित युगलिक लोग रहते थे। उन्हें न तो राजाकी आवश्यकता थी और न बड़े-बड़े भवनों या उद्योग व्यवसायोंकी ही। उनकेलिए कोई लम्बे चौड़े व्यवहार भी आवश्यक नहीं थे।"

वे युगलिक लोग भी असंख्यातसे भी असंख्यात वर्षोंतक, अर्थात् इस वर्तमान अवसर्पिणीके ही युगमें लगभग करोड़ों सागरोपम व्यतीत हो जाने पर कालबलसे उन युगलिकोंमें से ही एक विमलवाहन नामके युगलिकको जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ। उस समय तक जात

पांतके भेद रहित सब लोग समान रूपसे सुखी, संतोष एवं कषाय रहित और समान ऋद्धिवाले होनेसे मनचाहा आनन्द प्राप्त करते थे; किंतु इस अवसर्पिणीके तीसरे आरेके अन्तमें जातिस्मरण ज्ञानकी प्राप्तिसे विमलवाहन कुछ विशेषता आगई। अतः सबने उसे बड़ा मानकर प्रतिष्ठित किया। उसका वचन सभी मानने लगे। वह जैसे आज्ञा देता, सभी उसका पालन करते। युगलिकों छोटे-छोटे झगड़े होनेपर भी जब विमलवाहनके सम्मुख विवाद प्रस्तुत किया जाता तो वह उसपर उचित निर्णय देता और सभी युगलिक उसके न्यायको शिरोधार्य करते

विमलवाहन उस युगमें प्रथम राजा तो नहीं; किंतु सारे भरतक्षेत्रके युगलिकोंके नायकके रूपमें रहा। उसके वंशमें क्रमशः इसीप्रकारके सात युगलिक नायकके रूपमें हुए। उन सबने अपनी सत्ता अर्थात् नायकताको सुरक्षित रखा। यही नहीं वरन् प्रतिदिन उसमें सुधार भी करते रहे। वे सातों नायक राजा तो नहीं; किंतु कुलकरके नामसे प्रसिद्ध हुए, उनमें सातवें कुलकर नाभिराजा हुए।

नाभिराजाकी मरुदेवी नामक पत्नीसे ऋषभ और सुमंगला नामके युगलोंका जन्म हुआ। वे ही ऋषभदेव आगे चलकर वास्तविक राजा हुए। अभिषेकपूर्वक उनको सिंहासन पर बैठाया गया और इस आर्यवर्तके

रतक्षेत्रके ऋषभदेव ही सबसे पहले राजा हुए। अभि-ककी विधि उन्हींसे आरंभ हुई। उन्होंने युगलिकोंमें धर्म नाश होता देख कर उन्हें दुःख मुक्त करनेके लिए मनुष्य-धर्म-व्यवहार-धर्म सिखाया। पुरुषोंकी बहत्तर तथा स्त्रियोंकी चौंसठ कलाऐं समस्त मानवोंको बतलाकर अन्य कितने ही व्यवहार करने योग्य कार्य प्रचलित किये। ग्राम, नगर और विशाल जनपद बसाकर विभिन्न देशोंमें विभाजित किया। हाथी, घोड़े, बैल आदि उपयोगी पशुओंका संग्रह कर लोगोंको उनका उपयोग करना सिखाया। संक्षेपमें ऋषभदेवने ही इस आर्यावर्तके मानवोंको असि (तल्वार) मसि (स्याही कलम) और कृषि विद्यामें निपुण बना दिया था।

दीर्घकाल तक राज्यसिंहासन पर आरूढ़ रह कर शासन चलाने और अपने सौ पुत्रोंको विभिन्न देश प्रदान करनेके पश्चात् अपनी गद्दीपर भरत नामक ज्येष्ठ पुत्रको स्थापित कर उन्होंने स्वयं दीक्षा ग्रहण करली। उनका राज्य विनिता-अयोध्या नगरीमें था। दूसरे पुत्र बाहुबलीको बहुली देश (वर्तमान-आजका अफगानिस्तान) का राज्य दिया। इसप्रकार भरत नाम परसे जैसे यह भारतवर्ष कहलाया, उसीप्रकार बाहुबलीके नामपरसे वह देश बहुली कहलाया। इसप्रकार कितनेही देश उनके पुत्रोंके नामसे

प्रसिद्ध हुए। वैसे ही मगधनामके पुत्रके नामसे जहाँ उसका शासन था, वह देश मगध कहलाया और वह आज भी विद्यमान है। सौराष्ट्र आदि और भी कई नाम ऐसे हैं जो उनके पुत्रोंके नामसे स्थापित हुए थे और वे आज भी विद्यमान हैं। ये ही ऋषभदेव आर्यावर्तके प्रथम तीर्थंकर हुए।

श्री ऋषभदेवने चारित्र ग्रहण कर कैवल्यपद प्राप्त करते हुए धर्म मार्गका प्रथमबार आरंभ किया, उस समय तक कोई खास धर्म नहीं था। अतः ऋषभदेवने ही सबसे पहले जैनधर्म चलाया।

उनके निर्वाणके पश्चात् तीसरा आरा समाप्त होने पर चौथे आरेके आरंभमें ऋषभदेवके 'युवराज' पुत्र भरत इस समस्त आर्यावर्तके अधिपति अर्थात् छह सौ खण्डके राजा-चक्रवर्ती राजा हुए। उस समय भारतका कोई कोना या प्रदेश उनकी सत्ताके बाहर नहीं था।

उनके सिंहासनपर उन्हींके ज्येष्ठ पुत्र सूर्ययशा आसीन हुए। उन्होंने तीन खण्ड पृथ्वीका राज्य दीर्घकाल पर्यन्त किया। उनके पश्चात् उस वंशमें अनेक राजा हुए। क्रमशः उस विनिता (अयोध्या) की गादी पर 'जितशत्रु' नामका राजा आरुढ़ हुआ, उसका सुमित्र नामका युवराज बंधु था। जितशत्रु राजाका अजीत नामका पुत्र और सुमित्रका सगर नामका पुत्र हुआ। अजीत चारित्र ग्रहण

कर "केवल पद" प्राप्त करके दूसरे तीर्थंकर हुए और सगरने छह खण्डकी पृथ्वीपर अधिकार करके चक्रवर्ती पद प्राप्त किया।

उनके जह्नु आदि साठ हजार पुत्र जब अष्टापदपर्वत की यात्राके लिए गये, तब उस अष्टापदके चारों ओर दण्ड रत्नसे खाई खोदकर उसमें गंगाके प्रवाहको पलट दिया। उसीपरसे गंगाका नाम उस समयसे जाह्नवी कहलाया और वे सभी पुत्र वहीं दैव कोपसे जलकर भस्म हो गये।

किंतु गंगाके उस प्रवाहसे लोगोंको कठिनाई होती थी; अतः सगर राजाके पौत्र एवं जह्नुके पुत्र भगीरथ को सगरने बड़ी सेनाके साथ भेजा और भगीरथने दैवी कृपा प्राप्त कर गंगाको अपने दण्ड रत्नसे आकर्षित करते हुए कुरुक्षेत्रके मध्य भागसे हस्तिनापुरके आगे दक्षिण विभागमें और वहाँसे कौशल देशके पश्चिमकी ओर मुड़ाकर प्रयागके उत्तरमें होते हुए काशीके दक्षिणमें लेजा-कर उसका प्रवाह विन्ध्याचलकी ओर फिराया। विन्ध्या-चलके दक्षिणसे अंग तथा मगधदेशके उत्तरमें उसका प्रवाह मोड़ कर दूसरी अनेक नदियोंके साथ मिल जानेवाली गंगाको लवण समुद्रके पूर्व प्रदेशमें उतारकर उसमें मिला-दिया। तभीसे गंगाका तीसरा नाम भागीरथी हो गया।

सगरके सिंहासनपर उसका पराक्रमी पुत्र भगीरथ राजा

हुआ। उसने भी दीर्घकाल तक पृथ्वीका साम्राज्य भोगा। तत्पश्चात् उस सिंहासन पर और भी असंख्य राजा हुए; कि हमेशा चक्रवर्ती ही आर्यावर्तके समस्त प्रदेशों पर शास करता है। उसके सिवाय अन्य समर्थ राजा आर्यावर्त भरतभूमिके तीन खण्ड पर ही शासन कर सकते हैं।

दूसरे तीर्थंकर अजितनाथके मोक्ष कल्याणक पश्चात् बहुत समय बीत गया, तब श्रावस्ती नगरीमें 'जितारी' राजाके यहां तीसरे सम्भवनाथका जन्म हुआ। उनके पश्चात् अयोध्यानगरीमें चौथे तीर्थंकर अभिनन्दन-स्वामी हुए। इसप्रकार क्रमशः शीतलनाथ पर्यन्त दस तीर्थंकर हो गये।

ग्यारहवें श्रेयांसनाथ तीर्थंकर सिंहपुर ❀ नगरमें हुए। इनके समयमें पोतनपुर नगरमें त्रिपृष्ठ नामके प्रथम वासुदेव हुए। रत्नपुरनगरके प्रतिवासुदेव अश्वग्रीवका नाश करके उन्होंने त्रिपृष्ठवासुदेवकी पदवी पाई। इनके भाई अचल और वलदेव थे।

प्रत्येक वासुदेवको कोटिशिला उठानेके लिए मगध-देशमें आवश्यक रूपसे आना पड़ता है। चक्रवर्ती की

❀ यह स्थान इस समय काशीसे लग भग दो मील दूर सिंहपुरीके नाम से मौजूद है।

अपेक्षा बलदेव और अर्ध ऋद्धि-सिद्धि वाले होते हैं। तीनों खण्डमें इनकी सत्ता निर्विघ्न रूपसे चलती है।

इसके पश्चात् बारहवें वासुपूज्य तीर्थंकरके समयमें विजयपुरपति तारक नामके प्रतिविष्णुको मारकर द्वारिकाके पति द्विपृष्ठनामके दूसरे वासुदेव हुए। विमलनाथ स्वामीके समयमें मेरकनामके प्रतिवासुदेवका नाशकर द्वारिकाधीश स्वयंभू तीसरे वासुदेव हुए।

बीचमें कितना ही समय बीतजानेके पश्चात् कोशल देशकी अयोध्यानगरीमें चौदहवें तीर्थंकर अनन्तनाथ हुए। उनके समयमें पृथ्वीपुर नगरमें मधु नामक प्रतिविष्णु हुआ, उसका कैटभ नामक लघुबन्धु होनेसे, ये मधु-कैटभके नामसे प्रसिद्ध हुए। इन प्रति वासुदेवोंको मारकर पुरुषोत्तम चौथे वासुदेव हुए। पन्द्रहवें धर्मनाथ तीर्थंकरके समयमें हरिपुरनगरका स्वामी निशुम्भ नामका प्रतिवासुदेव हुआ। उसे मारकर पुरुषसिंह पांचवें वासुदेव हुए। उनके बाद मघवा और सनत्कुमार नामक चक्रवर्ती हुए।

बीचमें शांतिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ ये सोलहवें-सत्रहवें और अठारहवें तीर्थंकर हुए जिन्होंने धर्ममार्गकी प्ररूपणा की। इसीप्रकार पाँचवे छठे और सातवें चक्रवर्ती भी यही हुए।

श्री अरनाथके समयमें सुभूम नामके आठवें चक्रवर्ती हुए। जगत् प्रसिद्ध परशुराम उस समयमें पराक्रमी पुरुष होनेसे तथा उनके पिता जमदग्नि ऋषिको हस्तिनापुरके स्वामी अनंतवीर्य एवं कृतवीर्य द्वारा त्रस्त किये जानेके कारण उन्होंने क्षत्रियोंके शत्रु बनकर सातबार (ग्यारहवार) पृथ्वीको क्षत्रियरहित कर दिया। इसी कृतवीर्यके पुत्र आठवें चक्रवर्ती*सुभूमने क्षणमात्रमें परशुरामका वध करके पूर्वकी शत्रुताका स्मरण करते हुए इक्कीस बार पृथ्वीको ब्राह्मण रहित किया।

इन्हीं अरनाथ प्रभुके शासनमें बलि नामके प्रतिवासुदेव को मारकर पुरुष पुंडरीक नामके छठे वासुदेव हुए। इसीप्रकार प्रहलाद नामके प्रतिवासुदेवको मारकर सातवें दत्तनामके वासुदेव हुए। तत्पश्चात् मिथिलानगरीमें उन्नीसवें मल्लिनाथ नामके तीर्थंकर ५५००० पचपन हजार वर्षकी आयुष्य वाले हुए।

दसवें शीतलनाथ प्रभुके समयमें अंगदेशकी चंपापुरी नगरीमें चन्द्रकीर्ति नामक राजा पुत्र रहित मृत्युपानेके कारण हरि नामका कोई राजा हुआ। उसकी पत्नीका नाम हरिणी था। उस हरि राजाके नामसे ही संसारमें हरिवंश प्रसिद्ध हुआ। इस हरिवंशमें भी अनेक राजा हुए।

* आठवें चक्री छठे वासुदेवके बाद हुए हैं।

उनमें से किसी राजाने मगध देशमें जाकर अपना राज्य स्थापित किया। मगध देश की राजगृही नगरीमें हरिवंशके कितने ही राजा हो गये। उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लिनाथ स्वामीके मोक्षगमनके पश्चात् कालान्तरमें मगधदेशकी गद्दीपर सुमित्र नामक राजा हुआ। उनके यहाँ तीस हजारवर्षकी आयुष्यवाले बीसवें मुनिसुव्रतस्वामीका जन्महुआ युवावस्थामें दीर्घकालपर्यन्त मगधका शासन करनेके पश्चात् दीक्षा ग्रहण कर बीसवें तीर्थंकरके रूपमें उन्होंने शासन की शोभा बढ़ाई। उनके समयमें लाटदेशकी राजधानी भरोंच नगरमें जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। इनके समयमें हस्तिनापुर नगरमें महापद्म नामक नवम चक्रवर्ती हुआ और इन्हींके शासन कालमें ही रावण नामका आठवाँ प्रतिवासुदेव भी हुआ। उसका नाश करके जगत्विख्यात नारायण (लक्ष्मण) और राम आठवें वासुदेव और बलदेव हुए।

उनके पश्चात् इक्कीसवें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान दस हजार वर्षकी आयुष्यवाले हुए। उनके समयमें दसवें हरिषेण नामके चक्रवर्ती भी हुए। उनकी भी आयु उतनी ही थी। उनके तीर्थमें ग्यारहवें जय नामके चक्रवर्ती हुए।

नेमिनाथ तीर्थंकरके तीर्थमें मगधदेशकी गद्दीपर इक्ष्वाकुवंशका विजय नामक राजा राज्य करता था। उस

राजाके जय नामका पुत्र हुआ। वही ग्यारहवाँ चक्रवर्ती हुआ। छह खण्ड पृथ्वी पर अधिकार करके लगभग दो हजार वर्ष पर्यन्त भरतक्षेत्रका साम्राज्य भोगते हुए राजगृहीमें उन्होंने शासन किया।

शुक्तिमति (मथुरानगरी) में हरिवंशका वसुनामक राजा हुआ। उसका पुत्र सुवसु भागकर नागपुर चला गया। उसके बृहद्रथ नामका पुत्र हुआ उसने मगधदेशमें जाकर राजगृही नगरीमें अपनी गद्दी स्थापित की। उसके वंशमें इसी नामका बृहद्रथ राजा हुआ। उसके जरासंध नामक नवाँ प्रतिवासुदेव महा बलवान् पुत्र हुआ। इस प्रचण्ड सत्ताधारीने विद्याधरोंकी दोनों श्रेणियों सहित तीनखण्ड पृथ्वीको जीत लिया। यह मगधराजा आधे भारतका स्वामी बन कर तीन खण्डकी समृद्धिका भोक्ता हुआ। इसकी वृद्धावस्थामें सिन्धुदेशकी शौरीपुरीमें अंधकवृष्णि नामक राजा राज्य करता था। उसके समुद्रविजयादि दस पुत्र हुए वे जगत्में दशार्ह नामसे प्रसिद्ध हुए। वसुदेव अनुज-छोटे बन्धु थे। उन वसुदेवके श्रीकृष्ण और बलभद्र नामके पुत्र उत्पन्न हुए। वे जरासंधको मारकर नवम वासुदेव और बलदेवके रूपमें संसारमें प्रकट हुए। उस समय समुद्रविजय राजाके पुत्र नेमनाथ बाईसवें तीर्थकर हुए। ये कृष्ण ही नवें और अंतिम वासुदेव थे।

जरासन्धकी मृत्युके पश्चात् उसकी गद्दी पर उसका पुत्र सहदेव बैठा। उसके पश्चात् और भी कितने ही राजा हुए होंगे। अंतमें पाँचालदेशके काम्पिल्य नगरके ब्रह्मराजाकी चुल्लणी रानीसे ब्रह्मदत्त नामका बारहवाँ चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ। इस भरत भूमिपर यही बारहवाँ और अंतिम चक्रवर्ती राजा था। छह मासमें इसने भरत क्षेत्रके छह-खण्ड पर अधिकार करके अपनी सत्ता स्थापित की थी। सातसौ वर्ष की आयु पूर्ण कर यह अंतिम चक्रवर्ती भी इस नश्वर संसारसे विदा हो गया। उसके पश्चात् उसका पुत्र गद्दीपर बैठा। उसने तीन खण्ड पृथ्वीपर अपनी सत्ता स्थापित की; क्योंकि चक्रवर्तीके सिवाय छह खण्ड पर सत्ता स्थापित करनेकी शक्ति किसीमें कैसे हो सकती है?

—:०:—

सोलहवाँ-परिच्छेद

मगधराज प्रसेनजित

—:०:—

इस भरतक्षेत्रके बत्तीस हजार देश कहलाते हैं। इस देशका अधिपति राजा मुकुटधारी राजा होता है। ऐसे बत्तीस हजार राजा, चक्रवर्तीकी आज्ञाको प्रभुकी आज्ञाके समान शिरोधार्य करते हैं। जबकि वासुदेव सोलह हजार देशके स्वामी अर्थात् सोलह हजार मुकुटधारी राजाओंसे सेवित होते हैं। उन बत्तीस हजार देशोंमें केवल साढ़े पचीस हजार ही आर्यदेश कहलाते हैं। बाकीके सभी देशोंको अनार्य समझना चाहिए। मध्यभागके आर्य-देशोंमें ही तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव और प्रति वासुदेव, प्रमुख-शलाका-उत्तम पुरुष उत्पन्न होते हैं। वे शलाका पुरुष २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ६ वासुदेव ६ बलदेव, ६ प्रतिवासुदेव मिलाकर ६३ तिरसठ होते हैं। प्रत्येक वासुदेवके समयमें नारद भी नौ होते हैं, जो मोक्षगामी होते हैं। इसीप्रकार ग्यारह रुद्र भी

होते हैं। इस तरह सब मिलाकर ८२ पुरुष पूर्वके ही समान इस युगमें भी उत्पन्न हुए हैं। ये सभी श्रावक धर्मका पालन करने वाले होते हैं।

मनुष्योंकी स्वाभाविक शक्तिकी अपेक्षा इन शलाका पुरुषोंकी शक्ति अत्यंत ही आश्चर्यकारी होती है। अधिकांश मनुष्योंका जो सामना करसके वह योद्धा कहलाता है। ऐसे बारह योद्धाओंका बल एक बैलमें होता है और दस बैलोंकी शक्ति एक घोड़ेमें होती है और बारह घोड़ोंका बल एक भैंसे (पाड़े) में होता है। पन्द्रह भैंसों (पाड़ों) का बल एक उन्मत्त हाथीमें होता है और पाँचसौ हाथियोंका बल एक केशरीसिंहमें होता है। दो हजार केशरीसिंहका बल एक अष्टापद नामके जानवर (पक्षी) में होता है। दसलाख अष्टापदका बल एक बलदेवमें होता है और दो बलदेवका बल एक वासुदेवमें होता है, दो वासुदेवके बराबर एक चक्रवर्तीमें बल होता है। एकलाख चक्रीके समान बल एक नागेन्द्रमें होता है और करोड़ नागेन्द्रके जितना बल एक इन्द्रमें होता है और ऐसे अनन्त इन्द्रोंका बल एक जिनेश्वरकी कनिष्ठिका (छोटी) उँगलीमें होता है। इसीसे तीर्थंकर भगवंत अतुल बल शाली और अनंत वीर्यवाले कहलाते हैं।

अंतिम ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीके पश्चात् बीचमें कितना ही

समय व्यतीत होगया, जबकि काशी देशकी राजधानी वाराणसी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशके आभूषण स्वरूप अश्वसेन नामके पराक्रमी राजा हुए। उन्हीके यहाँ पार्श्वकुमारका जन्म हुआ, जिन्होंने चारित्र ग्रहण करनेके पश्चात् सित्तर (७०) वर्षकी अवस्था तक केवल पदवी धारण कर भव्य जीवोंको प्रतिबोध करते हुए सौ वर्षकी आयु पूर्ण कर निर्वाण पद पाया।

बाईसवें नेमिनाथके निर्वाण-मोक्षगमनके पश्चात् ८३७५० वर्ष बीतने पर पार्श्वनाथ स्वामीने सम्मेत शिखर पर्वत पर मोक्षपद प्राप्त किया, उसी सम्मेत शिखरके पहाड़ पर रिषभदेव, वासुपूज्य, नेमिनाथ और महावीर स्वामीके सिवाय बीस तीर्थंकर मोक्षपदको प्राप्त हुए है। रिषभदेव अष्टापद पर्वत पर और वासुपूज्य स्वामी चंपापुरी में तथा नेमिनाथकी दीक्षा, केवल और मोक्ष ये तीनों ही कल्याणक गिरिनार पर्वत पर हुए हैं और महावीर स्वामी पावापुरीमें निर्वाण पदको प्राप्त हुए।

प्रत्येक वासुदेव श्यामवर्ण वाले और पीत वस्त्रधारी होते हैं। प्रतिवासुदेव भी श्याम ही होते हैं किंतु उनके ज्येष्ठ बन्धु बलदेव सुवर्णके समान और श्वेतवर्ण वाले होते हैं। इसी प्रकार वे नीलवस्त्र धारी होते हैं। वासुदेवोंकी अपेक्षा बलदेव बड़ी अवस्थाके होते हैं।

उन वासुदेवोंके परलोक गमनके पश्चात् बलदेव चारित्र ग्रहणकर प्रायः मोक्षगामी होते हैं।

विष्णु और प्रतिविष्णु नियमसे अधोगामी होते हैं। यह सब उनके पूर्व जन्मके नियाणा—संकल्पका फल होता है। चक्रवर्ती छह खण्डका त्यागकर साधुत्व अंगिकार करनेपर ही सुरक्षित या विद्यमान रह सकते हैं; अन्यथा वे अत्यंत पापके भारसे सातवीं नक भूमिसें उतर जाते हैं; क्योंकि जो कर्मशूर होते हैं; वे ही धर्मशूर भी हो सकते हैं।

तीर्थंकर और चक्रवर्तियोंकी माताएँ चौदह स्वप्न देखती हैं। वासुदेवकी माताएँ सात स्वप्न देखती हैं। जबकि बलदेवकी माताएँ चार ही स्वप्न देखती हैं। चक्रवर्तीके चौदह रत्न होते हैं। जबकि वासुदेवोंके भी शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष्य, कौस्तुभ-मणि और भयंकर खड्गरूपी सात रत्न होते हैं। बलदेवोंके हल, मूसल आदि प्रमुख रत्न होते हैं। इसी प्रकार प्रतिविष्णुके पास भी हल, मूसल, गदा, चक्र आदि रत्न होते हैं। ये देवाधिष्ठित रत्न इनके परलोक गमनके साथ ही अदृश्य हो जाते हैं। इसके सिवा स्वयं भी अनेक विद्याओंके जानकार तथा शक्ति सम्पन्न होते हैं।

चक्रवर्तीके चौसठ हजार रानियाँ होती हैं। जबकि वासुदेवोंके बत्तीस हजार स्त्रियाँ होती हैं। इनके सिवाय दासियोंका परिवार अलग ही होता है। जितनी स्त्रियाँ होती हैं उतने ही रूप धारण कर वे उत्तम पुरुष सभी स्त्रियोंसे एक साथ ही सुख भोगनेका सामर्थ्य रखते हैं। उनसे अधिक स्त्रियाँ किसीके भी नहीं होतीं; किन्तु इस अवसर्पिणीके युगमें श्रीकृष्ण वासुदेवके पिता वसुदेवके बहत्तर हजार रानियाँ थीं। फिर भी यह केवल अपवाद ही था; क्योंकि पूर्वभवमें उन्होंने स्त्री वल्लभ होनेका नियाणा (संकल्प) करके अनेक प्रकारसे किये हुए तपका फल मांगा था।

विष्णु और प्रतिविष्णु पूर्व जन्मके वैर भावको लेकर उत्पन्न होते हैं। जबकि बलदेव और वासुदेव स्नेहभावके कारण परस्पर अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रीति रखनेवाले होते हैं। यहाँ तक कि वासुदेवका परलोक गमन होते ही बलदेवोंका संसार भी विषमय हो जाता है। वे अनुज (बन्धु) के स्नेहमय वियोगसे आकुल-व्याकुल होकर मोहके कारण पागल जैसे बन जाते हैं; किंतु मोहका आवेश नष्ट होनेपर चारित्र ग्रहणकर वे आत्म कल्याणके मार्गकी ओर प्रवृत्त

हो जाते हैं। वे 'कर्मशूर सो धर्मशूर' ये प्रत्यक्ष रूपमें सिद्ध करके दिखाते हैं।

इस प्रकार इस अवसर्पिणीके युगमें हमारी वार्ताके प्रचलित समय तक तेईस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती और विष्णु-प्रतिविष्णु आदि सत्ताईस पुरुष मिलाकर कुल बासठ पुरुष हो चुके थे और महावीर स्वामी अभी होनेको थे।

पार्श्वनाथ प्रभुके गणधरोंमें मुख्य गणधर शुभ-दत्तजी हुए। उनके पाट (स्थान) पर हरिदत्तजी हुए और उनके स्थानपर आयसमुद्र हुए और उनके पाटपर चौथे स्वयंप्रभसूरि विराजमान हुए। उनके शिष्योंकी परंपरामें पिहिताश्रव नामके एक शिष्य थे। उनसे शाक्य राजा शुद्धोदनके पुत्र सिद्धार्थने दीक्षा ग्रहण की; किन्तु उनके साथ ठीक न पट सकनेसे वह बुद्धकीर्ति (सिद्धार्थका दीक्षित नाम) पार्श्वनाथजी-के तीर्थमें सरयू नदीके किनारे पलाश नगरीमें रहकर तप करने लगा। तपसे उकताकर उसका मन अनेक प्रकारके खान-पानकी ओर आकृष्ट हुआ। इसके बाद उसके शिष्योंने उसे बुद्धके नामसे प्रसिद्धकर बौद्ध मत चलाया।

स्वयंप्रभके पश्चात् उनके पाट (आसन) पर प्रदेशी

राजाको उपदेश देनेवाले केशी* गणधर विराजे। उनके समयमें मगध देशके सिंहासनपर प्रसेनजित नामका महा बलवान राजा हुआ। इससे पहले मगधपर अनेक सत्ताएँ स्थापित होकर अस्त हो गई थीं। पूर्वकालकी राजगृहीमें भी अनेक परिवर्तन हो चुके थे। जो भी हो किन्तु प्रसेनजित राजाका सिंहासन तो कुशाग्रपुरमें ही था। इसी कारण मगध देशकी राजधानीका राजगृही में कब परिवर्तन हुआ, इसका निश्चित समय ठीकसे नहीं बताया जा सकता। इसी प्रकार धमिल्ल चरित्रके नायक धमिल्ल कुमारके समयमें भी मगधकी राजधानी कुशाग्रपुरमें ही थी। धमिल्लके समयमें जीतशत्रु नामका राजा राज्य करता था और उसके पुत्र अमित्रदमनकी राजधानी भी कुशाग्रपुरमें ही थी। इसीसे अनुमान होता है कि इस बीचके समयमें ही राजगृहीके बदले कुशाग्रपुरका भाग्योदय हुआ होगा। राजा-प्रसेनजित पार्श्वनाथ स्वामीके तीर्थमें श्रावक धर्मका पालन करता हुआ अपना राज्य-शासन चला रहा था। इसी प्रसेनजित राजाकी धारिणी

---

* उज्जयिनीके राजा जयसेनके कुमार थे। पांच सौ शिष्योंके परिवार सहित विचरते थे, इनके गुरुका नाम विदेशी था।

कलावती आदि प्रमुख सौ रानियाँ थीं, जिनसे श्रेणिक कुमार आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे। राजाने अपने सभी पुत्रोंको शस्त्रास्त्र विद्याका अभ्यास कराकर युद्धकलामें विशारद बना दिया था। श्रेणिककी माता धारिणी थी।

प्रसेनजित राजाको शांति पूर्वक राज्य करते और सांसारिक सुख भोगते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया। अन्तमें जब उन्हें वृद्धावस्थाके चिह्न प्रकट होते दिखाई दिये। तब एक दिन उन्होंने विचार किया कि, "मेरे सौ पुत्र हैं किन्तु चाहे जैसे और चाहे जितने पुत्र होते हुए भी माता-पिताको तो सभी पर समान प्रेमभाव रखना चाहिए। फिर भी इस विशाल मगध साम्राज्यका उपभोग करनेके लिए कौनसा पुत्र योग्य है; इसका तो अवश्य निर्णय करना होगा। योग्य उत्तराधिकारी होनेसे उसका अनादर नहीं होता। इसी प्रकार वह अपनी शक्तिसे प्रजाको संतुष्ट रखकर विदेशी राष्ट्रोंसे देशकी रक्षा भी कर सकता है। अतएव उसकी बुद्धि और शक्तिकी तो मुझे अवश्य परीक्षा करना ही चाहिए; क्योंकि पिता अपनी मौजूदगीमें अपने पुत्रोंकी परीक्षा करके उनकी मर्यादा नहीं बाँध देता

तो उसके परलोक गमनके पश्चात् पुत्र परस्पर लड़कर नष्ट हो जाते हैं। अथवा अत्यन्त क्षीण हो जाते हैं और राज्यपर दूसरे बलवान शत्रु अधिकार कर लेते हैं। अतएव मुझे भी अपने जीवनकालमें ही पुत्रोंकी परीक्षा करके उनमें जितनी-जितनी योग्यता हो उसका पता लगाने पर उतनी ही उनकी इज्जत या प्रतिष्ठा करना उचित है, किन्तु वह परीक्षा किस प्रकार की जाय ? और वह कब करनी चाहिए ?" इस प्रकार मनमें विचारकर प्रसेनजितने किसी अनुकूल समयमें पुत्रोंकी कसौटी करनेका निश्चय किया !

यद्यपि प्रसेनजित राजाके सौ पुत्र थे; फिर भी शक्ति और बुद्धिमें श्रेणिक सर्वोपरि सिद्ध हो रहा था। इसी प्रकार खेल कूद एवं अन्यान्य विषयोंमें भी श्रेणिक सबको परास्त कर देता था। साथ ही रूप और सौभाग्य-लक्ष्मीकी दृष्टिसे तो श्रेणिककी बराबरी कोई भी नहीं कर सकता था। हाँ, अन्य कुमार भी पराक्रमी और रूपवान् थे; किन्तु श्रेणिकसे सब घटकर ही थे।

प्रत्येक कार्यमें श्रेणिकको सबसे आगे रहता देखकर प्रसेनजित राजाका मन उसकी ओर विशेष रूपसे आकर्षित होता था; किन्तु फिर भी सबकी परीक्षा

करनेके पश्चात् ही उसकी योग्यता अनुसार सम्मान करना उचित था ; जिससे किसीको अपने साथ अन्याय होता न जान पड़े ; क्योंकि संभव है हम कुछ समझें और प्रत्यक्षमें कुछ और ही घटित हो जाय। इसके पश्चात् तो फिर जिसका जैसा भाग्य होता है, वही होता है।

—०—

सत्रहवाँ परिच्छेद



परीक्षा

चतुरजनों से छिप नहीं, सके बुद्धिकी बात।
नाड़ी देखकर वैद्य ज्यों, कहे रोगकी जात॥

एक सुन्दर भव्य भवनके कमरेमें कुछ युवक बैठे हुए विचार कर रहे हैं ; किन्तु उनके आकर्षक मुख मण्डलपर इस समय चिन्ताकी छाया दिखाई देती थी। उसपरसे यह सहज ही समझा जा सकता था कि वे किसी भारी कठिनाईमें फँसे हुए हैं। अर्थात् वे एक दूसरेके मुँहकी ओर देखते हुए विचार कर रहे थे कि इस आपत्तिसे कैसे छुटकारा मिल

सकता है। उनमेंसे एकने कहा :—"अरे ! यह तो साँप छछून्दर वाली स्थिति हो गई है। पिताजीकी आज्ञाका भी पालन किया जाय और भूखों भी न मरा जाय ! किन्तु ये दोनों बातें एक साथ कैसे हो सकती हैं ?"

दूसरा:—"दो बातोंमेंसे एक तो बन सकती है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि हमें पिताजीकी आज्ञाका पालन तो करना ही चाहिए। भले ही भूखों भी मरना पड़े तो भी क्या ?"

"किंतु भाई भूखा भी कबतक रहा जा सकता है ? अतः हमें अपना-अपना मार्ग निश्चित कर लेना चाहिए ! तीसरेने कहा।"

"वह मार्ग क्या, हो सकता है ?" चौथे ने उत्सुकतासे पूछा ! यही कि इस पिटारेका मुँह खोलकर घड़ा खुला कर दिया जाय ! पिताजी भलेही कहते रहें ; किन्तु हमसे दिनभर भूखा थोड़े ही रहा जा सकता है ?" अन्य एक युवकने कहा।

"तो क्या पिताजीकी आज्ञा भंग की जाय ?" बीचमें ही एक युवक बोल उठा।

"नहीं भाई" पिताकी आज्ञा भंग करनेपर हम पुत्र ही किस कामके ? यदि हम ही पुत्र होकर

नकी आज्ञा भंग करेंगे तो राज्यमें उनकी आज्ञाको कौन मानेगा ?

"सच है ! आज्ञा भंग तो कदापि नहीं करना चाहिए। वे तो पिताजी हैं। वे चाहें तो दण्ड भी दे सकते हैं। अतः विचार करके ही सब काम करना चाहिए ताकि पीछे से पश्चात्ताप न करना पड़े ?"

"तब कोई रास्ता तो बतलाओ कि इस आपत्तिसे कैसे छुटकारा मिल सकता है ?

"भाई, क्या किया जाय ? बहुत कुछ विचार करनेपर भी कोई रास्ता नहीं मिलता। आश्चर्य है कि हममेंसे किसीको भी कोई मार्ग नहीं मिल रहा है !"

"किन्तु इतनी सिरपच्ची करनेका काम पिताजीने हमें क्यों सौंपा होगा ? पहले तो हम किस प्रकार आनन्दमें थे ; किन्तु आज तो भूखों मरनेका समय आ गया है।"

"भाई ! पिताजीने इस प्रकारकी आज्ञा कुछ विचार करके ही दी होगी ! उसमें उनका अवश्य कोई विशेष उद्देश्य होगा ! किंतु उनके मनकी बात कैसे समझमें आ सकती है ?"

"हम सब तो बोल रहे हैं ; किन्तु यह श्रेणिक क्यों कुछ नहीं बोलता ?"

इस प्रकार वे सब कुमार परस्पर वार्तालाप करते हुए उपाय खोज रहे थे ; किन्तु श्रेणिक वहां चुपचाप बैठा हुआ उनकी बातें सुन रहा था। उसकी इस मौनवृत्तिको देखकर एक कुमारने उसको लक्ष्यकरके पूछा। अतएव श्रेणिकको अपने विचार प्रकट करनेका अवसर प्राप्त हुआ।

"तुम सब जब विचार करलो; तब निश्चिंततासे मेरे पास उपाय पूछने आना।" श्रेणिक ने कहा।

"तब क्या इस संकटसे मुक्त होनेका कोई उपाय तू जानता है ?" एक कुमारने आतुरताके साथ पूछा

"हाँ, अपनी बुद्धिके अनुसार थोड़ा बहुत !" श्रेणिकने कहा।

"तो अबतक तू बोलता क्यों नहीं ? हम व्यर्थ ही भूखों मर रहे हैं !" जल्दीसे बता कि इस पिटारेमें से भोजन खाया कैसे जाय ? और इस घड़ेमेंसे पानी कैसे पीया जाय ?

"यदि कुछ सूझ बूझ हो तो इसमें कुछ भी कठिनाई नहीं है। यह तो बुद्धिका काम है। भला बुद्धि क्या किसीके बाप की है ?" श्रेणिकने कहा।

"अच्छी बात है। तू ही अपनी बुद्धि चला। देर मत कर। हमें जोरोंकी भूख लगी है।" बीचमें ही एक कुमार बोल उठा।

"यह लो, कपड़ेके टुकड़ेको लेकर इस पानीके कोरे घड़ेके आसपास लपेट दो। वह घड़ा नया (कोरा) होनेसे उसमेंका पानी जैसे-जैसे झरने लगेगा वैसे-वैसे वह कपड़ा भीगने लगेगा। इसी प्रकार पक्वान्नका पिटारा देखकर सबसे कहा कि इस पिटारेको हिला-हिलाकर इसमेंके पक्वान्नका चूर्ण कर डालो ; जिससे कि वह चूर्ण पिटारेके छिद्रमेंसे बाहर निकलने लगेगा और उसे खानेसे हमारा पेट भर जायगा। साथ ही कोरे घड़ेके आसपास लपेटे हुए कपड़ेके भीग जानेपर उसे निचोड़कर पानी पी सकते हैं।"

श्रेणिक कुमारकी यह युक्ति सबको पसंद आई और तत्काल ही सबने उसके कथनानुसार पिटारेको हिला-हिलाकर उसमेंसे पक्वान्नका चूर्ण कर दिया। अतः जैसे जैसे वह चूर्ण पिटारेके छिद्रोंमें से बाहर निकलने लगा, वैसे-वैसे सब उसे खाने लगे। इसी प्रकार कपड़ा भिगो-भिगोकर उसमेंके पानीसे अपनी प्यास भी बुझाने लगे।

इस प्रकार श्रेणिक कुमारकी युक्तिसे सब कुमा खा-पी कर तृप्त हो गये।

"अरे भाई, पिताजीके लिये ऐसा करनेका को कारण भी तो होना चाहिए। उन्होंने हमें व्य ही परेशान क्यों किया ?" एक कुमारने खाते-खा बीचमें ही शंका की !

"भैया ! पिताजीने जो कुछ किया अथवा वे जो कुछ करते हैं; वह विचार पूर्वक ही करते होंगे! उनके मनकी बातका हमें कैसे पता लग सकता है ?" दूसरेने कहा।

इसपर श्रेणिकने बतलाया कि :—"हमारी बुद्धिकी परीक्षाके लिए ही कदाचित् उन्होंने ऐसा किया होगा !"

"पिता कैसा ही कठिन काम करनेकी आज्ञा दें, किन्तु विनयशील पुत्रको तो उसका पालन करना ही चाहिए। यही उसका धर्म है। जो पिताकी आज्ञा पालन करे वही विनयवान सच्चा पुत्र कहला सकता है। अन्यथा निकम्मे पुत्रोंकी संसारमें क्या कमी है ! एक जनेने बीचमें कहा :—"क्या पिताका वचन पूरा करनेके लिये भगवान रामचन्द्रजीने बारह

वर्ष वनवास नहीं भोगा ? ऐसा तो विरला ही कुपुत्र होगा, जो पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करता हो।" श्रेणिकने कहा।

"यह सुनकर एकने बीचमें ही कहा—"हमने श्रेणिककी बुद्धिमानीसे ही पिताकी आज्ञाका पालन किया है और अपनी भूख प्यासको शांत कर सके हैं।"

"अरे भाई! बुद्धिके द्वारा ऐसा कौनसा काम है जो नहीं हो सकता! बड़े-बड़े राज्यतंत्र भी बुद्धिके द्वारा ही चलाये जाते हैं। वाणिज्य-व्यापार एवं सभी प्रकारके व्यवहारमें बुद्धिमान पुरुष ही सफल हो सकते है!" क्योंकि कहा है कि :—

बुद्धिर्यस्य बलंतस्य निर्बुद्धेस्तु कुतः बलं ।
पश्यसिहो मदोन्मत्तः शृगालेन निपातितः ॥

अर्थात्—जगतमें जिसके पास बुद्धि है वही बलवान कहला सकता है, किन्तु बुद्धिहीन पुरुषके पास कोई बल नहीं होता। जैसे कि एक सियारने अपनी बुद्धिके द्वारा मदोन्मत्त सिंहको भी युक्ति पूर्वक मार डाला।

क्योंकि बलसे जो काम नहीं हो सकता, वह कल या युक्तिसे हो सकता है। इसीलिये बुद्धि-

मान पुरुष संसारमें किसी भी कार्यको अस.. नहीं समझते। चाहे जैसे कठिन कार्यको वे अपनी बुद्धि-द्वारा सरल बना सकते हैं।" श्रेणिकने भाइ-योंको समझाया।

"सचमुच ही, आज तो तेरी बुद्धिसे ही अपना यह संकट दूर हो सका है ?" एकने कहा।

इस प्रकार इधर उधरकी बातें करते हुए, अपना कार्य समाप्त करके वे पिताके सामने पहुँचे। उन्होंने पूछा, "कहो! सबने भोजन किया।"

उत्तर मिला—"हाँ, श्रेणिक कुमारकी बुद्धिमानीसे ही हम सब भोजन पा सके।"

मगधराज श्रेणिककी बुद्धिमानी सुनकर प्रसन्न हुए ; किन्तु यदि वे उन सब भाइयोंके सम्मुख उसकी प्रशंसा करते तो परस्पर ईर्ष्या बढ़ सकती थी। अतएव उसकी प्रशंसा न करते हुए उल्टे उन्होंने शिक्षाके रूपमें कहा, "ऐसे सुस्वादु पक्वान्न और खाद्य-पदार्थका चूर्ण करके खानेकी इच्छा होना कोई प्रशंसाकी बात नहीं है !"

यद्यपि राजाके मनमें श्रेणिककी बुद्धिके विषयमें विश्वास हो गया था, फिर भी एक बार और उसकी

परीक्षा करना उन्होंने आवश्यक समझा ; जिससे कि ठीक निर्णय किया जा सके।

इसके पश्चात् एक दिन दूधकी खीर बनवाकर सब पुत्रोंको भोजन करनेके लिए बिठाया। जब सबके पात्रोंमें खीर परोसी जा चुकी और जैसे ही वे उसे खानेको तैयार हुए इतने ही में राजाने उनकी ओर भूखे कुत्ते छुड़वा दिये। फलतः कुत्ते एकदम गुर्राते हुए कुमारोंपर टूट पड़े। अतः कुमारोंने कुछ खाया न खाया होगा कि वे जूँठे हाथोंसे ही भयभीत होकर भाग गये ; किन्तु केवल श्रेणिक कुमार ही न भागते हुए निश्चिन्त होकर शांतिसे खीर खाता रहा और जब कुत्ते उसकी ओर बढ़े तो उसने भाइयोंके पात्र उनकी ओर बढ़ा दिये। अतः कुत्ते उन्हें चाटनेमें जुट गये। इधर उतनी देरमें श्रेणिकने भोजन कर लिया। उसके द्वारा इस प्रकार खीर पाकर कुत्ते (श्रेणिकके सामने) दास बने हुए पूँछ हिलाने लगे। इस प्रकार श्रेणिक पूर्ण रूपसे तृप्त होकर हाथ मुँह धोने और पानी पीनेके पश्चात् राजाके पास पहुँचा।

यह सब वृत्तान्त सुनकर राजा अपने मनमें श्रेणिककी बुद्धिमानी सराहने लगा। उन्हें विश्वास हो गया कि "अवश्य ही मगध जैसे विशाल राज्यका शासन

करनेके लिए मेरे सभी पुत्रोंमें एकमात्र श्रेणिक ही योग
है। अन्य सभी पुत्र तो शत्रुका आक्रमण होनेप
भयभीत होकर राजपाट छोड़कर भाग जाने जैसे हैं
जब कि श्रेणिक किसी भी शत्रुके भयसे विचलित
होकर राज्यकी सब प्रकारसे रक्षा करेगा। व
शत्रुओंको अवश्य ही मार भगायेगा। इसीलिए राज
सिंहासनपर बैठनेका अधिकारी भी वही हो सकता है
फिर भी सबके सामने उसकी प्रशंसा करना उचि
नहीं।" अतएव राजाने श्रेणिकसे यही कहा कि
"अरे श्रेणिक! तूने कुत्तोंकी पंक्तिमें भोजन किया है
इसलिए मेरे अन्य पुत्र तेरे जैसे नहीं कहे जा सकते
क्योंकि जो इस प्रकारसे भोजन करता है, वह गाँव
ग्वाले जैसा ही कहा जा सकता है। अर्थात् जो जिस
पंक्तिमें भोजन करता है, उसे वैसा ही समझना चाहिए
अतएव तेरी अपेक्षा मेरे ये अन्य सभी पुत्र श्रेष्ठ हैं।"

राजाके इस प्रकारके वचन सुनकर सभी राजकुम
प्रसन्न हुए, किन्तु श्रेणिकके मनमें इससे जरा भी खे
नहीं हुआ। उसने यही सोचा कि "पिताजी चाहे ज
कहें; आखिर हैं तो वे मेरे पिताजी ही। पिता
शिक्षासे भी कहीं समझदार पुत्र अप्रसन्न होते हैं?"

—०—

अठारहवाँ-परिच्छेद



राजगृही

'मनुष्यके समान नगरोंका भी उत्थान-पतन होता ा रहता है।'

राजा प्रसेनजितने अपने पुत्रोंको पक्वान्नका पिटारा ौर जलका घड़ा देकर कहा कि:—'इस पिटारेको खोले ना तुम भोजन कर लेना, अर्थात् भूखे न रहना ौर इस घड़ेका मुँह भी न खोलते हुए पानी ीकर प्यास बुझाना! इस परीक्षा और खीरके भोजन संगपर भी श्रेणिककी ही बुद्धिमत्ता अधिक दिखाई ी। अतएव श्रेणिकके प्रति हर्ष प्रकट होना स्वाभा- ेक ही था। फिर भी तीसरी बार परीक्षा करने- ी इच्छासे राजाने एक दिन अपने पुत्रोंसे कहा:— 'राजकुमारो! जिस प्रकार शिष्य गुरुओंका पाद क्षालन करते हैं, उसी प्रकार तुम भी स्वर्णके लशमें जल भरकर मेरे चरणोंका प्रक्षालन करो।"

पिताकी आज्ञा सुनकर सभी राजकुमार अपने ंधोंपर जलसे भरे हुए स्वर्ण कलश उठाकर लाये

और पिताके चरणोंका प्रक्षालन करने लगे; कि
श्रेणिकने वैसा नहीं किया। वह अपने मित्र, मंत्री
पुत्रके कन्धेपर कलश रखवाकर राजाके सामने आय
और युगलिक पुरुषोंने विनय पूर्वक ऋषभदेवका अंगू
जिस प्रकार राज्याभिषेकके समय प्रक्षालित किय
था; उसी प्रकार विनय पूर्वक एवं सम्मान सहि
श्रेणिक कुमारने भी पिताका पाद-प्रक्षालन किया।
श्रेणिकका ऐसा व्यवहार देखकर राजाने आनन्द
पूर्वक सिर हिलाते हुए कहा:—"अहा! धन्य है
इसके विनयको। तीन-तीन बारकी परीक्षा द्वार
इसकी योग्यता सिद्ध हो चुकी है। अवश्य ही य
राज सिंहासनपर बैठने योग्य है। मेरे सभी पुत्रों
एकमात्र श्रेणिक ही राज्यलक्ष्मीको शोभित करेगा।

भवितव्यताके योगसे कुशाग्रपुरमें जहाँ तहाँ अग्नि
प्रकोप होते रहनेसे राजाने ढिंढोरा पिटवाया कि
जिसके घरमेंसे अब अग्निका प्रकोप होगा, उ
नगरसे बाहर निकलवा दिया जायगा।"

इसके बाद एक मनुष्यके मकानमें आग लगने
राजाने उसे नगरसे बाहर निकलवा दिया। अतए
लोग अग्निका उपद्रव न हो इसलिये पूरी सावधान
रखने लगे। संसारमें अन्य सभी आज्ञाओंकी अपेक्षा

राजाकी आज्ञाका पालन अनेक संकटोंमें भी करना ही पड़ता है। व्यर्थ ही राजाकी आज्ञाका अनादर करके मृत्युको निमंत्रण देना कौन चाहेगा! अथवा संकट मोल लेना किसे उचित जान पड़ेगा? कहा भी है:—

आज्ञाभंगो नरेन्द्राणां, गुरूणां मानमर्दनम्।
पृथक् शय्या च नारीणां, अशस्त्र वध मुच्यते॥

अर्थात्—राजाकी आज्ञा भङ्ग करना, गुरुओंका मानमर्दन या अपमान करना, नवयुवती स्त्री से सर्वदा अलग शय्या रखना, ये तीनों बिना शस्त्रके वध (हत्या) के समान हैं।

राजाकी इस आज्ञामें तो प्रजाका लाभ ही था। अतएव राजाकी आज्ञाका पालन करते हुए अपना विशेष लाभ सोचकर अग्निके उपद्रवसे प्रजा जन सावधान रहने लगे।

किन्तु दैवयोगसे एक दिन राजाके महलमें ही रसोइयोंके प्रमादसे आग लगगई और अनेक प्रकारसे प्रयत्न करनेपर भी वह लगातार बढ़ती ही चली गई। यह देख राजाने कुमारोंको आज्ञा दी कि:—“हे राजकुमारों! राजमहलकी समस्त वस्तुओंमें से तुम्हें

जो वस्तु पसन्द हो उसे तुम ले सकते हो ? अर्थात् जो जिस वस्तुको ले लेगा वह उसीकी हो जायगी।"

राजाका वचन सुनकर सभी कुमार अपनी-अपनी इच्छित वस्तुएँ लेनेके लिए उस जलते हुए महलकी ओर दौड़पड़े। किसीने हाथी, किसीने घोड़ा, किसीने मोतीके कुण्डल और किसीने गलेके हार, कंठे, किसीने भुजबन्ध, किसीने मुकुट, किसीने माणिक्यकी ढेरी, किसीने स्वर्णमुद्राएँ; किसीने कस्तूरी-केसर, किसीने मलयागिर चन्दन आदि अपनी अपनी पसन्दकी वस्तुएँ जो भी हाथ लगीं; तुरन्त ले लीं; किन्तु श्रेणिक कुमारने तो भविष्यकी राज्यलक्ष्मीकी प्राप्तिके साक्षीरूप ढक्का-भम्भा (रणभेरी) ग्रहण की। श्रेणिक को रणभेरी ग्रहण करते देखकर अन्य राजकुमार एक दूसरेकी ओर देखकर ताली बजाते हुए हँस पड़े और कहने लगे :—"अरे, देखो तो सही, भाम्भिकके योग्य श्रेणिकने क्या ग्रहण किया है ?"

श्रेणिकका इस प्रकार व्यवहार देखकर राजाने पूछा :—"रे श्रेणिक ! तूने सामान्य पुरुषके समान यह क्या ले लिया ? ऐसे समय (अग्नि उपद्रव) में तो बालक भी धन-माल ग्रहण करना चाहता है !"

किन्तु श्रेणिकने नम्रतापूर्वक यही उत्तर दिया

कि :—"पिताजी ! भँभा तो राजाओंकी विजयका चिह्न है। अतएव मेरे लिए तो यह विजय वाद्य (रणभेरी) ही विपुल संपत्तिके समान है। राजा लोग युद्धकी यात्रामें वासुदेवके शंखके समान इस रणभेरी के रणकार (ध्वनि) से योद्धाओंमें शौर्य उत्पन्न करते हुए विजयी होते हैं। इसी प्रकार युद्धके आरम्भमें भी भेरीनाद माँगलिकका सूचक ही माना जाता है। इसीलिए राजा इसकी रक्षा करते हैं। इसीको विजय समझते हैं। अतएव उसी विजय चिह्नके रूपमें मैंने इसकी रक्षा की है।" श्रेणिकके इन वचनों को सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने मन ही मन कहा:—"अहो ! बालक होते हुए भी इसके मनोरथ तो देखिये कि वे किस प्रकार सर्वोत्तम हैं! सिंहके बच्चे बालक होते हुए भी बड़े-बड़े गजेन्द्रोंपर विजय पानेकी ही इच्छा रखते हैं। छोटा सा दीपक घोर अन्धकारको नष्ट कर देता है। अमृतका एक बिन्दुमात्र समस्त रोगोंको नष्ट कर देता है। अर्थात् जैसा जिसका भाग्य होता है, वैसे ही उसके मनोरथ भी होते रहते हैं।"

किन्तु अपने हृदयके इन विचारोंको हृदयमें ही रखकर राजाने ऊपरी मनसे कहा :—"अरे ! तू तो केवल

उदर पोषक है। कुमारलोग जिस वस्तुको छोड़ देते हैं उसीको तू उठा लेता है! अतएव अब इस बाजेको बजाकर घर-घर घोषणा करता रह! तूने इस भंभा को ही साररूप समझा। अतः अब तू 'भँभासार' के नाम से ही पहचाना जायेगा!"

राजाके इन वचनों के अनुसार अन्य राजकुमार तथा दूसरे सबलोग भी श्रेणिकको भँभासारके ही नामसे सम्बोधन — पुकारने लगे। राजाके द्वारा किये गये उपहासको देखकर अन्य राजकुमार भी उसकी हँसी करने लगे। यही नहीं वरन् उसे "भँभासार-भँभासार" कहकर चिढ़ाने भी लगे; किन्तु कोई कुछ भी कहता रहे, श्रेणिकको उसकी क्यों पर्वाह होने लगी? क्योंकि उसने जो कुछ किया था, उच्च विचारसे ही किया था!

राजाने प्रारम्भमें यह ढिंढोरा पिटवाया था कि जिसके घरमें से अग्नि (ज्वाला) प्रकट होगी उसे नगर से बाहर निकाल दिया जायगा और इस घोषणाको वह भूला नहीं था। अतः जब स्वतः उनके ही महलमें आग लगी, तब उस आज्ञाका पालन भी अवश्य किया जाना चाहिए था; क्योंकि जो राजा स्वयं स्वेच्छाचारी बनकर दूसरोंके लिये नियम

ाते हैं; वे प्रकृतिके सम्मुख अपराधी बन जाते हैं।
ा कानूनका अमल स्वयं अपने ऊपर नहीं करता
ार केवल दूसरोंपर ही उसे आजमाना चाहते हैं;
ः कानून न रहकर जुल्म या अत्याचार हो जाता
। अतएव राजाने मनमें यह विचार किया किः—
यदि अपने आदेशका मैं स्वयं ही पालन नहीं करूँ
वह मिथ्या प्रपंच कहलायेगा। 'परोपदेशे पाण्डित्यं'
ता होगा; क्योंकि जो वैद्य अपने शरीरमें के
गकी ही परीक्षा नहीं कर सकता; वह दूसरों की
ाधिको कैसे समझ सकेगा? अपने लिए अच्छा
ुर्त्त न निकाल सकनेवाला ज्योतिषी दूसरेको अच्छा
ुर्त्त कैसे बता सकता है? अतएव मैं भी नगरसे बाहर
ड़ाव डालकर अपने वचनकी सत्यताका प्रजाको
वश्य परिचय दूँगा; क्योंकि सज्जनोंका वचन
दापि निरर्थक नहीं होता!"

राजाने तत्काल ही नगर से कोसभर दूर अपना
ड़ाव डलवाया और स्वयं वहाँ छावनी में रहने
गा। राजाके ही साथ-साथ उसके सम्बन्धी-स्वजन
ां अधिकारीगण और नौकर-चाकर आदि छावनीमें
नेके कारण वह भी एक नगरके ही समान हो गया
ा। राजाने वहीं अपने लिए बड़े-बड़े महल बन-

वाये; प्रजाने भी अपनी-अपनी सम्पत्ति और शक्तिके अनुसार भवन निर्माण कराये। कुशाग्रपुर और छावनीका व्यवहार बढ़ जाने तथा राजा और अधिकारियोंका वहाँ निवास होनेके कारण नागरिकोंका आना-जाना अनिवार्य ही था! अतः छावनीसे आनेवाले लोगोंसे जब नगरके लोग पूछते कि—कहाँसे आ रहे हो?" तो तुरन्त ही उत्तर मिलता कि 'राजगृहसे' (राजाके महलमें से) और जब यह पूछा जाता कि "कहाँ जाओगे?" तो उसी क्षण वे उत्तर देते कि "राजगृहको जाते हैं!"

इस प्रकार परस्पर आलाप-संलापसे वह छावनी नगरके रूपमें परिवर्तित हो गई और इसीसे उसका नाम 'राजगृह' प्रसिद्ध हो गया। राजाने नगरके चारों ओर कोट-किला और उसके आसपास खाई खुदवाकर राजगृहकी शोभा बहुत बढ़ा दी। साथ ही सुन्दर देव मन्दिर, न्याय मन्दिर, पाठशाला, धर्मशाला राजकीय भवन, विशाल बाजार, राजपथ बाग-बगीचे बनवा दिये। इसी प्रकार अन्य व्यवहारी लोगोंने भी अपनी-अपनी शक्ति और आवश्यकताके अनुसार भवन, पाठशाला, देवालय एवं बाग-बगीचे आदि निर्माण करवाकर नगरको सब प्रकारसे सुशोभित कर

दिया। इस प्रकार धीरे-धीरे कुशाग्रपुरके सभी लोग राजगृहमें आकर बस गये। अतएव उस कुशाग्रपुर नगरका वैभव अल्पकालमें ही नाम शेष हो गया और राजगृहका भाग्य सूर्य चमकने लगा। यहाँ तक कि थोड़े ही दिनोंमें राजगृह की जाहो जलाली भारतीय जनताको आश्चर्य-मुग्ध करने लगी। भला राजा स्वयं जिसपर प्रसन्न हो जाता है; उसके भाग्योदयमें किस बातकी त्रुटि रह सकती है?

सारांश, कुशाग्रपुरका रहा-सहा वैभव भी नष्ट हो गया और राजगृह प्रतिदिन उन्नतिके शिखरपर बढ़ने लगा। कुएँ, बावली, सरोवर, बाग-बगीचे आदि उसके प्राकृतिक सौन्दर्यमें वृद्धि करने लगे। फलतः कुशाग्रपुरसे भी राजगृहकी शोभा अत्यधिक बढ़ गई। राज-परिवार एवं अन्यान्य प्रजाजनोंके वहाँ बस जानेसे नगरके वैभवके ही साथ-साथ व्यापार-व्यवसाय भी बढ़ चला। भला, स्वयं प्रकृति ही जिसके अनुकूल हो, उसके भाग्योदयमें क्या कमी हो सकती है?

श्रेणिक कुमारका असाधारण बुद्धि-कौशल्य देखकर प्रसेनजित राजा मनमें अत्यन्त प्रसन्न हुआ। फिर भी उसे यह चिन्ता हुई कि:—"यदि वस्त्रालंकारसे मैं श्रेणिकका सम्मान करूँगा और उसे राज्यके योग्य

प्रमाणित करूँगा तो अन्य राजकुमार उसका अनिष्ट कर डालेंगे; क्योंकि शुभग्रह भी अशुभ ग्रहोंके सम्मुख पराजित हो जाते हैं। अतएव मैं श्रेणिकके प्रति अनादर और दूसरे कुमारोंकी ओर आदर भाव बतलाता रहूँगा; क्योंकि सदैव ही समयोचित कार्य करनेवाला बुद्धिमान समझा जाता है।" इस प्रकार विचार कर सभी कुमारोंको विभिन्न देशोंपर अधिकारी बनाकर भेज दिया; किन्तु अप्रिय रानीके समान श्रेणिक कुमारको कुछ भी नहीं दिया।

पिताके इस प्रकारके व्यवहारसे श्रेणिक कुमारके मनमें आश्चर्य हुआ। उसे बहुत ही बुरा लगा और यह अपमान असह्य जान पड़नेसे उसने मनमें विचार किया कि :—"अरे! मेरे नित्य विनयशील रहनेपर भी पिताजी मेरे साथ इस प्रकारका व्यवहार कैसे करते हैं? क्या मैं उनका पुत्र नहीं हूँ? अन्य किसी भी मनुष्यने यदि मेरा इस प्रकार अपमान किया होता; तो निश्चित ही उसे मैं दिनमें ही तारे दिखा-देता, किन्तु ये तो पिता हैं; अतएव इनके सम्मुख विवशता है। जिन्होंने जन्म देनेके साथ ही पाल-पोसकर बड़ा किया हो उन गुरुजनोंके सम्मुख विनय-शील पुत्रके लिए उद्दण्डता दिखलाना उचित नहीं।

[पि]ताजी चाहे जो करें ; किन्तु विनयी पुत्रको अपने [क]र्त्तव्यका पालन ही करना चाहिए। इस प्रकारके [अ]संख्य अपमान भी यदि सहन करने पड़ें तो भी [म]ाता-पिताके उपकारका बदला नहीं चुकाया जा [स]कता। पुत्र उनसे किसी प्रकार भी उऋण नहीं हो [स]कता। अर्थात् ऐसे पूज्य पुरुषको अप्रसन्न करना [क]दापि नीति संगत नहीं कहा जा सकता। फिर भी [प]िता द्वारा अपमानित मुझ जैसे पुत्रका तो संसारमें कौड़ीके जितना भी मूल्य नहीं है ; क्योंकि जो स्वयं अपने घरमें ही क्षुद्र समझा जाकर अपमानित सिद्ध हो चुका हो, उसका जनतामें क्या मूल्य हो सकता है ?

वीर पुरुष संसारमें जरा भी अपमान सहन नहीं कर सकते ; क्योंकि इस प्रकार अपमानित जीवनकी अपेक्षा वे मृत्युका स्वागत करना ही श्रेयस्कर समझते हैं। रावण, सुयोधन, जरासंध जैसे पुरुषोंने भी अपमानकी अपेक्षा मृत्युका ही आदर किया। इसीलिए आधि-व्याधि, उपाधि, भूख-प्यास आदि अनेक दुःख सहन करनेमें हानि नहीं ; किन्तु विषकन्याके समान अपमानित होकर जीना सर्वथा अनुचित है।

इत्यादि विचारोंके कारण श्रेणिकका मन सदैव

उदास रहता था। इसीलिये वह अपना कर्त्तव्य भी निश्चित नहीं कर सकता था। अन्य सभी राजकुमा अपने प्रदेशके अधिकार पाकर मौज कर रहे थे; किन्तु अकेला श्रेणिक ही निःसत्व होकर भटक रहा था। पिताके इस प्रकारके व्यवहारसे लोगोंकी दृष्टिमें भी उसका विशेष सम्मान नहीं रह गया था। इसीलि वह अत्यन्त दुःखी होकर मनही मन कहने लगा कि:–"इस जीवनसे तो मर जाना ही श्रेष्ठ है। अथव मुझ जैसे पराजित युवकके लिए विदेश यात्रा करन ही उचित हो सकता है! विदेश गमनसे मनुष्य चतुराई आती है और उसे अनेक प्रकारकी न नई बातें सीखने और जाननेको मिलती हैं। विशेषतः अपने भाग्यकी भी कसौटी (परीक्षा) हो जाती है। अतः यहाँ रहकर नित्य मानसिक कष्ट सहन करनेकी अपेक्षा परदेश गमनसे ही चित्तको शान्ति प्राप्त हो सकेगी!"

इसके बाद एकदिन श्रेणिक कुमार पिताको पता न लगने देकर राजगृहीसे चुपचाप चल दिया।

—०—

उन्नीसवाँ परिच्छेद

—::❀::—

चिन्तामें

प्रातःकाल जब प्रसेनजित राजाको यह समाचार मिला कि श्रेणिक किसीसे कुछ कहे बिना अकेला ही चल दिया है, तब उसकी खोजके लिए राजाने चारों ओर घुड़सवार दौड़ाये ; किन्तु कुमारका कहीं भी पता नहीं लगा। बेचारे घुड़सवारोंने निराश होकर राजाको कुमारके न मिलनेका समाचार सुनाया। अतः राजा पुत्रकी चिन्तामें अत्यन्त दुखित हो उठा। वह दिनरात अनेक प्रकारसे चिन्ता करने लगा, किन्तु पुत्रका पता लगे तो कैसे? नगरमें सर्वत्र ही राजकुमारके गुम हो जानेका समाचार फैल जानेसे श्रेणिककी माता धारिणी अपने पुत्रकी चिन्तामें अनेक प्रकारसे विलाप करने लगी। उसने राजासे निवेदन किया कि किसी भी उपायसे पुत्रका अवश्य पता लगाईये! राजाने भी श्रेणिककी खोजके लिए सभी साधनोंका उपयोग किया ; किन्तु तत्काल तो वे सभी प्रयत्न निष्फल

ही सिद्ध हुए। इतना परिश्रम करनेपर भी किसीको श्रेणिकका कोई समाचार नहीं मिल सका। इ प्रकार हाथमें आया हुआ चिन्तामणि अचानक गु हो जानेसे राजा-रानीके मनपर चिन्ताके बादल व्या हो गये। आज उस स्वाभिमानी पुत्रका दर्शन दुर्ल हो गया था।

दिनके बाद दिन और महीनेके बाद महीने व्यती होने लगे और इस प्रकार श्रेणिकके गुप्त हो जाने बात भी पुरानी पड़ गई। फिर भी माता-पिता लिए उसके वियोगका दुःख असह्य ही था। इ कारण निरन्तर चिन्तित रहनेसे उनके शरीर क्षीण निस्तेज हो गये। उनके मुखमण्डलपरसे हास्यकी छ सदैवके लिए लुप्त हो गई थी। राज्य कार्यमें उनका मन नहीं लगता था। अनेक प्रकारके आ ध्यानमें माता-पिताका समय व्यतीत होने लगा एकमात्र श्रेणिककी ही चिन्ता उन्हें दुःखित कर रहती थी। अन्य निन्यानवे पुत्रोंके रहते हुए एकमात्र श्रेणिकके बिना उनके हृदयमें शान्ति न थी। संसारमें जिनके दुष्कर्मोंका उदय होता है; उ भला शांति कैसे मिल सकती है!

मगधराज प्रसेनजित श्रेणिककी चिन्ता में दुर्बल

गये। उनके पुत्रोंके परस्पर विरोधके कारण भी उस चिन्तामें और वृद्धि हो गई। वे सभी पुत्र युवावस्थाके आवेशमें अविनयी (उद्दंड) होते जा रहे थे। माता-पिताको वृद्धावस्थामें सुख दे सके ऐसे विनयी पुत्र तो सौ में एकाध ही भाग्यसे निकलता है। अर्थात् अपने निन्यानवे पुत्रोंके कलहसे महाराज प्रसेनजित श्रेणिकका स्मरण करते हुए अत्यन्त दुःखित रहते थे। वे मन ही मन कहते :-"अरे पुत्र! तूने मेरे मनका आशय समझे विना ही यह अनुचित कार्य कैसे कर डाला? तू इतना बुद्धिमान होते हुये भी मेरा आशय न समझ सका? तेरा अनादर मेरी रक्षाके लिये ही किया गया था; किन्तु तूने उसे सत्य समझकर विदेश गमन द्वारा हमें दुःखित कर दिया; यह उचित नहीं किया। तेरे जैसे विनयी पुत्रके लिये यह कार्य उचित नहीं कहा जा सकता।" मनमें अनेक प्रकारके विचार उत्पन्न होनेपर भी ऊसर भूमिमें बोये बीजकी तरह वह निष्फल ही सिद्ध हुए। राजा निरन्तर इन्हीं सब विचारोंके कारण दुःखमग्न रहते थे। उन्हें चिंता मुक्त करनेकी शक्ति किसीमें भी नहीं थी; क्योंकि विधाताकी प्रतिकूलताके कारण संसारमें जो दुःख उपस्थित होते हैं उन्हें पलट सकनेकी शक्ति किसमें

हो सकती है ? समर्थ चक्रवर्ती और वासुदेव जैसे पुरुष पुंगव भी जब उस विधि-विधानके सम्मुख विवश होते हैं, तब मनुष्यकी क्या गिनती।

पुत्रकी चिन्ता करते-करते मगध राजको चार वर्ष हो गये, किन्तु श्रेणिकका कोई समाचार नहीं मिला, इस चिन्तामें राजाका सुदृढ़ शरीर भी लथड़ाने लगा। मन्त्री लोग यद्यपि अनेक प्रकारसे उसे समझानेका प्रयत्न करते और राजाकी चिन्ता दूर करनेके लिये अनेक उपाय भी करते रहते थे; किन्तु फिर भी दुष्ट ग्रहके समान राजाकी चिन्ता जराको भी दूर न हो सकी। वे मन्त्री-प्रधान आदि सब इस प्रकार अपने-अपने प्रयत्नमें विफल होनेसे निराश हो गये।

इस प्रकार खिन्न होकर जब राजा वैराग्यकी भावनामें आरूढ़ होने लगते तब उनके मनमें यह भाव पैदा होते कि कौन किसका पुत्र ? कौन किसका पिता ? कौन किसकी माता ? यह संसार तो स्वप्नकी मायाके समान है ! आज जो दिखाई देता है ; वह कल नहीं रहेगा। प्रत्येक जीव एक दूसरेके सम्बन्ध में अनेकबार आता है ; तब फिर

२ मोह किसलिये होना चाहिये कि :—"यह मेरा

पुत्र है ?" इन्हीं विचारोंके द्वारा राजा अपने मनको शांत करते और रानीको भी संसारकी अनित्यता समझाकर शांत करते थे। इसीलिए उनका चंचल चित्त किंचित शांत हो जाता; किन्तु फिर भी संसारमें मोहकी प्रबलता भी कुछ कम नहीं होती! अल्प समयमें ही राजाकी यह स्मशान तुल्य वैराग्य भावना हवामें उड़ जाती और श्रेणिक सूक्ष्म देहके रूपमें उनके दृष्टिके समक्ष उपस्थित हो जाता। उसमें भी पिताकी अपेक्षा माताका प्रेम पुत्रके प्रति अधिक ही होता है। चाहे जैसा गुणहीन पुत्र भी माताके लिये तो प्यारा ही होता है। माता कभी पुत्रके अवगुणकी ओर ध्यान नहीं देती। अतएव इस प्रकार मातृ पदकी अधिकारिणी धारिणी रानी यदि पुत्रके चले जानेपर पागल जैसी बन जाय तो क्या आश्चर्य ? फलतः उनकी ऐसी दशा देखकर राजा सब प्रकारसे आश्वासन देते हुए कहते कि, :—"प्रिये! तुम क्यों व्यर्थके लिए इस प्रकार विलाप करती हो? मुझे विश्वास है कि श्रेणिक जहाँ कहीं भी होगा आनन्द में ही होगा! वन हो या नगर मनुष्यका भाग्य सदैव उसके साथ ही बना रहता है! जो राजाके यहाँ जन्म लेकर स्वयं राजा बनने वाला है; उसका भाग्य भी वैसा ही उज्ज्वल हो सकता है।"

"महाराज ! आज वर्षके बाद वर्ष बीत रहे हैं, फिर भी उस सत्कर्मी पुत्रका कहीं पता नहीं लग रहा है। वह पृथ्वीके किसी भी भागमें होने पर भी उसका पता हमें क्यों नहीं लग रहा है परदेशमें उसकी क्या दशा हो रही होगी ? भल उसे यहाँ ऐसा कौन महान् दुःख भोगना पड़ा कि वह अपने समाचार भी हमें नहीं भेजता ? उस माता-पिताके साथ हो स्वदेश और सबको भु दिया है !" रानीने कहा।

"अरे, छोकरे किसे कहते हैं ! चाहे जित बुद्धिशाली होनेपर भी आखिर तो छोकरे ही ठहर मैंने उसकी खोज करानेमें भी कोई कसर नहीं रख फिर भी उसका कहीं पता नहीं लग रहा है।"

इसीसे तो मुझे इतना अधिक दुःख हो रहा है क्या क्रूर विधाता फिरसे मुझे अपने पुत्रका मुख न दिखायेगा ? क्या उस मुखचन्द्रको देखनेके लिए मुझे जीवित नहीं रखेगा ? हाय, उस राज वैभ पले हुए पुत्रकी विदेशमें क्या दशा हो रही होगी उसे वहाँ कैसे सब प्रकारसे अनुकूलता प्राप्त हो होगी ! इन्हीं सब विचारोंसे मेरा मन अत्यन्त व्याकु हो उठता है।

"फिर भी उस मनको शांत करनेके लिये समझाना ही होगा। व्यर्थ क्लेश करते रहनेसे भी क्या लाभ? यदि तुझे अपने पुत्रका सुख देखना है तो जीवित रहना होगा। जीवित पुरुष पुनः संसारमें कल्याण प्राप्त कर सकता है। विरहमें गल-गल कर मर जानेसे कहीं पुत्र प्राप्त हो सकता है? इस प्रकारके आर्तध्यानसे तो यह भव और परभव दोनों ही बिगड़ते हैं। क्या भगवान केशी गणधरका उपदेश तू भूल गई? तनिक धैर्य धारण कर!" इस प्रकार राजाने रानीको सान्त्वना देते हुए उसका मन शांत करनेका प्रयत्न किया।

"मैं मनको बहुत कुछ पलटानेका प्रयत्न करती हूँ; किन्तु वह नहीं मानता! यदि श्रेणिक कहीं साधु हो गया होगा; तो हम क्या करेंगे!"

"तब तो वह केशी गुरुके समान संसारमें वन्दनीय हो जायगा। आज अभी उगती अवस्थामें ही जिन केशी गुरुकी विद्वत्ता, बुद्धिमानी, उनका त्याग मार्ग और वैराग्य आदि सब अद्भुत हैं।" राजानें समझाया।

"वे भी तो राजकुमार ही हैं न? राज्य वैभव छोड़कर उन्होंने भी दीक्षा ग्रहण की है; किन्तु किस दुःखके कारण उन्हें ऐसा करना पड़ा है" हाँ,

यह कोई दीक्षा दुःखसे थोड़े ही ली जाती है ! इसमें तो पूर्व संचित ऋणानुवन्ध कारण ही होता है ऋणानुवन्धके बिना संसारमें क्या कोई कार्य कर सकता है ! मनुष्यका सोचा हुआ क्या थोड़े ही बनता है !

"अभी तो उठकर खड़े हुए ही थे कि इसी बीच उनकी वैराग्य भावना कितनी प्रबल हो गई, उनकी बुद्धिमत्ता तो बड़े-बड़े मनुष्योंको भुलावेमें डा सकती है ?"

"अतएव तू भी मनमें वैसा ही प्रबल वैरा धारण कर बुद्धिमानीके द्वारा शोक संताप छोड़ दे अपने मनको तू भगवान पार्श्वनाथके शरणमें लगा दे उनके प्रभावसे दुष्कर्मोंका नाश होता है। साथ हम जैसे आशामें लगे हुए जीवोंकी आशा भी सफ हो सकती है।"

"मैं मनको बहुत कुछ समझाकर शांत कर चाहती हूँ, किन्तु यों मन किसीके समझाये क शान्त हो सका है ? इसीलिए मुझे तो कुछ भी समझ नहीं आता कि क्या करूँ ?"

"फिर भी धैर्य रखते हुए मनको दूसरी अं तो मोड़ना ही होगा ! इसीप्रकार संसारका मोह अब हमें कम कर देना चाहिए। पूर्वके किए

न्हीं पापोंका उदय होनेसे हम उसका फल आज
ाग रहे हैं। इसी प्रकार आजके दुष्कर्मोंका फल भविष्य-
भी इसी प्रकार भोगना पड़ेगा। हमने गड्ढा खोदा
; अतः हम्हींको उसमें पड़ना भी पड़ेगा।"
जाने कहा।

"क्या किया जाय! मोहका तुफान इसी प्रकार
ग करता है। इसी मोहके कारण मैं तो हताश हो
ई हूँ। मेरा शरीर भी शिथिल हो रहा है। भगवान
ी जाने मेरा क्या हाल होगा?"

"संसारके इस प्रकार के बन्धनोंमें फँसकर व्यर्थ ही
ुद्धिमान मनुष्य दुःखी नहीं होते? माता-पिता,
भाई-बहन या पिता पुत्रके सम्बन्ध कोई आजकलके नहीं
हैं। जन्म-जन्मान्तर तक भी ये सम्बन्ध तो चलते ही
रहते हैं। आत्मा अज्ञान वश विलाप करती रहती है।
अतएव मनको जरा शांत करो! धीरज रखो! इस
प्रकारके मिथ्या मोहसे क्या लाभ हो सकता है"

"लाभ? लाभ तो केवल दुःख प्राप्तिके रूपमें ही
हो सकता है? विरहमें घुट-घुटकर मर जानेके सिवाय
और कौनसा लाभ हो सकता है?"

इसीलिए जब ऐसा मनुष्य जन्म, उत्तम धर्म, श्रेष्ठ
गुरुकी प्राप्ति और सुयोग आदि सब कुछ हमें प्राप्त

हुआ है; तो उसका उपयोग कर अपने मनको ध
साधनामें-प्रभुकी भक्तिमें लगा देना ही उचित है।
उस वैराग्य एवं धर्मके प्रभावसे अवश्य तेरी आत्माके
शान्ति लाभ होगा।"

"यद्यपि मेरा मन सहज ही नहीं मान सकेगा;
फिर भी मैं उसे धर्म-ध्यान एवं वैराग्यकी ओर जैसे
तैसे अवश्य लगानेका यत्न करूँगी। मुझे भी विचा
तो होता है कि इतना अधिक दुःसह मोह किसलि
होना चाहिए ? क्योंकि अत्यंत आर्तध्यानसे तो उलटे
दुर्गति ही होती है"

"इसीलिए जैसे भी होसके मोहका प्रभा
कम करना ही चाहिए और इसकेलिये प्रतिदिन दे
मन्दिरमें जाकर भगवानका पूजन-अर्चन करना औ
भक्तिभाव सहित गुरुका उपदेश सुनना चाहिए। ए
चिन्तामणि रत्नके समान जैन-धर्म, भला कहीं बारम्ब
प्राप्त हो सकता है ? अतएव इस हाथमें आये हु
चिन्तामणिको क्यों व्यर्थ गवाँया जाय ?"

प्रसेनजित राजाके समझानेसे रानीका मन कु
शांत हुआ और वह धीरे-धीरे प्रभु-पूजा, गुरु-भ
एवं अन्य धर्मकार्योंमें अपना समय व्यतीत कर पुत्र
दुःखको भूलनेका प्रयत्न करने लगी।

बीसवाँ परिच्छेद

शुभ समाचार



एक दिन राजा अपने निजी महलमें बैठा हुआ था और उसके सन्मुख मन्त्रीगण एवं सामन्त आदि दस-पन्द्रह मनुष्य अनेक प्रकारके वार्ता विनोदके द्वारा राजाका मनोरञ्जन कर रहे थे ! यद्यपि राजा प्रसेनजितको पुत्रका वियोग अत्यन्त दुःखदायी हो रहा था; तथापि प्रकटमें वे संतोष ही धारण किये हुए थे ! उनके कुछ कुमार भी वहीं पासमें बैठे हुए थे ; किन्तु उनमें से कोई भी मगधका शासन-संचालन कर सकने योग्य न होनेसे राजाको श्रेणिकके लिए मन ही मन अतिशय संताप हो रहा था। फिर भी अनेक प्रकारकी चर्चामें राजाने श्रेणिक-सम्बन्धी बात भी चलादी। उन्होंने कहाः—"प्रधानजी ! अपनी ओरसे अनेक प्रकारके उपाय किये जानेपर भी अभीतक श्रेणिक कुमारका पता नहीं लग सका। अतएव आपकी उसके सम्बन्धमें क्या कल्पना है ?"

"महाराज ! वे जहाँ भी होंगे, सुखपूर्वक ही होंगे। इस समय आपको उनकी क्या आवश्यकता है ? जब मगधको उसकी आवश्यकता होगी, तब

वे स्वतः आ पहुँचेंगे ! ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास हो रहा है।" प्रधान मन्त्री चंद्रवर्माने कहा।

"उसके सुखपूर्वक होनेकी कल्पना आप किस आधारपर कर सकते हैं? इसी प्रकार मुझे भी आज उसकी आवश्यकता क्यों नहीं है ! आप यह उलटी बात कैसे कर रहे हैं?" राजाने कहा।

"आप अप्रसन्न न हों, श्रीमान् ! मैं आपको दुःखी करनेके लिए ऐसा नहीं कह रहा हूँ। यदि मेरे शब्दोंसे आपको दुःख हुआ हो, तो क्षमा कीजियेगा। मुझे जो सत्य प्रतीत हुआ, वही मैंने आपसे निवेदन किया है !"

"परदेशमें मनुष्यको कितनी विटम्बनाएँ सहन करनी पड़ती हैं। इसकी आपको कल्पना नहीं होनेसे ही कुमारके सुखपूर्वक होनेकी बात आप कह रहे हैं ! क्यों ठीक है न ? अथवा महाराजकी प्रसन्नताके लिए तो आप ऐसा नहीं कर रहे हैं?" बीचमें ही एक सामंतने चन्द्रवर्मासे कहा।

"तुम्हारा कथन यथार्थ है। विदेशमें मनुष्यको अनेक प्रकारके कष्ट सहने पड़ते हैं, इसे मैं भी भलीभाँति जानता हूँ; किन्तु फिर भी सब मनुष्योंका भाग्य एक समान नहीं होता। जो पुण्यशाली होते हैं उनके

िए तो जंगलमें भी मङ्गल हो जाता है। भोगियोंको
र्वत्र ही भोगोंकी प्राप्ति होती है। जगत् विख्यात
ी कृष्णजीके पिता वसुदेव परदेशमें जहाँ भी जाते,
नके लिए लक्ष्मी और रमणियाँ तैयार ही रहती थीं।
या इस बातको तुम नहीं जानते?" चंद्रवर्माने सामंत-
ा समाधान करते हुए कहा।

"तो क्या श्रेणिक कुमारके लिए भी परदेशमें
सी प्रकार रमणियाँ तैयार रखी गई होंगी?" इस
कार कठोरता-पूर्वक उस सामंतने फिर पूछा।

"इस समय, यह कैसे बतलाया जा सकता है?
सका पता तो श्रेणिक कुमारका कोई समाचार मिलने
र ही लग सकता है; किन्तु कुमारका भाग्य श्रेष्ठ
ोनेसे ही मैंने ऐसी बात कही है। किसीका स्वदेशमें
ाग्योदय होता है तो किसीका परदेश में, क्योंकि
क्ष्मी तो बुद्धि और पराक्रमके ही अधीन होती है!"
न्द्रवर्माने फिर उस सामंतके मनका समाधान करते
ुए कहा।

"किन्तु परदेशमें अकेला मनुष्य क्या पराक्रम
र सकता है?" बीचमें ही एकने शंका की। "मनुष्य
ंसारमें अपना भाग्य लेकर ही जन्म धारण करता
ै। वह जहाँ भी जाता है वहाँ उसका भाग्य भी

देहकी छायाकी तरह उसके साथ ही जाता है। यदि भाग्य अच्छा होता है तो परदेशमें भी मनुष्यके लिए उत्तम मान-सम्मान प्राप्त हो सकता है। थोड़े पुरुषार्थसे ही भाग्यशाली मनुष्यको महान् फलकी प्राप्ति अनायास हो जाती है। अथवा लक्ष्मी स्वयं आक ऐसे पुरुषोंके गलेमें वरमाला पहना देती है। भले ह वह लक्ष्मी स्थावर हो या जंगम ! कहा भी है किः-

> भाग्यं फलति सर्वत्र, न विद्या नच पौरुषं।
> समुद्र मथनाद् लेभे, हरिर्लक्ष्मी हरो विषम् ॥१॥

अर्थात्ः—"संसारमें सर्वत्र भाग्य ही फलीभूत होता विद्या अथवा पुरुषार्थ नहीं। जैसे कि समुद्रका मंथ करनेपर लक्ष्मीकी प्राप्ति भगवान विष्णुको हुई अं शिवजीके भाग्यमें विष ही प्राप्त हुआ।"

"तुम्हारा कथन यद्यपि यथार्थ है फिर भी उस कुछ सुधारकी आवश्यकता है। भाग्य जो कि तुम्ह कथनानुसार सर्वत्र फलदायी होता है; फिर भी संसा पाँच कारणोंसे ही कार्य सिद्ध होते हैं। उनमें य एक मुख्य होता है; तो भी शेष गौण रूपसे विद्यम ही रहते हैं।" इस प्रकार बीचमें ही एक बुद्धि सा नामक मंत्रीने स्पष्टीकरण करते हुए उसमें सुधार किय

"वे पाँच कारण कौनसे हैं ?"

"काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत कर्म और उद्योग। इन पाँच कारणोंके मिलनेपर ही कार्य सिद्ध होते हैं। जैसे कि अमुक समय आनेपर ही अमुक कार्य हो सकता है। ग्रीष्म ऋतुमें ही आम्र फल पकता है, उसी प्रकार कर्मोंकी स्थिति भी जिस समय उदय होनेको होती है, तभी हो सकती है। इसी प्रकार प्रत्येक कारणके लिए भी समझना चाहिए। अलबत्ता किसीकी अधिकता होती है तो किसीकी न्यूनता!" बुद्धिसागरने विशेष खुलासा किया।

"ठीक है! किन्तु इस चर्चामें बात कहाँ से कहाँ चली गई! श्रेणिककी चर्चा परसे हम शास्त्रकी चर्चामें उतर गये।" बीचमें राजाने कहा।

"किन्तु शास्त्रकी चर्चा भी ज्ञानका एक मार्ग ही है। बुद्धिमान पुरुषोंको इसीमें आनन्द प्राप्त होता है। इसलिये इस प्रकारकी चर्चा होनेमें भी कोई बुराई नहीं है। क्षत्रियोंको जिस प्रकार अपनी भुजाके पराक्रममें ही लक्ष्मीका निवास प्रतीत होता है; उसी प्रकार वणिकोंको अपनी कलममें लक्ष्मी रहती जान पड़ती है। वैसे ही वैश्योंको कृषिमें लक्ष्मीका वास अनुभव होता है। श्रेणिक कुमारमें बुद्धि है और बल भी है। इन दोनोंकी प्राप्ति भाग्यके योगसे ही हो सकती

है।" चंद्रवर्माके इन विचारोंसे राजाके मनको परम सन्तोष हुआ।

"आपकी कल्पनाके अनुसार यदि श्रेणिकके इस प्रकारके समाचार मिले तो कैसा ? आपका अनुमान सत्य सिद्ध होकर मेरे मनको भी शांति प्राप्त हो सकती है।" राजाने इस प्रकार मानसिक सन्तोष प्रकट किया।

राजा और मन्त्री आदि में परस्पर बातचीत हो रही थी। इसी समय अचानक एक प्रतिहारीने राजाको नमस्कार करते हुए इस प्रकार निवेदन किया कि:—

"महाराज ! बाहरसे कोई विदेशी सार्थवाह आपके दर्शनोंके लिये आनेकी इच्छा कर रहा है !" राजाने उसकी बात सुनकर तत्काल सार्थवाहको उपस्थित करनेके लिए आज्ञा दी।

राजाकी आज्ञा पाते ही प्रतिहारीने बाहर जाकर थोड़ी ही देरमें एक मनुष्यको दरबारमें उपस्थित कर दिया। उसने महाराजके सम्मुख उत्तमोत्तम वस्तुएँ भेंटस्वरूप रखते हुए सादर नमन किया। राजाने उस पुरुषको देखते ही पहचान कर पूछा:—"अहो देवनन्दी सार्थवाह ! कहो, कुशलपूर्वक तो हो नँ ?"

"हाँ महाराज ! आपकी कृपासे।" वह व्यक्ति

बेन्नातटपर तेजन्तुरिके लिये पहुँचनेवाला देवनन्दी सार्थवाह ही था। उसने राजाको प्रणाम करके उनके संकेतानुसार एक ओर आसन ग्रहण किया। आसन पर बैठनेके बाद उसने सारी सभा, राजमहल और राजाका निरीक्षण किया। राजाका चित्त कुछ चिन्तित एवं अशांतिमय प्रतीत हुआ।

राजाने उससे देशाटन-सम्बन्धी अनेक प्रकार की बातें पूछी और सार्थवाहने उनका यथायोग्य उत्तर भी दिया। उसने बतलाया कि:-"देव! परदेश तो आखिर परदेश ही है। देशाटन करनेवालेको अनेक प्रकारकी चतुराई, बुद्धिमत्ता एवं भिन्न-भिन्न प्रकारकी रीति-नीतिका ज्ञान होता है। साथ ही भाग्यकी परीक्षा भी परदेशमें ही होती है।"

"यह यथार्थ ही है; क्योंकि अपने देशमें मनुष्यका मूल्य नहीं आँका जा सकता। मृगकी नाभिमें रही हुई कस्तूरी या गजेन्द्रके कुम्भस्थल में रहनेवाली मुक्ता (मोती) अपने स्थानसे बाहर निकलनेपर ही इनका उचित मूल्याङ्कन हो सकता है।" बुद्धिसागर मन्त्रीने कहा।

"हमारे श्रेणिकको ही देखिये! चाहे जैसा पराक्रमी होते हुए भी आपके सामने तो वह नादान

बालक ही था, किन्तु अब भी वह जहाँ होगा श्रेष्ठ स्थानमें ही होगा।" चंद्रवर्माने कहा।

"किन्तु श्रेणिक कुमारका नाम सुनते ही सार्थवाह चौंका। उसे बेन्नातट वाली बातका स्मरण हुआ। उसने समझ लिया कि निश्चित ही वह श्रेणिक ही था; किन्तु उसने मुझे भ्रममें डाल दिया; क्योंकि वह अपना ठीक नाम-धाम छिपाकर ही वहां रहता है; इसीलिये उसने मुझे वैसी बात कही होगी।' इस प्रकार मनमें विचारकर वह बोला—"देव ! आपके सौ पुत्रोंमें से श्रेणिक क्या इस समय यहाँ नहीं है ?"

"नहीं, वह मुझसे बिना कुछ कहे सुने ही यहांसे चला गया है। न जाने अब वह कहाँ होगा !' राजाने सार्थवाहके प्रश्नके उत्तरमें कहा।

"ऐसी बात है !......तब तो वह यहाँ से रूठकर ही गया होगा ! यदि यह बात ठीक है तो उसके रूठनेका कारण क्या हो सकता है ?"

"लड़कोंके लिए कारणोंकी क्या कमी होती है उनसे तो साधारण रूपमें भी कुछ नहीं कहा जा सकता आजकलके लड़कोंकी यही दशा है। साधारणसी कुछ बात भी यदि उनसे कही जाय तो वे उसका उलटा अर्थ लगालेते हैं। यही बात श्रेणिक के लिए भी

हुई है। मेरे द्वारा अपमान हुआ समझकर उसने मुझे त्याग दिया। तुमने अपनी यात्रामें कहीं उसे देखा है क्या ?" राजाने सहज भावसे पूछा।

"हाँ, देव ! श्रेणिक कुशलक्षेम एवं सुख शान्तिपूर्वक है। वह राजकुमार वेन्नातट नगरमें धन्न नामके सार्थ-वाह भद्रश्रेष्ठी) के घर अपने बुद्धि-कौशलसे निवास कर रहा है। मैंने उनसे कहा कि:-"आपको मैंने राज-गृही नगरमें देखा था !" तब उसने यही उत्तर दिया कि "राजगृहमें मेरे शत्रुका भी निवास नहीं हो सकता !"

"अच्छा ! तो वह भद्रश्रेष्ठीके घर ठहरा हुआ है, किन्तु उसके यहाँ रहनेका कोई विशेष कारण भी है ?" राजाने फिर पूछा ; क्योंकि पुत्रके समा-चार सुननेसे उसे संतोष हुआ।

"वह भद्र सेठकी नन्दा नामकी पुत्रीसे विवाह करनेके पश्चात् घर जमाई बनकर वहाँ रहता है। भद्रसेठके पास लक्ष्मीका कोई पार नहीं है और नंदा पुत्रीके सिवाय उसके कोई संतान भी नहीं है। अतएव वह उस देवबालाको भी लज्जित करनेवाली अपूर्व सुन्दरी नन्दाके साथ परम सुख सौभाग्यमें समय व्यतीत कर रहा है।" सार्थवाहने संक्षेपमें श्रेणि-ककी स्थितिका परिचय दिया।

"तो क्या वह घरजमाई बनकर रहता है?" राजाने आश्चर्य सहित मुसकुराते हुए कहा।

"हाँ, घरजमाई! किन्तु फिर भी वह अपने घरकी ही तरह बड़े ठाटपाटसे रहता है। देवताके समान सब लोग उसकी आज्ञाका पालन करते हैं। भद्रसेठ भी वह पिलावे उतनी ही बार पानी पीता है। उससे पूछ कर ही सब काम करता है।" सार्थवाहने उसका विशेष परिचय दिया।

"क्या तुम्हारा यह सब कथन यथार्थ है? राजाने खुलासा करनेके लिये फिर पूछा, किन्तु उसके भद्रसेठके घर होनेका पता तुम्हें कैसे लगा?"

"देव! आपके सामने मिथ्या बोलनेके लिए कोई कारण नहीं हो सकता। यदि यह बात असत्य हो तो मुझे विश्वासघात, परद्रोह, स्त्री हत्या, बाल हत्या, गो हत्या और मुनि हत्याका पाप लगे। मुझे तेजंतुरिकी आवश्यकता थी और वह मुझे बेन्नातटमें उस धनसेठके ही यहाँ होनेसे वहाँ जाना पड़ा। और वहीं पर मुझे श्रेणिक कुमारने वह वस्तु दी, जिससे कि आज मुझे विपुल द्रव्यकी प्राप्ति हुई है।" साथवाहने फिरसे राजाको विश्वास दिलाया।

श्रेणिक कुमारके सुखशांतिके समाचार जानकर सबको अत्यन्त आनन्द हुआ। साथ ही राजाके चित्तको भी अत्यधिक सन्तोष हुआ। उसने कहा :—"प्रधानजी! आपका अनुमान सत्य सिद्ध हो रहा है। बुद्धिमान पुरुषोंकी कल्पना मनुष्यके भाग्यानुसार ही होती है।"

राजाने तत्काल ही रानीको पुत्रका सुख-समाचार कहलवाया। सभाका समय पूर्ण हो जानेसे सबलोग अपने-अपने स्थानकी ओर चलेगये। राजाने मन ही मन उसी समय किसी विचक्षण दूतको वेन्नातट नगर भेजनेका निश्चय कर लिया और उसके द्वारा कुमारको समझा बुझाकर वापस राजगृह बुलवा लेनेका प्रबंध किया; क्योंकि उसने सोचा कि मैं अब अत्यन्त वृद्ध हो गया हूँ; अतएव अपनी मौजूदगीमें ही मगध राज्यका सिंहासन श्रेणिकको सौंपकर मैं आत्म कल्याणकी साधनामें तत्पर हो जाऊँ।" यह सोचते हुए दूसरे ही दिन राजाने अपने प्रस्तावके अनुसार दूत भेज दिया।



इक्कीसवाँ परिच्छेद

आमंत्रण

—: : ❀ : :—

अमृत रससे अधिक है, मात-तात-गुरु सीख।
जो मूरख माने नहीं, भटके, माँगे, भीख॥

राजकुमार गोपालको हम बेन्नातट नगरमें सुख-चैनमें समय बिताते देख चुके हैं। वही गोपाल मगध-राज प्रसेनजितका युवराज श्रेणिक था! बेन्नातट नगरमें वह अपनी बुद्धि चातुर्यसे वाणिज्य व्यवसायमें समय बितारहा था। उसकी बुद्धिके प्रतापसे ही भद्रसेठको फिरसे अपार सम्पत्ति प्राप्त हो सकी थी; किन्तु इस समय नन्दा गर्भवती होनेके कारण गोपाल-कुमार परदेश जानेका विचार करता हुआ एक दिन सेठकी दुकानपर बैठा हुआ था। उस समय उसके मनमें अनेक प्रकारके विचार उत्पन्न हो रहे थे। उनके नौकर-चाकर दुकानमें काम कर रहे थे, अतएव वह आरामसे अपने स्थानपर-गादीपर लेटा हुआ

विचारमग्न था। साथ ही उस समय वह अकेला ही था! उसने विचार किया कि :-"आजतक नंदाके स्नेह सुखमें निमग्न रहनेसे मुझे बाहर जानेका अवसर नहीं मिलरहा था; किन्तु अब कुछ समय ऐसा मिल रहा है; अतएव उसका उपयोगकर परदेशमें जानेके साथ ही फिरसे एकबार अपने भाग्यकी परीक्षा करना उचित है। गर्भके प्रभावसे मुझे यही प्रतीत होता है कि अवश्य ही नन्दाको किसी बुद्धि निधान एवं भाग्यवान पुत्रकी प्राप्ति होगी; क्योंकि उसका दोहद ही इस बातकी साक्षी दे रहा है। उत्तम भाग्यके बिना ऐसे दोहद किसीके मनमें उत्पन्न ही नहीं होते। अतएव नन्दाकी ओरसे निश्चिन्त रहनेका एक कारण मेरेलिए और भी हो गया है। रुपये पैसेकी भी कोई चिन्ता नहीं है। साथ ही संसारमें स्त्रीके लिए पतिके बाद पुत्र ही आधाररुप होता है। स्वामीके बिना पुत्रके आधारपर ही स्त्रियाँ अपना समय शांतिसे व्यतीत कर सकती हैं। अतएव अब मेरेलिये यहाँ अधिक समय तक रहना व्यर्थ ही है। नये-नये देश देखनेसे अनेक प्रकारका अनुभव प्राप्त होता है! चतुराई और बुद्धिमत्ता-का विकास करनेके लिए अनेक प्रकारके साधन भी मिल

सकते हैं।" इस प्रकारके विचारोंमें लगे हुए गोपालका ध्यान एक मनुष्यने आकर भंग किया।

"कुमार साहब ! बाहर कोई मनुष्य आया है और वह आप ही से मिलना चाहता है।" एक नौकरने गोपालके सम्मुख आकर निवेदन किया। किन्तु किसी बाहरके मनुष्यका आना सुनकर गोपाल एकदम चौंक पड़ा। उसने पूछा,—"क्या तू उसे नहीं पहिचानता है ?"

"नहीं, साहब ! वह कोई परदेशी जान पड़ता है। आपका नाम पूछता हुआ आया है।" उस व्यक्तिने खुलासा किया ; क्योंकि देवनन्दी सार्थवाहने प्रसेनजित राजाके सम्मुख श्रेणिक कुमारका समाचार सुनाते हुए कहा था कि आपके कुमार श्रेणिकका नाम वहाँ श्रेणिक नहीं है; वरन् समग्र बेन्नातट नगर उसे गोपाल कुमारके नामसे पहचानता है। अतएव राजाको इस बातसे दूतको भेजकर पता लगानेमें और भी सुविधा हुई।

"अच्छा;···तो उसे मेरे पास ले आओ !" इस आज्ञाको पाते ही नौकर चल दिया ; किन्तु गोपाल मन ही मन विचार करने लगा कि, वह मनुष्य कौन सकता है ? थोड़ो ही देरमें एक मनुष्य गोपालके

सम्मुख आकर खड़ा हो गया। उसने हाथ जोड़कर गोपालको नमस्कार किया और वह उसकी ओर एक टक देखता रहा; किन्तु गोपालने तत्काल उसे पहचान लिया। फिर भी अपरिचितकी भाँति उससे पूछा—"क्यों तुम्हें किससे मिलना है? तुम कहाँसे आ रहे हो?"

"युवराज! मैं राजगृहसे आया हूँ। मुझे श्रेणिक-कुमारसे मिलना है।" उस मनुष्यने निःसंकोच भावसे दृढ़तापूर्वक कहा; क्योंकि उसने उसे देखते ही पहचान लिया था।

"कौन युवराज! और किस श्रेणिककी बात कह रहे हो? यहाँ तो इनमेंसे कोई भी नहीं है। कहीं भ्रम-भूलमें तो नहीं पड़ गये हो?" कुमारने गंभीरता धारण करते हुए कहा।

"नहीं साहब! मैं भूला नहीं हूँ। वे युवराज और श्रेणिक कुमार दोनों ही यहाँ विद्यमान हैं। वे गोपाल कुमारके नामकी आड़में यहाँ छिपे हुए हैं। आप यदि उन्हें खोज निकालेंगे तो कृपा होगी।" उस आगन्तुक पुरुषने शाँतिपूर्वक निवेदन किया! वह मगध राजका भेजा हुआ प्रधान देवशर्मा था।

"चुप रहो, भाई!" गोपाल कुमारने संकेत करते हुए कहा। तुमने कहीं भाँग तो नहीं पी है जो?

इस प्रकार पागल जैसा प्रलाप कर रहे हो ? तुम अपने मनमें क्या समझ रहे हो ?"

"युवराज ! आप क्यों व्यर्थके लिए परेशान कर रहे हैं ? आपके माता-पिता वियोगमें व्याकुल हो रहे हैं। आपके दर्शनके लिये आतुर हो रहे हैं ! धन्य है आप जैसे पुत्रको कि, जिनके कारण माता-पिताको इस अवस्थामें भी सुख प्राप्त न हो सका।" देवशर्माने नम्रता पूर्वक स्पष्टीकरण किया।

"क्या तुम वहाँसे आ रहे हो ? और तुम्हें इस प्रकार बात-चीत करनेके लिये क्या कारण हुआ है ?" कुमारने पूछा।

"आपके माता-पिताकी ओरसे ही मैं आपके लिये सन्देश लानेके साथ ही आपको राजगृह ले जानेके लिये यहाँ आया हूँ। राजकुमार ! आप जैसे बुद्धिमान पुरुषका माता-पिताके प्रति क्या कर्त्तव्य है; इसे आप नहीं जानते ?"

"किन्तु तुम उन्हींके भेजे हुए आये हो; इसका क्या विश्वास ? इस प्रकारके कितने ही पाखण्डी ठगनेके लिये आते रहते हैं।" इस प्रकार विशेष स्पष्टीकरण कर विश्वासके लिये राजकुमारने पूछा।

"तो क्या आप मुझे भूल गये हैं, राजकुमार ? लीजिये, यह आपके पिताजीका राजमुद्रित पत्र। अब तो आपको विश्वास हुआ ?" इस प्रकार कहते हुए प्रसेनजित राजाका दिया हुआ पत्र देवशर्माने गोपाल कुमारके हाथोंमें दिया और उसने लिफाफा खोलकर उसे पढ़ाः—

प्रिय गोपाल राजकुमार !

स्थान वेन्नातट नगर

"पक्कान्न मिठाईसे भरे हुए पिटारेका मुँह बँधा हुआ रहने पर भी उसमेंसे युक्तिपूर्वक स्वतः खाकर अपने भाइयोंको भी खिलाया। इसी प्रकार मुँह बन्द किये हुए घड़ेमेंसे भी स्वयं पानी पीकर भाइयोंको पिलाया। साथ ही कुत्तों-द्वारा छुई हुई खीरका भोजन उन्हें खिलाते हुए युक्तिपूर्वक स्वयं भी खाया। इस प्रकार जिसके पराक्रम एवं बुद्धिमत्ता हैं; वह पुरुष संसारमें कैसे जी रहा है ? उसकी क्या दशा है ? वह अपने माता-पिताको छोड़कर दूसरेका घरजमाई बनकर रहता है। भला इसप्रकार घरजमाई बनजाने वालेकी माता-पिताकी ओर भक्ति कैसे हो सकती

है ? घरजमाई बनकर रहना किनका काम है; यह बात उसे कौन समझावे ? नीतिशास्त्रमें कहा है :—

'कूकर' कहते क्रुद्ध हो, घर जमाई बन जाय ।
चतुर होय तो चेतियो, नहि वह आदर पाय ॥

अर्थात्—"कुत्ता कहने मात्रसे जो क्रुद्ध होकर घर जमाई बन जाय तो भला चतुरोंमें वह कैसे आदर पा सकता है"

पिता-द्वारा दण्डित किया हुआ पुत्र और गुरु द्वारा शासित किया हुआ शिष्य तथा घनकी मारसे पिटा हुआ सोना आगे चलकर संसारमें शोभा और सम्मान पाता है ; किन्तु जो पिता अथवा बड़ोंकी सीख नहीं मानते, वे स्वच्छन्दी पुत्र बड़े होनेपर भटकते ही रहते हैं ।

मैंने सभामें तुम्हें जो शब्द कहे, वे सम्मानयुक्त थे या अपमानजनक; इसपर यदि गहराईसे थोड़ा भी विचार किया होता तो उनका आशय समझमें आ सकता था !

अतएव हे पुत्र ! इसपर ठीकसे विचार करनेके पश्चात् ही भोजन करना।

तुम्हारे शुभेच्छु पिता:—
प्रसेनजितका आशीर्वाद

पिताके इस पत्रको पढ़ते ही गोपालके हृदयमें पितृ-क्ति उमड़ पड़नेसे वह एकदम गद्गद् हो गया। ान देवशर्मा युवराजके हृदयमें होते हुए इस परि-ानको एक टक देख रहा था। अतएव उसने कहा, ाजकुमार ! महाराज वृद्ध हो गये हैं और निन्यानवे ुत्र होते हुए भी आपके बिना अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं; क्योंकि :—

"एकेनापि सुपुत्रेण, वशोयाति समुन्नतिम्।"

अर्थात्—एक ही सुपुत्र होनेपर भी वंशकी उन्नति हो सकती है ! अथवा केवल एक ही पुत्रके पराक्रमी होनेसे सिंहनी निर्भय हो जाती है। इसी प्रकार आप जैसे एक ही पुत्रके कारण महाराजका यश उज्ज्वल हो रहा था; जबकि निन्यानवे पुत्रोंके रहते हुए वह यश उज्ज्वल न रह सका। अतएव अब जैसे भी हो सके पिताको संतुष्ट करना आपका कर्त्तव्य है ! सच्चा

सुपुत्र वही कहा जाता है जो पिताके प्रति भक्तिभा और जो वृद्धावस्थामें माता-पिताको संतोष दे सके अन्यथा माता-पिताको दुःख देनेवाले तो अनेक कु उत्पन्न होते और मरते रहते हैं। उनसे क्या लाभ ?"

"प्रधानजी ! आपका कथन जो कि सर्वथा स है; फिर भी अभी मैं यहाँसे चल नहीं सकता अतएव आप मेरा सन्देश ले जाकर माता-पिता मेरी सुख-शांतिके समाचार दीजिये और कहिये कि:-

विना एकहि पंखके, विकृत न होता मोर !
वह निन्यानवे पंखयुक्त, कैसे होगा थोर ? !!

अर्थात्—मयूर केवल एक ही पुच्छके न रहनेसे कुरूप नहीं हो जाता और उसकी शोभा नहीं जाती; उसी प्रकार निन्यानवे पंखोंसे युक्त रहते भी पिता मुझ जैसे एक पंखके न रहनेसे विकृत न दिखाई दे सकते। अतएव मुझ अकेलेके चलेजा पिताजीको खेद नहीं करना चाहिए; क्योंकि मेरे निन् नवे भाई पिताजीकी सेवामें हाजिर ही हैं।"

"किन्तु वे निन्यानवे ही परस्पर विरोध क पिताजीको वृद्धावस्थामें दुःख ही दे रहे हैं। वे अप अपना स्वार्थ साधनमें ही दिन-रात व्यस्त हैं।

ार्थी पुरुषोंमें पितृभक्तिका मूल्य कैसे हो सकता ? अतएव यदि आपके हृदयमें सच्ची पितृभक्ति हो ो तत्काल हो चलकर उनके चरणोंमें मस्तक नवाँइये।" ाधानने कहा।

"ठीक है! यह तो समयपर देखलिया जायगा। अभी तो आप मेरा सन्देश ही ले जाइये। मेरी ओरसे माता-पिताके चरणों में साष्टांग प्रणाम निवेदन कर मेरे मंगलमय समाचार उन्हें सुनाइये और उन्हें समझाइये कि मेरी चिन्ता वे जरा भी न करें।" इस प्रकार राजकुमारने देवशर्मासे कहा।

गोपालने अपने समाचारका पत्र देकर मन्त्रीको स्वदेशकी ओर विदा किया और मन्त्रीने अपने नौकरों सहित राजगृही नगरीमें आकर महाराजके चरणोंमें प्रणाम किया; साथ ही श्रेणिक कुमारके कुशल समाचार सुनाये। इसके बाद श्रेणिक कुमारका दिया हुआ पत्र भी महाराजके सन्मुख प्रस्तुत किया। राजकुमारके हाथका लिखा हुआ पत्र पाकर महाराज बहुत ही प्रसन्न हुए। इसी प्रकार कुमारकी माता भी पुत्रकी कुशलताके समाचार जानकर प्रसन्न हुई।

राजाकी लिखी हुई समस्याका उत्तर कुमारने

भी उसी प्रकारकी समस्याओंके रूपमें ही दिया था
राजाने उस पत्रको पढ़ना आरम्भ किया :—

परम पूज्य पिताजी !

राजगृही

"आपका कृपापत्र मिला। पढ़कर चित्तमें परम आनन्द हुआ। इसी प्रकार आप कुशल समाचार भेजकर आनन्द प्रदान करते रहें। आपके लिखे शब्दों पर मैंने भली-भाँति विचार कर ध्यान दिया है। हम जैसे पुत्रों-पर जब पिताकी नाराजगी होती है; तब हमारे लिये उपाय ही क्या रह जाता है? स्वदेशमें रहनेसे यदि लोकमें अपयश होता हो और पिताजीको अप्रसन्न होनेके लिए कारण मिल जाता हो तो ऐसे पुत्रोंको परदेश जाकर ही अपने भाग्यकी परीक्षा करनी चाहिए। क्योंकि :—

"जैसे तैसे पुत्र जगतमें, मार-ताड़न सहते हैं।
किंतुस्वाभिमानी सुपुत्र तो' मान सहित ही रहते हैं॥"

जैसे तसे पुत्र तो मार-पीट या अपमान सहकर ही पड़े रहते हैं; जबकि स्वाभिमानी पुत्रतो अपमानका एक शब्द भी नहीं सह सकते। कमाऊ पुत्रका तो विदेशमें रहना ही अच्छा होता है। अतएव जब स्वामीके कृपा-प्रसादकी आशा हो; तब यदि उसके बदले उपालंभ या भर्त्सना प्राप्त होती हो; उस समय हमारे लिये क्या कर्तव्य हो सकता है? इसी प्रकार—

"घर जमाई, कूकरसदृश, कौन करे स्वीकार
किंतु होय अपमान यदि, तजदे वे घर-द्वार।"

घरके कुत्तेकी तरह घरजमाई बनकर रहना कौन पसन्द करेगा? किन्तु जब पिता स्वयं ही पुत्रका अपमान करे; तब वह यदि घर-द्वार छोड़कर न चलदे तो और उसके लिए क्या मार्ग रहता है?"

आपका आज्ञाकारी पुत्र

गोपाल (श्रेणिक)

पत्रको पढ़कर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। पुत्रके सुखशान्तिके समाचार पाकर तथा उसका ठीक पत मिल जानेसे राजाकी आधी चिन्ता दूर हो गई। इसं बाद दोनों ही परस्पर कुशल समाचार भेजने लगे इस प्रकार बीचमें थोड़ा समय व्यतीत हो गया।

इसके बाद एक दिन राजा प्रसेनजित कि असाध्य रोगसे ग्रस्त हो गये। एक ओर उनकी वृद्ध वस्था और दूसरी ओर पुत्रकी चिन्ता रहनेसे ज प्रवाहकी तरह उनकी व्याधि बढ़ती चली गई। अ प्रकारके उपचार करनेपर भी कोई लाभ नहीं हुअ तब उन्होंने विचार किया कि श्रेणिकको बुला अपनी मौजूदगीमें ही उसे राजमुकुट धारण दिया जाय! इसी प्रकार मगधकी प्रजाकी दृ उसे सम्मानित बनाया जाय, जिससेकि आगे चल कोई टंटा-फिशाद उत्पन्न न हो सके।

फलतः तुरंत ही एक चतुर दूत बेन्नातटसे श्रेणिक बुलवा लेनेके लिये भेज दिया गया।

बाईसवाँ परिच्छेद

स्वदेशकी ओर

—::❀::—

पिताके व्याधिग्रस्त होनेके समाचार श्रवणकर ीपालको अत्यन्त दुःख हुआ। उसने विचार किया कि, अब तो मुझे पिताकी सेवामें अवश्य ही उपस्थित ाना चाहिये। परदेशमें भटकते रहनेके कारण मैं ताकी सेवासे भी वंचित रहा। इस प्रकार मेरा ीवन जङ्गलमें रहे हुए एकाकी वृक्षकी भाँति निष्फल सिद्ध हो रहा है। सब प्रकारकी साधन सामग्री सुलभ हते हुए भी मुझ जैसे पुत्र यदि पिताकी सेवासे वंचित हैं; तो निश्चित ही उन्हें मंद भाग्य ही समझा जायगा। अतः अब अन्य विचारोंको त्यागकर पिताजीकी सेवामें उपस्थित हो जाना ही उचित है। साथ ही पिताजी भी मुझसे मिलनेके लिये किस प्रकार उत्सुक हो रहे हैं, यह प्रत्यक्ष ही प्रकट है। इसी प्रकार उनकी व्याधि भी गम्भीर (भयङ्कर) जान पड़ती है। अतः यदि कहीं उलटा-सीधा हो जाय; तो पीछेसे

सिवाय पश्चातापके और कुछ भी हाथ न लगेगा।
फलतः पिताजीकी ओरसे आवश्यक बुलावेका प
पाकर तथा पत्र लानेवालेके मुँहसे उनकी गम्भी
अस्वस्थताके समाचार सुनकर गोपाल अत्यन्त चिता
हो उठा और पिताजीके दर्शनके लिये उसकी व्यग्र
बढ़ चली ! क्योंकि भक्तिमान् पुत्रका क्रोध भला क
तक टिका रह सकता है ?

मनमें इस प्रकार विचार करनेके पश्चात्
भद्रसेठके पास पहुँचा, और उन्हें अपने मनो विचार व्य
करते हुए कहने लगा :—"सेठ साहब! अब
स्वदेश जानेका निश्चय किया है ; क्योंकि पिता
रोग शय्यापर हैं और उन्होंने मुझे बुलानेके लि
स्वतंत्र दूत भेजा है। अतएव पिताकी अस्वस्थत
समय बुद्धिमान पुत्रका उनकी सेवामें उपस्थि
रहना पितृभक्तिका सूचक है। भला मात-पिता
भक्तिसे बढ़कर संसारमें अन्य कौन सी श्रेष्ठ व
हो सकती है ?"

गोपालकी स्वदेश गमनकी अभिलाषा जान
भद्रश्रेष्ठी विचारमें पड़ गया ; किन्तु वह क्या
सकता था ? क्योंकि ऐसी स्थितिमें कुमारको रोकना
उचित नहीं जान पड़ता था। अतएव उसने कहा :

गोपाल! आपके पिता जब भयङ्कर बिमारीके कारण रोगशय्यापर हैं, और आपको बुलवा रहे हैं; तो अवश्य ही उनकी सेवामें उपस्थित होना चाहिए; किन्तु यदि आप ठीक समझें तो हमें भी आपके पिताजीके दर्शन करनेकी इच्छा है; अतः हम भी साथ में चलें?"

"आपको मेरे साथ आनेकी आवश्यकता नहीं; क्योंकि यहाँका व्यापार-व्यवसाय छोड़कर दूर-दूरान्तरकी यात्रा करनेका कष्ट आप क्यों व्यर्थके लिए उठावें? किन्तु मेरे लिये तो गये बिना कोई उपाय ही नहीं है। अतः आप सुखशांति पूर्वक यहीं रहिये। मैं आपके पास अपने कुशल-समाचार बराबर भेजता रहूँगा।" इस प्रकार गोपालने उनका समाधान किया।

"अच्छी बात है, जैसी आपकी इच्छा, किन्तु आपका पता-ठिकाना भी हम नहीं जानते। आपके अनुरोधको मानकर हमने अधिक पूछ-ताछ करनेकी इच्छा भी नहीं की है; किन्तु अब तो आप कृपा करके अपना ठीक पता बतलाते जाइये!"

"अवश्य ही मैं जाते समय पता बतला जाऊँगा। अथवा जब मैं अपने समाचार भेजूँगा तब लिख दूँगा। इस विषयमें आप अधिक चिन्ता न करें।"

"जैसी आपकी इच्छा। प्रभु आपका मार्ग निर्विघ्न करे। आप सुखी हों। मैं नन्दाको भी तैयार कर देता हूँ। आप कब जानेका विचार रखते हैं?" सेठने पूछा।

"जब मेरी तैयारी पूर्ण हो जायगी।" किन्तु अभी आपकी गर्भवती पुत्रीको साथ ले जानेकी इच्छा नहीं है; क्योंकि उसे मार्गमें कष्ट होगा और गर्भको भी हानि पहुँचनेका भय रहता है। अतः वहाँ जानेके बाद उचित समयपर उसे बुलवा लूँगा।" इस प्रकार गोपालने नन्दाको वहीं छोड़ जानेका विचार प्रकट किया, किन्तु सेठजीने फिर भी यही कहाकि:—"आपके प्रति अनन्य स्नेहभाव रखनेवाली नन्दा बिना आपके यहाँ कदापि नहीं रह सकेगी इसलिये उसे भी आप अवश्य साथ ले जाइये।"

"आपका विचार ठीक है; किन्तु अभी तो मुझे शीघ्रतासे वहाँ पहुँचना है; अभी वह यहीं रहे तो अच्छा है। बादमें अवश्य मैं उसे वहाँ बुलवा लूँगा।" गोपालने उत्तर दिया।

"अच्छी बात है; तो आप अवश्य अपना पता ठिकाना देते जाइये। जिससे कि आवश्यकता पड़

र हम आपको पत्र भेज सकें। अथवा यदि आप भूल जायँ तो याद दिला सकें!"

"आपका यह कथन भी उचित ही है। मैं आपकी पुत्रीको अपना पता ठिकाना देता जाऊँगा। इस विषयमें आप जरा भी चिन्ता न रखें!"

"जैसी आपकी इच्छा। आप जैसे बुद्धिमानको मैं अधिक क्या कह सकता हूँ? किन्तु मेरी नन्दाको दुःख हो, ऐसी कोई बात न कीजिये। उसका चित्त प्रसन्न करके आप अवश्य जाइये। साथ ही हमें भी कभी-कभी याद करते रहिये।" इसप्रकार गद्-गद् होकर सेठजीने आशीर्वाद दिया

इस प्रकार सेठजीसे कहकर गोपाल अपनी प्रियतमा नन्दाके पास आया। उसे आता देखकर वह खड़े होनेका प्रयत्न करने लगी; किन्तु गोपालने उसी क्षण हाथ पकड़कर उसे खड़ा होनेसे रोक दिया। उसने कहा :—'प्रिये! व्यर्थके लिये खड़ी होनेका कष्ट मत करो। सदैव समयानुसार व्यवहार करना बुद्धिमान पुरुषका कर्तव्य होता है।"

इस प्रकारके शब्द सुनकर नन्दाने मुसकुरा दिया; किन्तु गोपालका उदास मुखमण्डल देखकर उसने पूछा, "प्राणेश! आपका चन्द्रवदन आज उदास क्यों है?"

"प्रिये! उस मलीन मुखमण्डलको तू प्रसन्न कर सकती है। आज मुझे एक चिन्ता रूपिणी डाकिणीने ग्रस्त कर लिया है। उसीको दूर करनेके लिये मैं तेरे पास आया हूँ।" गोपालने बात कहना आरम्भ की।

"कहिये, नाथ! आपकी क्या इच्छा है? मैं किस प्रकार आपकी चिन्ता दूर कर सकती हूँ? किस प्रकार मैं आपके दुःखमें हिस्सा बँटा सकती हूँ!" नन्दाने ममत्वके साथ पूछा।

"उसीके लिए तो मैं तेरे पास अनुमति लेने आया हूँ। अतः तू प्रसन्न होकर मुझे अपनी स्वीकृति प्रदान कर दे।" स्वीकृतिकी बात सुनकर नन्दा एकदम चौंक पड़ी। उसने उत्सुक होकर पूछा-"किस बातकी अनुमति? और कैसी स्वीकृति आप मुझसे चाहते हैं?

"मैं अपने घर जानेकी इच्छा कररहा हूँ। पिताजी अत्यन्त बीमार हैं और वे बहुत ही वृद्ध हो गये हैं। अतः जैसे भी हो मुझे शीघ्रतासे उनकी सेवामें उपस्थित होना है। इसीलिए मैं तेरी स्वीकृति लेने आया हूँ।" गोपालने स्पष्टतासे अपना मंतव्य प्रकट किया।

"इसमें अनुमति या आज्ञाकी कौनसी बात है? मैं भी आपके साथ ही चलूँगी, मुझे भी अवश्य ले

ालिये। आपके वियोगमें यहाँ मेरा समय कैसे व्यतीत ो सकेगा?"

"किन्तु प्रिये! तनिक विचार कर! ऐसी दशामें ुझे साथ लेजाकर व्यर्थके लिए क्यों कष्ट उठानेको ेवश किया जाय? अतः अभी तो तू पिताके घर ार हो सुखशांतिसे रहे तो क्या हानि है?"

यह सुनते ही नन्दानेकहा :—"हानि तो नहीं; किन्तु आप जैसे सज्जन पुरुष यहाँ मुझे छोड़ जायँ; क्या यह उचित है? आप ही विचार कीजिये कि स्त्रीके लिये मुख्य आधार तो पति ही होता है। पतिके विना वह कैसे जी सकती है? आप मुझे क्यों साथ लेजाना नहीं चाहते? मैं मार्गमें आपके लिये विघ्न रूप नहीं होऊँगी।"

"तेरा कथन यथार्थ है; किन्तु अभी तो तू पिताके घर ही रहे, यही उचित होगा। बादमें जब तू स्वस्थ-सशक्त हो जायगी, तब मैं अवश्य तुझे बुलवा लूँगा।"

"नहीं स्वामिन्! मुझे आप पिताके घर बिलखती छोड़कर मत जाइये। आपके विना मेरी क्या गति होगी; इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते।"

"क्यों व्यर्थके लिए दुःखी होती है प्रिये! तेरे दुःखित होनेसे गर्भको भी हानि पहुँचनेका भय

रहता है। तेरे मनके दुःखका प्रभाव गर्भपर भी पड़ सकता है ? अतएव जैसे भी होगा, मैं तुझे शीघ्रतासे बुलवानेका प्रयत्न करूँगा ! तेरे पुत्रका जन्म होते ही मुझे तुरन्त समाचार भिजवाना।

"तो फिर इसके लिये आप अपना पता-ठिकाना बतलाते जाइये ! जब पुत्र बड़ा होने पर अपने पिताका नाम-धाम पूछेगा; तब मैं मन्दभागिनी उसे क्या उत्तर दूँगी ?" इस प्रकार कहते-कहते नन्दाका गला भर आया।

"मेरी बुद्धिमती रानी ! तू किसलिए इस हर्षके अवसर पर खेद कर रही है। तू मन्दभागिनी है या सौभाग्य शालिनी, यह तो समय आनेपर ही सिद्ध होगा। आज तो मैं भी कुछ नहीं कह सकता; क्योंकि भविष्यके पर्देमें छिपी हुई बातोंको हम अल्पज्ञ कैसे जान सकते हैं ? किन्तु इतना तो निश्चित ही समझले कि तेरे गर्भसे उत्तम एवं बुद्धिमान् पुत्र ही जन्म लेगा। उस पुत्रको पाकर तू अवश्य ही सुखी होगी और मुझे भूल जायगी।"

"इस प्रकार बातें बनाकर आप मुझे मत बहलाइये ; क्योंकि इस प्रकार भविष्यकी बातोंमें भूलकर कौन मूर्ख होगा जो अपने हाथमें आये हुए ग्रासको छोड़

देना चाहेगा ? मैं आपको अपनेसे जरा भी दूर करनेके लिये तैयार नहीं हूँ। अतः मैं भी साथ चलकर सास-ससुरके दर्शन करूँगी।"

"किन्तु प्रिये! ऐसी नगण्य बातके लिए तेरे समान बुद्धिमती स्त्रीका हठ करना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। सती स्त्रीके लिए तो पति आज्ञाको मानना ही परम धर्म हो सकता है। साथ ही मैं जैसे भी होगा तुझे शीघ्रतासे बुलवानेका यत्न करूँगा, किन्तु अभी तुझे यहीं रहना उचित है।"

"तो फिर आप अपना पता-ठिकाना, नाम-धाम वंश परिचय अवश्य देते जाइये। यदि कभी आप मुझे भूल जायँ; तो उस परसे आपका पता तो लगाया जा सकेगा!"

"हाँ उसके लिये तुझे चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं। मेरा नाम-धाम आदि तू अभी तो निधान-खजानेकी तरह सम्हालकर रखना और अवसर आनेपर उसका उपयोग करना। यदि कदाचित् मैं तुझे भूल भी जाऊँ तो तू उस पतेपर तलास करके मेरे पास आ जाना।" यों कहकर जैसे तैसे गोपालने नन्दाको समझाते हुए शान्त किया।

"आप जैसेभी हो, मुझे शीघ्रतासे बुलवा लीजियेगा।

निरन्तर हमारा ध्यान रखियेगा। आपके पुत्रका नाम तो 'अभय कुमार' ही रखना उचित होगा न ?" नन्दाने पूछा।

"हाँ, पुत्रका नाम तू 'अभय कुमार' ही रखना। तेरे स्वप्नके प्रभावसे वह पुत्र मेरी अपेक्षा भी श्रेष्ठ होगा। याद है न, तुझे-गर्भके प्रभावसे देखा हुआ वह शुभ स्वप्न ?"

"वह स्वप्न तो बहुत ही श्रेष्ठ था। चार दाँतों-वाला, उदाराशय, श्वेतवर्णयुक्त ऐरावतके समान गजराजको प्रभातके समय मैंने अपने मुखमें प्रवेश करते देखा था और उसका उत्तम फल भी आपने मुझे बतलाया था। यह सब अबतक मुझे भली भाँति स्मरण है।"

"उसे तू निरन्तर याद रखना। वह भाग्यवान पुत्र हमारी आपत्तियाँ दूर करनेवाला सिद्ध होगा। साथ ही वह तेरे सभी मनोरथ पूर्ण करेगा। उसका मुख देखकर समय पर तू मुझे भी भूल जायगी।

"आप इस प्रकार मीठे शब्दों द्वारा मुझे वह लाना चाहते हैं, किन्तु मैं कर ही क्या सकती हूँ. अभी तो निरुपाय हूँ। अन्यथा अन्य समय तो मैं ...ापि आपको अकेला नहीं जाने देती !"

नन्दाकी बात सुनकर गोपालने मुसकुराते हुए
हाः—"तेरे स्नेहके सम्मुख मैं विवश हूँ। तुझे साथ
जाना मेरा कर्तव्य भी है; किन्तु अभी तो मैं
ो विवश हूँ।"

"दीजिये आपका पता-ठिकाना! प्रभु आपका
ार्ग मङ्गलमय करें।"

इस प्रकार नन्दाको समझानेके पश्चात् उसने
क कारीगर को बुलाकर शिलाखण्ड पर अपना पता
ाङ्कित उत्कीर्ण) कराया; जिससे कि वह दीर्घ काल-
क मिट न सके। पता इस प्रकार था।

'गोपालकाः पाण्डुरकुड्यवंतो वयं पुरे राजगृहे वसामः।"
अर्थात्—गो पृथ्वीका पालन करनेवाले और उज्ज्वल
वर्ण वाली मनोहर दिवारोंसे युक्त भवनमें रहनेवाले हम
राजगृह नगरके निवासी गोपाल हैं।"

मन्त्रके समान शिलाखण्डपर इस प्रकार अक्षर
अंकित करवाकर श्रेणिकने उसे नन्दाको सौंप दिया;
और उसे धरोहरकी भाँति सुरक्षित रखनेके लिए
कहा। इसी प्रकार और भी अनेक प्रकारके मीठे
वचनोंसे नन्दाके चित्तको उसने प्रसन्न कर दिया।
नन्दाने भी उसे धरोहर (गुप्त निधान) की भाँति सुर-
क्षित रख दिया। पतिके स्वदेश गमनसे आज उस

चित्त उदास था। मनमें अनेक प्रकारके विचार उत्पन्न होने लगे; किन्तु कर ही क्या सकती थी? वह स्वयं ऐसी दशा में थी कि उसका कुछ भी वश नहीं चल सकता था! इसीलिए विवश होकर उसे पतिको स्वदेश जानेकी अनुमति देनी पड़ी। साथ ही ऐसी स्थितिमें पतिको रोकना भी उचित नहीं था। इसीलिए भविष्य पर आधार रखकर उसके लिए अभी तो हृदयको दृढ़ बनाना आवश्यक ही था। अतः रोते हुए व्यथित हृदयसे उदास मुख होकर उसने स्वामीको विदा किया और अपनेको शीघ्र बुलवानेके लिये बारम्बार अनुरोध किया।

अब गोपालने चलनेकी तैयारी आरम्भ की। पिताके सम्मुख अकेले और साधारण वेशमें जाना उसे उचित नहीं जान पड़ा; क्योंकि ठाठ-बाटसे जानेपर ही नागरिकों पर प्रभाव पड़ सकता था। साथ ही मार्गमें भिल्ल आदि लुटेरोंका समागम होनेपर उनको मार भगानेके लिए भी तैयार रहना था। अतएव इन सब बातोंका विचार कर उन्होंने नगरके बाहर सैनिकोंको एकत्र करना आरम्भ किया। साथ ही सेनाके योग्य अनेक प्रकारकी सामग्री एकत्रकर योग्य व्यक्तियोंको उनके उपयुक्त पदोंपर नियुक्त किया; तथा उन्हें

अनेक प्रकारके छोटे बड़े अधिकार भी प्रदान किये। इसी प्रकार शत्रुओंके साथ उत्साह पूर्वक युद्ध कर विजय प्राप्त करनेवाले योद्धाओंको भी उसने एकत्रित किया। इस प्रकार सम्पूर्ण तैयारी करके अपने सेनापतिको आगे कूच करनेकी आज्ञा दी। उसके अनुसार गोपालकी सेना धीरे-धीरे आगे बढ़कर राजगृहके मार्गपर अग्रसर हो चली। इस प्रकार एक दिन गोपालने सबसे विदा होकर स्वदेशकी ओर प्रस्थान किया। क्रमशः आगे बढ़ता हुआ वह राजगृहके मार्गपर अग्रसर हो चला।

—o—

तेईसवाँ परिच्छेद

—::※::—

जङ्गलमें भील जैसे दो पुरुष मध्य मार्गमें जारहे थे। वे कन्धेपर धनुष (कमान) धारण किये कमरमें लँगोटी पहने मेघके समान काले रङ्गके थे; जो कि शिकारकी

खोजमें इधर-उधर भटक रहे थे। वे यद्यपि अपने स्थानसे बहुत दूर निकल गये थे; किन्तु फिर भी रातदिन प्रत्येक स्थानका परिचय रखनेके कारण उन्हें जरा भी भय नहीं था। आज बहुत दूर निकल जाने पर भी कोई शिकार न मिलनेके कारण वे उकता कर वापस लौटनेका विचार कर रहे थे। मध्याह्नका समय होनेसे सूर्य भी मस्तक पर आ गया था। भूखके कारण उनका चित्त विकल हो रहा था। अतएव आगे बढ़नेका विचार त्यागकर उन्होंने वापस लौटनेकी शुरुआत की। इतनेही में दूरसे धूल उड़ती हुई देखकर उनमेंसे एकने कहा :—"अरे देख तो सही। तेरी नजरके सामने नाककी सीधपर देखतो सही; आगे क्या दिखाई देता है?"

अपने साथीके कहने पर उस भीलने दूरतक दृष्टि दौड़ाई; किन्तु कुछ भी समझमें न आनेसे उसने अपने साथीसे कहा :—"अरे श्यामला! तू क्या बक रहा है। मुझे तो कुछ भी नहीं दिखाई देता। तू इस पेड़ पर चढ़कर देखतो! तबतक मैं भी नजर दौड़ाता हूँ कि क्या बात है। कुछ गड़बड़ तो जरूर ज्ञान पड़ती है। यों कहते हुए दोनों भीलोंने वृक्ष-चढ़कर उसके सिरे परसे देखा।

"अरे जगल्या ! भागें यहाँसे ! यह तो कोई फौज ही आ रही है। हमलोग बिना मौत मारे जायँगे। कितने घोड़े चले आ रहे हैं। झटपट घर पहुँचकर अपने राजाको खबर दें। चलो, झटपट अपनी झोपड़ीमें पहुँचकर प्राण बचावें।" श्यामलाने कहा।

"हाँ रे, चल, जल्दीसे भाग। ये तो हमारे स्थानकी ओर ही आ रहे हैं; किन्तु हमने भी कहाँ हाथों चूड़ियाँ पहनी हैं! देखते हैं कि ये क्या करना चाहते हैं! यदि हमही इनपर हमला करके इनका मालमत्ता लूटलें तो कैसा?" जगल्याने श्यामलासे कहा।

"तेरी सलाह ठीक है। जो भी हो, हमें मेहनत करनी पड़ेगी ; किन्तु वे भी तो समझ लेंगे कि दुनियामें हमसे भी सवासेर के पड़े हुए हैं। साथ ही दूसरोंको बातकी बात में लूट लेना तो हमारे लिये बायें हाथका खेल ही है। यह हमारे रात-दिनके अभ्यास की बात है।"

"हाँ रे! यह कौन बड़ी बात है। चल झट! अभी तो हम जल्दीसे अपने गाँवमें पहुँच जायँ। हम तो केवल दो ही जने हैं, और उन्हें देख कि कितने घुड़सवार हैं। अरे, कहीं सरकारकी फौज तो डाका डालने नहीं जा रही है?" इस प्रकार

विचार करते हुए दोनों ही वृक्ष परसे नीचे उतर पड़े, और पग डण्डीके छोटे रास्तेसे दौड़कर अपने निवास स्थान पल्लीमें जा पहुँचे। उनका दम इस तरह फूल रहा था कि अपने राजाको भी यह समाचार सुनानेकी शक्ति उनमें नहीं रह गई थी; किन्तु उन्हें इस प्रकार हाँपते हुए आते देखकर पल्ली पति विचारमें पड़ गया। उसने पूछाः—"अरे, ऐसी क्या बात है! जरा धीरजके साथ शांत होकर कहो तो सही!"

"कुछ शांत होनेपर एक भीलने कहा:- "भिल्ल राज! गजब हो रहा है। झट पट तैयार हो जाइये। रणभेरी बजवाइये! तीर-कमान और भाले लेकर सबको तैयार कीजिये। अरे मैं क्या बताऊँ, क्या कहूँ?

"अरे पर बात क्या है, सो तो बतला? जल्दी से कह!" भिल्लराजने उत्सुकता से पूछा।

"भिल्लराज कितनेही घुड़सवार हमारी पल्लीकी ओर बढ़े आ रहे हैं। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि किसी राजाकी फौज हमारे गाँव पर चढ़ाई करने आ रही है!"

जगल्याकी बात सुनकर भिल्लराज जोशके साथ तीरकमान सम्हालता हुआ एकदम उठ खड़ा हुआ।'

. हमपर फौजकी चढ़ाई हो रही है? सिंह की

मांदमें हाथ डालकर मरनेके लिए कौन तैयार हुआ है?" भिल्लराज जोरोंसे चिल्ला उठा।

"यह तो हम भी नहीं जानते कि कौन मरनेके लिए आ रहा है! किन्तु कोई अवश्य आ रहा है। अतः हमारे लिए तैयार रहना ही अच्छा है। फिर भी यह तो पता लगाना ही चाहिये कि वह कौन है? और कहाँ जा रहा है?"

श्यामलाके वचन सुनकर भिल्लराज और उसके साथी तीर-कमान और भाले-तलवार ढाल, वख्तर आदि लेकर पूरी तैयारीके साथ बाहर निकल पड़े। साथ ही अन्य सब भीलोंको तैयार रहनेके लिये भी सूचित करते गये। भिल्लराजके थोड़ी ही दूर आगे बढ़ने पर रणभेरीकी आवाज सुनाई दी, और उससे भिल्लराज एकदम चौंकपड़ा; किन्तु तत्काल ही उसने भी अपने ग्राममें वापस आकर रणभेरी बजादी। भेरीनाद को सुनते ही किलकारी करती हुई भील सेना तीर-कमान और भाला हाथ में लिये निकल पड़ी। वेसब एक स्थानपर एकत्र होकर शत्रुका सामना करनेके लिये खड़े हो गये।

उधर सेनाभी उनकी चुनौती स्वीकार करनेको तैयार ही थी। वह सेना गोपाल की ही थी। अतः

भिलों की पल्लीके निकट आते ही उसने अपने रण वाद्य बजाकर शत्रुको सावधान किया; क्योंकि समर्थ पुरुष शत्रुकी असावधानीका लाभ उठाना नहीं चाहते। उसे जाग्रत या सावधान करकेही वशमें करते हैं इसी दृष्टिसे श्रेणिकने भिल्लराजको सावधान किया था; क्योंकि मूर्ख मित्रकी अपेक्षा समझदार शत्रु संसारमें अच्छा कहा जाता है।

श्रेणिकके सुभटोंको देखते ही भीलोंका किल-किलाहट बढ़ गया। वे चिल्लाने लगे कि:—शत्रुओंको मारो! इनका नाश करो!" और यों कहते हुए उन्होंने तत्काल ही श्रेणिककी सेनापर तीर बरसाना आरम्भ कर दिया; किन्तु अङ्ग रक्षक रत्नका स्मरण करते ही श्रेणिक पर छोड़े हुए सब बाण व्यर्थ सिद्ध होने लगे। श्रेणिक और उसके सैनिकोंने तत्काल भीलों पर धावा करके उनमेंसे अनेकको मार गिराया। भिल्लराज अपनी भील सेना को पीछी हटती देख उसे शौर्यभरे उत्तेजित वचन सुनाता हुआ बड़े वेगसे आगे बढ़कर श्रेणिक पर वार करने लगा। अपने नायकको शत्रु सेनामें घुसते देखकर अन्य भील सेनाभी किलकिलाहट करती हुई उसके पीछे झपट पड़ी। दोनों पक्षकी सेना परस्पर भिड़ गयी। यद्यपि भीललोग बलवान और तीरके

निशान लगानेमें कुशल थे; फिर भी श्रेणिकके सुभटोंने उन्हें मार भगाया। उनमें से कई मर भी गये। इस स्वार्थकी वेदीपर कितने ही की बली चढ़ गई। कई तड़पते हुए मृत्यु मुखमें जा पड़े।

श्रेणिकके सुभटोंमेंसे भी कई वीर मारे गये। इस प्रकारके भयङ्कर युद्धमें जिनकी शक्ति विशेष होती है, वे ही अन्तमें विजयी होते हैं। अपने भीलोंका नाश होता देखकर भिल्लराज एकदम श्रेणिक पर टूटपड़ा; किन्तु वह उनके पासतक नहीं पहुँच सका था; क्योंकि बीचमें कितने ही सैनिक पर्वत-की तरह श्रेणिककी रक्षाके लिये अडिग खड़े हुए थे। उनसे युद्धकर उसे आगे बढ़ना था, किन्तु भिल्ल-राजको ललकारता हुआ श्रेणिकका सेनापति एकदम आगे बढ़ा और उसने भिल्लराजको आगे बढ़नेसे रोका। अतएव भिल्लराज और उसके साथियोंको जहाँ का तहाँ रुक जाना पड़ा। परस्पर शक्तिकी बरा-बर परीक्षा हुई और अन्तमें नायकने देखा कि उसके अनेक भीलोंको प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा है और वे मृत्युकी शांत गोदमें सदैवके लिये सोगये हैं।

अन्ततः श्रेणिकके वीरोंकी असह्य मारसे त्रस्त होकर रहे-सहे भील भी भाग जानेका प्रयत्न करने

लगे। साथ ही भिल्लनायक भी अपना बल घटता देखकर पीछे हटने लगा। कई भील तो थककर शरणागत हो गये और कितने ही भाग गये।

भिल्ल नायक भी उन वीरोंकी नजर बचाकर भाग चला, किन्तु नायकको भागता देखकर श्रेणिकने अपने सेनापतिको उसे पकड़ लानेकी आज्ञा दी। अतः सेनापति तीरकी तरह नायकके पीछे दौड़ा और तत्काल उसे पकड़ने लगा, किन्तु भिल्लराज भी कोई साधारण व्यक्ति नहीं था। अतः सेनापतिको उसके साथ युद्ध करना पड़ा। वे एक दूसरे पर तल्वारके वार करने लगे। दोनों ही एक दूसरेके प्राणोंके ग्राहक बनकर दाव-पेचसे परस्पर वार बचाते हुए जूझ रहे थे। इसी बीच भिल्लराजकी तलवार सेनापतिकी कृपाणपर पड़ते ही वह टूटकर गिरपड़ी। अतएव अपनी तल्वारको गिरती देखकर भिल्लराज फुर्तीसे ढालपर शत्रुके वार झेलने लगा। साथ ही उसने सेनापतिको ललकारते हुए कहा कि:—'अब मेरी तल्वार टूट गई है, ऐसी दशामें यदि तुम मुझे तल्वारसे जीत भी लो तो भी क्या? यदि तुममें शक्ति है तो मुझे दूसरी तल्वार दो, अथवा मुझसे बाहुयुद्ध ... ! फिर देखो कि मैं क्या करता हूं?"

ओह ! यह कौन बड़ी बात है ! चलो, आजाओ सामने ! "यों कहकर उसने अपनी तल्वार म्यानमें डालकर बाहु युद्ध आरम्भ कर दिया। दावपेंचसे एक दूसरेको नीचे गिराते हुए उनका युद्ध बड़ी देरतक चला। अन्तमें सेनापति नीचे गिरे हुए भिल्लराजकी छातीपर चढ़ बैठा; और उसने उसे कसकर बाँध लिया। इतने ही में दूसरे सैनिक आ पहुँचे और सेनापतिने उसे उनके हवाले कर दिया, क्योंकि सेनापति भी युद्ध करते-करते थक गया था। अतएव थोड़ी देर विश्रामकर वह भिल्ल नायकको लिये हुए श्रेणिक कुमारके सम्मुख आकर उपस्थित हो गया; क्योंकि क्षत्रियोंकी लक्ष्मी तो उनके पराक्रममें ही वास करती है। यह पृथ्वी सदैव वीर पुरुषोंके ही भोगने योग्य रही है। भला, जंगलमें सिंहका कोई भी अभिषेक नहीं करता; फिर भी वह मृगराज कहलाता है; सो केवल अपने पराक्रमके बल पर ही।

विजयी श्रेणिक वहाँसे अपनी सेना और सवालाख भीलोंके साथ भील नायकको लेकर अपनी जन्मभूमिकी ओर आगे बढ़ चला।

———

चौबीसवाँ परिच्छेद

"पिताके चरणों में"

—::❀::—

एक विशाल राजमहलकी सातवीं मंजिलपर रोगसे पीड़ित राजा चिन्तातुर होकर पलङ्गपर लेटे हुए थे। उनके सामने प्रधान-मन्त्री, सामन्त और सगे-स्वजन बैठे हुए थे। वैद्यलोग प्रतिक्षण राजाके जीवनकी चिन्ता करते हुए सामने खड़े थे, किन्तु अनेक प्रकारके औषधोपचार किये जानेपर भी इस समय राजा मृत्युके निकट पहुँचते जारहे थे। उनके पर्वत जैसे शरीरको वृद्धावस्थाने घेर लिया था। रही-सही शक्ति व्याधिके कारण नाम शेष होकर उनका शरीर अस्थि पंजर मात्र रह गया था। उन्हें विश्वास हो चुका था कि अब मेरा जीवन समाप्ति की सीमापर पहुँच गया है। अर्थात उस बीमारीसे उठकर स्वस्थ हो सकना सर्वथा असंभव था। यमराजके भयंकर दूतोंका आमंत्रण भी अब आ पहुँचा है। सो वे भी उस आमंत्रणको स्वीकारनेके लिए आतुर तो थे;

किंतु फिर भी उन्हें अपने जीवनमें अभी एक इच्छा शेष थी। भला, संसारमें इच्छाएँ किसको नहीं होतीं ?

महाराजमें अब बोलनेकी भी शक्ति नहीं रह गई थी। वे भीतर धँसी हुई आँखोंसे अपने विशाल राजप्रासाद की समृद्धिका अवलोकन करते हुए सामने बैठे अपने सहयोगियोंकी ओर देख रहे थे। उनसे बोलने या बात-चीत करनेकी प्रबल इच्छा होते हुए भी, उस दशामें बोलना एक प्रकारसे मृत्युको शीघ्र आमन्त्रण देने जैसा ही था। राज वैद्योंने उन्हें बोलनेसे मना कर दिया था ; यद्यपि अपने चरणोंमें मगध देशकी समृद्धिका निवास होते हुए और चिरकाल पर्यन्त उसका उपभोग करते रहनेसे वे तृप्त हो चुके थे, किंतु भविष्यमें उसका उपभोग करने वाले योग्यपुरुषकी अब वे आतुरतासे प्रतीक्षा कर रहे थे ; क्योंकि वही उनके जीवनकी शेष अभिलाषा थी।

वे तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामीके परम श्रावक थे। भला, दृढ़ समकित व्रतधारी और बारह व्रतोंका सेवन करने वालेके लिए मोहका आवेश कैसे हो सकता है ? प्रभुके चतुर्थ पाटपर हुए स्वयं प्रभसूरि जैसे प्रभाविक पुरुषके वे भक्त थे। इसीसे मगध साम्राज्यके वैभवका उपभोग करते हुए भी वे श्रावक धर्मका यथार्थ पालन

करते थे ; क्योंकि इस लोक और परलोकमें आत्माको सुख देनेवाला एक मात्र धर्म ही हो सकता है। शेष सभी पुरुषार्थ तो उसके फलस्वरूप ही होते हैं। इस वस्तु तत्व को समझानेवाले महाराज इस समय तो जैसे भी हो, त्यागका अवलंबन कर मोहके कारणोंको एक-एक करके दूर करते हुए श्री पार्श्वनाथ भगवानका ही ध्यान कर रहे थे। वे अपना चित्त उन्हींके चरणोंमें लगा रहे थे। पासमें बैठे हुए पण्डित लोग भी धर्म सम्बन्धी बातें करके उनके चित्तको धर्ममें प्रवृत्त कर रहे थे। बार-बारके उपदेशसे यद्यपि उनका चित्त सांसारिक-बन्धनोंसे मुक्त हो चुका था; फिर भी एक विषम बन्धन शेष ही था। अतः वे उस बन्धनकी चिन्तासे चारों ओर दृष्टि दौड़ाते थे ; किंतु निराश होकर उन्हें आँखें मूंद लेनी पड़ती थीं, वह बन्धन था अपने युवराज-पुत्र श्रेणिक के आगमनकी प्रतीक्षा।

महाराजाके निन्यावे पुत्र इस समय उनके सामने उपस्थित थे और मगधका राजमुकुट हस्तगत करनेके लिये अपना-अपना पक्ष पुष्ट करनेके प्रयत्नमें लगे हुए होनेसे वे स्वार्थी-पुत्र पितृभक्तिसे वंचित हो रहे थे। फिर भी प्रकटमें अपनी बुद्धिमत्ताके अनुसार पितृभक्ति करनेका प्रयत्न कर ही रहे थे। इसीलिए वे पिताके

समक्ष उपस्थित थे; किंतु फिर भी यदि पिता स्वयं अपने हाथोंसे ही मगधका राजमुकुट हमारे मस्तक पर रख दें तो बादमें झगड़ा झंझट करनेका कारण नहीं रह जायगा। फिर तो उसे सम्हाल कर सुरक्षित रखनेकी ही चिन्ता रहेगी।

उन कुमारोंने चतुर एवं कुशल मंत्रियोंको अपने पक्ष-में कर लिए थे, जिससे वे महाराजके सम्मुख प्रस्ताव रखकर वे अपने लिये अनुरोध कर सकें। मंत्रियोंको बड़े-बड़े प्रलोभन दे रक्खे थे और भविष्यके लिए भी अनेक प्रकारकी आशाएँ दे रखी थीं। इस प्रकार द्रव्य बल, मानवी बुद्धि एवं मंत्रियोंके समर्थनद्वारा वे अपना पक्ष पुष्ट करनेके लिए प्राणपणसे प्रयत्न कर रहे थे। यदि कहीं युद्धका अवसर आजाय; तो अपने-अपने अधिकार वाले प्रदेशोंसे सेना तैयार करनेके लिए भी उन्होंने सेनापतियोंको आज्ञा दे रक्खी थी। जिससे कि वे समय पर अपने शत्रुको हरा सकें।

एक दिन महाराज अपनी गम्भीर बीमारीकी अवस्थामें शांतिसे शय्यापर लेटे हुए थे। सामने मन्त्री गण बैठे थे, किंतु अभीतक श्रेणिकके न आनेसे उन्हें चिन्ता हो रही थी। अन्तमें उन्होंने धीमे स्वरमें कहा :-"प्राधन जी! उस लड़केकी ढिठाई तो देखिये!

आज कितने ही दिनोंसे मैं उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, किन्तु अभी तक उसका कहीं पता भी नहीं है।"

"महाराज! आप धैर्य रखिये। कुमार श्रेणिक अवश्य और शीघ्र आने ही चाहिये। आपकी यह इच्छा धर्मके प्रभावसे अवश्य सफल होगी।" प्रधान मन्त्रीने आश्वासन दिया।

"किंतु यह कैसे पता लग सकता है? परदेश गये हुए व्यक्तिका विश्वास ही क्या? और धीरजकी भी तो कोई सीमा हो सकती है?" बीचमें ही एक मंत्रीने कहा।

"सच है! इसीलिए महाराजको चाहिए कि अब अपने हाथोंसे पसन्द करके राजमुकुट इन निन्यानवे राजकुमारोंमें से किसीके मस्तकपर रख देना चाहिये; जिससे कि बादमें वाद-विवाद झगड़ा न हो सके!" दूसरे एक मन्त्रीने बीचमें तर्क उपस्थित किया।

मन्त्रीका यह विचार बहुत ही उत्तम है देव! अब तो आपको इसका निर्णय कर ही डालना चाहिए। राज्यशासनको सम्हाल सकने वाला इन कुमारोंमें से आपको जो भी योग्य जान पड़े उसका नाम प्रकट कर दीजिये। तीसरे मन्त्रीने उपर्युक्त कथनका समर्थन

किया। इस प्रकार मन्त्री गण एक के बाद दूसरी दलील और तर्क उपस्थित करने लगे।

मन्त्रियोंकी ये सब बातें शय्या पर लेटे हुए महाराज चुपचाप सुन रहे थे, किंतु इस समय तो उनका उत्तर धीरेसे दे सकनेकी शक्ति भी उनमें शेष नहीं थी। साथ ही श्रेणिकको प्रतीक्षा करते हुए भी वे बहुत थक चुके थे। इसी प्रकार उन्हें मृत्युका आसंत्रण भी निकट ही प्रतीत हो रहा था। इसीलिए यदि वे अपना निश्चय प्रकट न करें, तो पीछेसे राजकुमारोंके लड़ने-मरनेकी पूरी संभावना थी। अतएव वे इस बातका निश्चय न कर सके कि क्या किया जाय और क्या नहीं? वे विचार ही विचारमें उलझे हुए थे। अन्तमें उन्होंने पूछा :—"तो क्या श्रेणिकके आनेकी कुछ भी आशा नहीं है?"

"यह तो कैसे कहा जा सकता है देव! मेरा मन तो यही साक्षी देता है कि कुमार अवश्य ही आवेंगे, किंतु कबतक; यह निश्चित रूपसे कैसे बताया जा सकता है? अनुमानसे तो यही कहा जा सकता है कि वे शीघ्र ही आने चाहिएँ!" महा मन्त्री चन्द्रवर्माने कहा।

"तो फिर आशा ही आशामें हम कबतक रुके रहेंगे?

मैं तो थोड़े ही समयका मेहमान हूँ, मुझे अब कुछ भी सूझ नहीं पड़ती।" महाराजने कहा।

"ऐसी दशामें आपको जोभी उचित जानपड़े वह कीजिये, 'आपका विचार क्या है?' महामन्त्रीने पूछा

"इन मन्त्रियोंके विचार तो आपने सुन ही लिं हैं। मुझे यही उचित जान पड़ता है कि मेरी मौज़ दगीमें ही किसी राजकुमारको मगधका मुकुट पहन दिया जाय! अन्यथा ये कुमार परस्पर लड़ मरें और इस श्रेष्ठ मगधराज्यको नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। इस प्रकार महाराजने अपना अभिप्राय प्रकट किया!

"जैसी भी आपकी इच्छा हो! आपकी दृष्टिमें मगधराजके सिंहासनकी रक्षा करने योग्य कौनसा राजकुमार जान पड़ता है?" महामन्त्रीने महाराजका आशय जाननेके लिए पूछा।

महामन्त्रीके शब्दोंको श्रवणकर महाराजने अपने सामने बैठे हुए राजकुमारोंपर दृष्टि दौड़ाई, किन्तु चारों ओर देखनेपर भी उन्हें उन डरपोक स्वभाववाले राजकुमारोंमें से कोई भी इस योग्य नहीं जान पड़ा! शत्रुओंके बीच मगधके राजमुकुटको सुरक्षित रखकर विरोधीको परास्त करनेका पराक्रम किसीमें भी नहीं

दिखाई दिया। इसलिये निराश होकर महाराजने दीर्घ निःश्वास छोड़ा।

"क्या विचार किया, देव!" महामन्त्रीने महाराजको मौन होते देखकर पूछा! अतः महाराजने उसकी ओर देखते हुए कहा :—"प्रधानजी! मेरे अन्य मन्त्रियोंको भी अपने-अपने विचार प्रकट करने दो।"

इस प्रकार मन्त्रियोंको बोलनेका सहजमें मौका मिल गया। वे अभी तक तो चुपचाप ही महाराजकी ओर देख रहे थे। अतएव राजकुमारोंसे मिली हुई रकम पचाकर महाराजके सम्मुख अपनी-अपनी वकालत करनेका अवसर आ गया जान कर प्रत्येक मन्त्रीने अपनी-अपनी इच्छानुसार जो-जो राजकुमार राज-सिंहासनके योग्य प्रतीत हुए उनकी नामावली महाराजके सम्मुख जाहिर की। प्रत्येकने अनेक प्रकारकी दलीलें देकर अपने पक्षको पुष्ट करनेका भरपूर प्रयत्न किया। उन सबकी दलीलें और युक्तियाँ तथा राज-सिंहासन पानेके लिये उत्सुक कुमारोंकी नामावली मगधराज शय्यापर पड़े हुए सुन रहे थे, किन्तु मन्त्रियों-द्वारा आग्रहपूर्वक कही हुई बातें सुननेके बाद भी महाराजकी दृष्टि किसीपर स्थिर न हो सकी। फिर भी वे कर ही क्या सकते थे? सूर्यका उदय

न होनेपर नक्षत्रोंके अथवा दीपकके प्रकाशसे भी संतोष तो करना ही पड़ता है।

"क्यों प्रधानजी! इन सबमें आपकी दृष्टि किस पर टिकती है? क्या आपको ये सभी मगधका राजमुकुट, अपनी बल-बुद्धि अथवा शक्ति द्वारा सुरक्षित रखते दिखाई देते हैं?"

भविष्यकी बातें सुनकर पासमें बैठे हुए कुमारोंके हृदय उत्सुक हो रहे थे। भाग्यदेवी किसपर कृपा करती है। यह जाननेके लिये उनके मन अधीर हो रहे थे। इसीलिए वे अत्यन्त सावधानीके साथ उन बातोंपर ध्यान दे रहे थे। उनमेंसे कई तो भाग्य-लक्ष्मीका वरण करनेके लिए महालक्ष्मीका जप भी करने लगे थे। राज्यलक्ष्मी वरमाला लेकर उनके सामने मुसकुराती हुई खड़ी थी। उस वरमालाके लिये प्रत्येक राजकुमार प्रार्थना कर रहे थे, किन्तु अभी तक उसने किसीको वरण नहीं किया था और न किसीपर उसकी दृष्टि ही थी; क्योंकि पुण्य बलसे ही वह (लक्ष्मी) अनुकूल हो सकती है। इसी प्रकार जगत्में भाग्यके अनुसार ही सब कुछ होता है; किसीके मनकी इच्छानुसार कभी नहीं।

अन्ततः महामन्त्रीने बात घुमाकर कलपर उसका निर्णय छोड़नेकी सलाह दी।

"देव! इस विषयका अन्तिम निर्णय कलपर छोड़िये। रातको एकान्तमें हम इस विषयमें विचार करेंगे और अपना निश्चय प्रकट कर देंगे तो इसमें विशेष सुविधा होगी।"

"किन्तु आगामी कल तो हमें अवश्य ही इसका अन्तिम निर्णय करलेना होगा।" महाराजने कहा।

फलतः कलके लिए अपना भविष्य जाननेको प्रत्येक-के हृदय आतुर हो उठे, और वे अपने-अपने मनमें अनेक प्रकारके तर्क-वितर्क करने लगे कि कलका सूर्य-उदय होनेपर किस भाग्यशाली पुरुषकी मगध पतिके रूपमें घोषणा होती है! सबको विश्वास हो गया कि अब श्रेणिकके आनेकी आशा छोड़ दी गई है। अतः अब तो हम निन्यानवे भाइयोंमें से ही भाग्यलक्ष्मी चाहे जिसे वरमाला पहना सकती है! क्योंकि मनुष्यकी इच्छा और दैव इच्छा वह तो कदा-चित ही एकत्रित होती है!

रात्रिके विचार होने बाद दूसरे दिनका प्रातःकाल भी हो गया। सूर्योदयके बाद दो घड़ी दिन बीत जानेपर सभी सम्बन्धीजन और मन्त्रीगण महाराजके

विशाल भवनमें आ पहुँचे। सभी कुमारोंने ठाट-पाटके साथ आकर पिताके चरणोंमें प्रणाम किया, किन्तु इतना जन समूह एकत्र होने पर भी वहाँ पूर्ण शांति ही थी; क्योंकि सभी यह जाननेके लिए अधीर हो रहे थे कि भाग्यलक्ष्मी किसके गलेमें वरमाला पहनाती है। भला, ऐसी बात सुननेके लिए किसे उत्सुकता नहीं होती? महाराजने शांतिपूर्वक सबकी ओर देखा।

"क्यों प्रधानजी! अब तो हमें अपना निश्चय प्रकट कर ही देना चाहिए न!" महाराजने मन्द स्वरमें कहा।

"अवश्य ही! कबतक धैर्य रखाजाय? हमने युवराजकी अभीतक प्रतीक्षा की, किन्तु भाग्यलक्ष्मी ही दूसरेको वरण करनेके लिए आतुर हो रही जान पड़ती है।" मन्त्रीने कहा।

किन्तु प्रधानके इन वचनोंको सुनती हुई भाग्य-लक्ष्मी गुप्त रूपसे मुसकुरा रही थी। वह जानती थी कि यह वरमाला किसके गलेमें पड़नेवाली है। इसीसे वह समयकी राह देख रही थी।

उस अटल शांतिको अचानक एक घटनाने भङ्ग कर दिया। मगधसे बाहर घूमने वाले चार दूत

दौड़ते हुए एकदम सभामें आ पहुँचे और महाराजकी वह बात वहीं रुक गई। दूतोंने सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। हाँफते हुए दूतोंने आकर महाराज-को प्रणाम किया और इसके बाद उन्होंने निवेदन किया कि :—"देव! कोई अन्य राज्यकी सेना हमारे नगरकी ओर वेगपूर्वक बढ़ी चली आ रही है। न जाने किसको इस समय मगधपर आक्रमण करनेकी सूझी है?"

उन दूतोंकी बात सुनकर सबके हृदय धड़कने लगे। सबको चिन्ता हुई कि इस समय यह संकट कहाँसे आ पड़ा है? यह आफत कहाँसे आई? हमारे नगरपर कौन राजा आक्रमण करनेके लिए आ रहा है? उसकी कितनी सेना है?" महामन्त्रीने विश्वास करनेके लिए फिरसे पूछा।

"अरे महाराज! उन घोड़ोंके शब्दोंसे पृथ्वी डोलायमान हो रही है! उनके पैरोंसे उड़ती धूलसे आकाश छा गया है। उस पैदल सेनाका तो कोई पार ही नहीं है। उन तीर-कमानवाले मकरकुन्दों-भँवरोंके समान भीलोंका अपार जन समुदाय दिखाई देता है।"

"तब तो हमें उनका सामना करनेके लिए तैयार

होना चाहिये। हमारे इन कुमारोंमेंसे जिसे राजमुकुट पानेकी इच्छा हो उसे ही क्यों न सामने भेजा जाय?" धीरेसे मगधराजने मन्त्रीसे कहा।

"मगधराजकी यह आज्ञा महामन्त्रीने सभी राजकुमारोंको सुना दी! किन्तु जान बुझकर मृत्युके मुखमें जानेके लिए हिम्मत करनेवाला बलशाली शूर-वीर तो सौमें एकाध ही निकलता है। तब ये तो निन्यानवे थे। सभी सिर नीचे किये जमीन कुरेदने लगे। राज्यलक्ष्मीने कटु हास्य कर सबका तिरस्कार किया।

अचानक ही यह प्रसंग उपस्थित होनेके कारण वकालत करनेवाले मन्त्रियोंके मुँह फीके पड़ गये। रातकी एकान्त मंत्रणामें सभी कुमारोंकी परीक्षा करनेके बाद उनमें जो श्रेष्ठ हो, उसीको मगधका सिंहासन दिया जाय। यह निश्चय होते ही अचानक यह घटना उपस्थित हो गई। कुमारोंके सत्यकी कसौटी करनेका अमूल्य अवसर भी हाथ लग गया।

महामन्त्रीने पुनः कुमारोंको सूचित किया कि "राजकुमारो! महाराज इस समय रोगशय्यापर लेटे हुए हैं। अतः इस अवसरसे लाभ उठानेके लिये कोई शत्रु राजगृहीको हथियानेके लिये चढ़

आया है। इसलिये आपलोग सेना लेकर उसका सामना करो और उसे मार भगाओ! मगधका राज-मुकुट पानेका आपलोगोंके लिए यह अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ है। अतएव इसे व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए। संसारमें ऐसे अवसर बारम्बार प्राप्त नहीं होते। शत्रुओंका सामना करके नगरकी रक्षा करो। नागरिकोंको भय-संकटसे मुक्त करो। महामन्त्रीकी बात सुनकर सभी राजकुमार आपसमें घुस-पुस करने लगे। कितने ही कुमारोंने तो युद्धकी बात सुनकर राजमुकुट पानेकी आशा ही छोड़ दी। कुछ शर्मके मारे उठे और महाराजके चरणोंमें प्रणाम करके बोले :—"पिताजी! हम शत्रुका सामना करके प्रजाकी रक्षा करेंगे।"

इसके बाद सेनाको साथ लेकर वे नगरसे बाहर निकले, और रणभेरी द्वारा युद्ध घोषणा भी हुई अनन्तर वे उन दूतोंके बताए हुए मार्गसे आगे बढ़े कि लगभग नगरके निकट आ पहुँची हुई सेना आगे बढ़ती दिखाई दी। वे घुड़सवार सुभट एवं तीर कमानवाले भील मेघके समान श्याम वर्णवाले जीते जागते राक्षसों जैसे ही दिखाई देते थे; जो किल-कारी करते हुए इधर-उधर उछलते-कूदते दिखाई

देते थे। अकेले उन भीलोंकी संख्या ही सवालाख थी। उनके सिवाय घुड़सवार और अन्य वीरोंकी संख्या अलग ही थी। अतः उस विशाल सेनाको देखकर युद्ध करनेके लिये आये हुये कुमारोंका रहा-सहा गर्व भी नष्ट हो गया। उनमेंसे कोई तो नगरकी ओर वापस लौट पड़े। कुछ इधर-उधर भाग दौड़ करने लगे। फलतः कुमारोंकी यह दशा देखकर सेनाकी हिम्मत टूट गई।

उधर अपने सामने सेना आती हुई देखकर नगरकी ओर बढ़ते हुये श्रेणिकके सुभट चकित हुये। उन्होंने श्रेणिकको यह समाचार सुनाया। उसे भी सेनाको आते देखकर आश्चर्य हुआ। उसने बारीकीसे पता लगाया कि मुझसे लड़नेके लिये कौन आ रहा है? इतनेहीमें श्रेणिकके सुभटों और भीलोंने सामने आई हुई सेनापर आक्रमण कर दिया। मार-काट आरम्भ हो गई।

उस दशामें श्रेणिकको समय खोना उचित न जान पड़ा; अतः उसे जैसे भी हो सके शीघ्रतासे पिताके सम्मुख उपस्थित होना आवश्यक था। उसे जान पड़ा कि कदाचित् यह उपद्रव अन्य भाइयोंका हो! किन्तु इतने ही में वह सेना इधर-उधर भागती दिखाई दी। साथ ही भयके मारे त्रस्त हुये कुमार भी भागते दिखाई दिये। फिर भी श्रेणिकके वीर सिपाहियोंने उनका

पीछा करके कईको पकड़ लिया ; किन्तु श्रेणिक कुमारके लिये तो वह समय अमूल्य ही था ; अतः तत्काल नगरके किनारे पहुँचकर उसने वहाँ छावनी डालनेका आदेश दिया और अपने पवनवेगी घोड़ेपर सवार होकर नगरकी ओर प्रस्थान किया। राजगृहके प्रवेश द्वारमें होकर वह सीधा राजमहलकी ओर चला। इतनेही में राजदूतोंने आकर महाराजको वधाई दी। तत्काल ही श्रेणिक कुमार भी आ पहुँचा और गढ़के द्वार पर पहुँचकर घोड़ेसे उतरनेके बाद राज-महलकी सातवीं मंजिलपर पहुँचकर उसने बड़े ही विनयपूर्वक पिताके चरणोंमें प्रणाम करके सबको चकित कर दिया।

—०—

पच्चीसवाँ परिच्छेद

मगधका राजमुकुट

—: : ❀ : :—

श्रेणिक कुमारको देखते ही सारा शोक आनन्दमें परिवर्तित हो गया। साथ ही महाराज भी ऋद्धि-

सिद्धि सहित श्रेणिकको आया देखकर आनन्दमग्न हो गये। अशक्त एवं रोग ग्रस्त महाराजने मधुर दृष्टिसे चरणोंमें पड़े हुए श्रेणिकको देखकर ममताके साथ उसके मस्तकपर हाथ रखा। उन्होंने कहा:—"पुत्र! तू आ गया, यह अच्छा ही हुआ! अन्तमें तू आ ही गया!"

चरणोंमें पड़ा हुआ पुत्र पिताकी इस प्रकार जर्जर अवस्था देखकर एकदम दुःखित हो उठा। उसने दुःख भरे शब्दोंमें कहा:—"पिताजी! आपकी ऐसी दशा होते हुए भी मैंने आनेमें देर करके बड़ी भूल की। आपका आशय न समझकर बाल चापल्य वश आपको एवं मातृभूमिको छोड़, मैं विदेश चला गया। यह मुझसे दूसरी भूल हुई। पुत्र होते हुए भी मैंने आपको दुःख देनेका ही कार्य किया है। माता-पिताकी भक्ति रहित पुत्र तो संसारमें जीते हुए भी मरेके ही समान हैं। मेरे निन्यानवे भाइयोंको धन्य है कि जो निरन्तर आपकी सेवाका लाभ उठा रहे हैं। अन्यथा मेरे जैसे पुत्र तो पिताके लिए भार रूप ही हो सकते हैं। पिताजी! मेरे मन्द भाग्यने ही मुझमें यह कुमति उत्पन्न की और मुझसे स्वदेशका त्याग कराया। सच्चा पुत्र तो वही

है जिसने माता-पिताकी सेवा द्वारा अपना जीवन सफल किया है। अरे! माता-पिताका उपकार पुत्रपर कुछ ऐसा वैसा नहीं होता। फिर भी नवीन युवावस्थाकी उद्दंडताके वश वे उस उपकारको भूलकर स्वेच्छाचारी बन जाते हैं। इतना ही नहीं, वरन् माता-पिताके लिये दुःख एवं चिन्तारूप हो जाते हैं। धिक्कार है ऐसे कुपुत्रोंको! पिताजी! पिताजी!! मैं भी इसी प्रकार आपके लिये दुःखरूप हुआ और आपकी सेवासे वञ्चित रहा।"

श्रेणिकको पश्चात्तापसे आँसू बरसाते हुए देखकर प्रसेनजित राजाने धीमे स्वरमें कहा:—"पुत्र! तू किस लिये दुःखी हो रहा है! इतना होनेपर भी तू समय पर आ गया, यह अच्छा ही हुआ। तेरा आगमन ही तेरी उत्कृष्ट भक्ति बतला देता है। पराभव होनेपर भी तेरे मनमें उसके विषयमें कोई विचार न होना और विनम्र शिष्यकी तरह भक्तिमान बने रहना; यह तेरी कम भक्ति-भावनाका सूचक नहीं है। तुझपर मेरी नाराजगी होते हुए भी मेरी आज्ञाको तूने शिरोधार्य किया है।"

पिताके मन्दस्वरमें उच्चारण किये हुए आश्वासन जनक वचनोंको सुनकर श्रेणिकका हृदय भर आया।

उसने गद्-गद् कण्ठसे निवेदन किया :—"पिताजी! आपके आशयको न समझकर मुझ मन्द बुद्धिने उसे अपना अपमान समझा और रूठकर विदेश चला गया; इसमें मेरी कौनसी भक्ति हो सकती है? आप मेरे दोषोंको न देखते हुए केवल स्नेहके सद्भाववश ऐसा कह रहे हैं। सद्भाग्य होनेपर ही संसारमें स्वामीकी मधुर दृष्टि पड़ती है। अतः मुझपर हुई कृपाका ही यह परिणाम है!

महाराजने श्रेणिकको उठाकर अपने पास बिठाया। उसे देखकर उन्हें परम संतोष हुआ। अपने निन्यानवे पुत्रोंकी निर्बलताका महाराजको विश्वास हो चुका था और आज ही फिर उसकी परीक्षा हो जानेसे महाराजको प्रतीत हुआ कि निश्चित ही श्रेणिक मगधका शासन कर सकेगा। श्रेणिककी शक्तिका परिचय मिल जानेसे अब किसी भी पुत्रको उसके विरुद्ध खड़ा होनेका साहस न होगा। इस विश्वासके कारण वे निश्चिन्तसे हो गये। उन्होंने कहा :—"पुत्र! तेरे समान पुत्र माता-पिताके प्रति ऐसा भक्तिभाव रखें यही उत्तम है, किन्तु तू जहाँ भी गया, वहाँसे तूने अपने कुशल समाचार नहीं भिजवाये! वह तो देवनन्दी सार्थवाह जब यहाँ आया, तभी पता लगा कि तू वेना-

तट नगरमें सुखपूर्वक है। विधाता जो कुछ करता है अच्छा ही करता है। अन्यथा हमें तेरा कैसे पता लगता? और इस प्रकार आकस्मिक मिलाप भी कैसे हो सकता था? तेरे जानेके बाद तेरी खोज करानेमें हमने कोई कसर नहीं रखी; किन्तु फिर भी तेरा कोई पता या समाचार हम नहीं पा सके। हमारा वह उद्योग तो व्यर्थ गया ही। फिर भी दैवकी इच्छासे ही घर बैठे हमें तेरा समाचार अनायास उस सार्थवाह द्वारा मिल गया और उसके बाद देरसे ही क्यों न हो; तू भी आगया? यह सब अच्छा ही हुआ। देख तो सही; ये सब कितनी आतुरतासे तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं?"

"पिताजी! वह देवनन्दी सार्थवाह तेजंतुरिके लिए बेन्नातटनगरमें हमारे घर आया था। उसने मुझे पहचान लिया था; इसीलिए उसने आपको मेरा समाचार सुनाया होगा; किन्तु नगरमें प्रवेश करते समय मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मेरे सामने लड़नेके लिए सेना खड़ी हुई है। इसीलिए मेरा कुछ समय तो अपना मार्ग ठीक करनेमें लग गया और इसीसे इतनी देरी हुई; किन्तु मेरा सामना करनेके लिए सेना क्यों और कैसे भेजी गई थी?"

श्रेणिककी बात सुनकर महामन्त्रीने उसका स्पष्टीकरण किया। फलतः उसने अपने भाइयोंको बन्धन-मुक्त कराया। इस प्रकार उनके राज्य प्राप्तिके मनोरथ व्यर्थ हो गये। उन सब कुमारोंने आकर श्रेणिकको प्रणाम किया और उसके तेज एवं पराक्रमको देखकर सब आश्चर्यचकित हो गये।

श्रेणिकके बल-पराक्रमसे महाराज एवं सभी सम्बन्धीजनोंको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। कुछ विरोधियोंको अवश्य बुरा लगा; किन्तु उसमें उनका वश ही क्या चल सकता था? श्रेणिकके आगमनका समाचार वायु-वेगकी तरह सारे नगरमें फैल गया और सर्वत्र आनन्द मंगल छा गया। पिताका आशीर्वाद पानेके बाद श्रेणिकने अपनी माताको प्रणाम किया। अन्य माताओंके चरणोंमें भी उसने मस्तक नवाया। पुत्रको देखकर स्नेह-वत्सल माताके नेत्रोंमें हर्षाश्रु उमड़ पड़े। नगरकी जनताने भी बड़ा ही महोत्सव मनाया। इस प्रकार कुछ क्षण पूर्व उदासीनताके समुद्रमें डूबी हुई राजगृही नगरी हर्षकी लहरोंमें तैरने लगी! विधाताकी कैसी विचित्रता है!

महाराजने श्रेणिकसे कहा:—"हे पुत्र! जिस कारणके लिये मैं तेरे आगमनकी आतुरताके साथ प्रतीक्षा

कर रहा था; मेरी उस इच्छाको पूर्णकर, तू मुझे संतोष प्रदान कर! जिससे कि मैं एक बहुत बड़ी चिन्तासे मुक्त हो सकूँ और एक चित्तसे आत्म-ध्यानमें मग्न रहकर अपना आत्म कल्याण कर सकूँ।"

"आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। ऐसी वह कौन सी सेवाभक्ति या अभिलाषा है जिसे पालन कर मैं कृतार्थ हो सकता हूँ? पिताजी! कहिये, आपकी क्या आज्ञा है?"

"पुत्र! यह राज्यचिन्ता मेरी आत्म-साधनाके मार्गमें बाधक हो रही है। अतएव यह राज मुकुट धारणकर तू मुझे इस चिन्तासे मुक्त कर दे। मगधके राज्यभारको तू ग्रहण कर!"

"पिताजी! मैं तो तुच्छदासकी तरह केवल आपकी सेवा ही करना चाहता हूँ। आप चिरकाल पर्यन्त इस साम्राज्यको भोगें। धर्मके प्रभावसे आपकी व्याधि शीघ्र दूर होगी।"

"उस धर्मकी साधनाके लिये ही तो मैं अब निश्चिन्त होना चाहता हूँ। इसी प्रकार जो योग्य हो उसका सम्मान करना चाहिये। अतएव अब तू मेरे लिए धर्म साधना करनेमें सहायक हो! भक्ति-मान पुत्रका यही लक्षण होता है कि, वह पिताकी

आज्ञाको स्वीकार करे। धर्म-साधन करनेमें पिताके लिये वही सब प्रकारकी सुविधा कर देता है।"

"पिताजी ! मुझसे जो कुछ हो सकती है, वह सेवा करनेके लिए मैं तैयार हूँ। कहिये, मैं आपकी सेवा किस रूपमें कर सकता हूँ ?"

"इस राजमुकुटको अपने मस्तकपर धारण करके।"

"यह तो मेरे स्वार्थकी बात हुई! आप मेरे निन्यानवे भाइयोंमेंसे किसीको भी यदि यह मुकुट प्रदान करेंगे तो मैं उसमें बाधक नहीं होऊँगा। मैं हर समय नम्र सेवककी भाँति आपकी सेवा करूँगा। इससे अधिक मुझे क्या चाहिये ?" इस प्रकार हाथ जोड़कर श्रेणिकने निवेदन किया।

"मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे तुझे मानना ही चाहिये। जो जिस योग्य होता है उसे वही सम्मान देना उचित कहा जा सकता है। शक्तिसे अधिक संसारमें किसीको कुछ भी नहीं मिलता और यदि मिल भी जाता है तो वह टिक नहीं पाता। अतएव प्रकृतिने जिसके भाग्यमें जो कुछ लिख दिया है, वही उसे प्राप्त होता है। सो तुझे भी पिताकी आज्ञा मानकर पितृभक्तिका परिचय देना चाहिये। भक्तिमान पुत्र पिताकी कैसी भी आज्ञा

क्यों न हो, उसकी कदापि अवहेलना-निरादर नहीं करते। पूर्वकालमें भी रामचन्द्रजी ने पिताके वचनकी रक्षाके लिये चौदह वर्षका वनवास स्वीकार किया। अतः जब भी पिताकी जैसी आज्ञा हो उसे स्वीकार करना ही भक्तिमान पुत्रका लक्षण माना गया है।"

पिताकी आज्ञाके सम्मुख श्रेणिक विवश था। उस आज्ञाको पालन करनेके लिये मन्त्रियोंने भी अनुमोदन किया। सभी लोग उस आज्ञाका पालन करनेमें प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे। भाग्यलक्ष्मी उसके लिये अनुकूल प्रतीत हो रही थी। मार्गमें आते हुए शुभ शकुनोंका उसे अब स्मरण हुआ। राजगृहीके प्रवेश द्वारपर गाय, मयूर, श्वान, चाषपक्षी आदि जो-जो दाहिनी ओर जाते हुए दिखाई दिये थे, उन सब मङ्गलमय शकुनोंसे प्रसन्न होता हुआ श्रेणिक पिताके चरणोंमें आकर उपस्थित हुआ था।

उसे अब ज्ञान हुआ कि वे सब शकुन मगधका राजमुकुट प्रदान करानेके ही सूचक थे। पूर्व जन्मके घनिष्ट पुण्यकर्मका यह फल उदय होनेके लिए अधीर हो रहा था। इसीलिए समस्त राजगृही आज उसके अनुकूल हो रही थी। पिता उससे राजमुकुट स्वीकार करनेका आग्रह कर रहे थे। सब-

लोग इस प्रस्तावका समर्थन भी कर रहे थे। अतः उसने कहा :—"पिताजी ! आपकी आज्ञा मुझे शिरसा-मान्य है। मैं बीचमें व्यर्थकी दलीलें देकर आपको परेशान करना नहीं चाहता। आप अपनी इच्छा-नुसार व्यवहार करनेके लिये स्वतन्त्र हैं।" इस प्रकार पिताके कथनका श्रेणिकने तत्काल ही अनु-मोदन किया।

महाराजने महामन्त्रीकी ओर देखकर कहा :—"प्रधानजी ! ज्योतिषियोंको बुलवाकर राज्याभिषेकका मुहूर्त निकलवाइये ! श्रेणिकके राज्याभिषेककी तैयारी कीजिये।"

ज्योतिषियोंको बुलवाकर शीघ्रसे शीघ्र निकलने-वाला अच्छा मुहूर्त निश्चित किया गया। इसके पश्चात् बड़े समारोहके साथ एक शुभ दिवस युवराज श्रेणिकका राज्याभिषेक भी सम्पन्न हो गया। प्रजाने अत्यन्त उत्साहसे उसमें भाग लिया। सारे ही नगरमें आनन्द मङ्गल मनाया गया और आठ दिनोंतक वह उत्सव चलता रहा। युवराज श्रेणिक अब युवराज नहीं वरन् मगधराज श्रेणिक हो गये। राजगद्दीपर बैठनेके पश्चात् वह भम्भासारके नामसे इतिहासमें प्रसिद्ध हो गया; किन्तु ऐतिहासिक परम्पराने उस

नामको बदलकर भम्भासारके बदले बिम्बिसार कर दिया। फिर भी वह बिम्बिसार यथार्थमें यह मगध राज श्रेणिक ही था!

राज्याभिषेककी विधि समाप्त हो जानेके पश्चात् उसी अवस्थामें उस राजमुकुटको श्रेणिकने पिताके चरणोंमें रखते हुए अत्यन्त विनयपूर्वक प्रणाम किया। उसे देखकर पिताके हृदयपरसे एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

स्वर्गके मार्गपर

—::❀::—

पिताने अपने चरणोंमें नमन करते हुए पुत्रको आशीर्वाद दिया। श्रेणिकके साथ आये हुए मंत्री-गण एवं सामन्त मण्डल तथा भाई बन्धु एवं नाग-रिकोंने भी महाराजको वंदन किया। नवीन राजाको देखकर महाराजकी दृष्टि स्थिर हुई। उन पुत्र वत्सल

पिताने राज्यधर्मका किंचित परिचय देना आरम्भ किया। राजाके नाते प्रजाके साथ किस प्रकारका वरताव करना चाहिये, यह समझाते हुए कहा :—"कुमार! दीर्घकाल पर्यन्त प्रजांपर निर्विघ्न शासन करनेवाले राजाके लिये पैदल सेनातकको भी अपने ही समान समझना चाहिए। शत्रुके साथ युद्ध करके विजय प्राप्त करनेमें यदि यह सेना असन्तुष्ट हो तो राजाका कार्य कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जिस प्रकार वागुर (वाड़) के विना क्षेत्रकी रक्षा नहीं हो सकती; उसी प्रकार इन पैदल सैनिकोंके विना भी राज्यकी रक्षा हो सकना क्योंकर संभव है ?"

"इसी प्रकार मन्त्री आदि अधिकारी वर्गको भी सदैव प्रसन्न रखना चाहिए। जिससे कि वे उदास होकर राज्य-कार्यकी उपेक्षा न कर सकें। राजा और प्रजा दोनोंके हितकी चिंता-पूर्वक रक्षा करने वाले तो मन्त्रीलोग ही होते हैं; क्योंकि मंत्रियोंके द्वारा ही राज्यकी व्यवस्था सुरक्षित रह सकती है। इसी प्रकार प्रजाको पुत्रकी तरह पालन करनेकी चिन्ता राजाको रखनी चाहिए; जिससे कि वह पुराने राजाको याद न करने लगे। दुर्जन, शठ, एवं धूर्त पुरुषोंको दंड देकर सज्जन, संत और साधुजनोंकी

तू सदैव रक्षा करना। गरीब, अनाथ, दुःखी, अशक्त जनोंकी सहायता करके उनके आशीर्वाद ग्रहण करना। न्यायको प्रधान समझते हुए प्रजाको परेशान (त्रस्त) न करना, और उनके मार्गकी कठिनाइयोंको दूर करना। अपनी जनतामें विद्या, कला, उद्योग आदि बढ़ानेके लिए दिन-रात प्रयत्न करना; क्योंकि जिस राजाके राज्यमें प्रजा न्यायी, सुखी और उद्योगी होती है; उसे उन्नति क्रममें आगे बढ़ते हुए देर नहीं लगती। साथ ही प्रजाकी उन्नतिमें ही राजाकी भी उन्नति रहती है।" इस प्रकार राज्यधर्मके कर्त्त-व्योंका संक्षेपमें नये राजाको परिचय कराया और नवीन राजाने भी पिताके उन अमृत समान उप-देशोंको ग्रहणकर प्रसन्नता प्रकट की।

नये राजाको उपदेश देनेके पश्चात् महाराजने मंत्रिमण्डलकी ओर दृष्टि डाली; क्योंकि एक ओर मंत्रिमण्डल एवं सामन्तगण भी हाथ जोड़े खड़े हुए थे। महाराजने समझ लिया था कि अब मैं थोड़े ही समयका मेहमान हूँ। अतएव अन्तमें दो शब्द मन्त्री, सामन्त आदि मुख्याधिकारियोंसे कह देना भी उचित है। अतः उन्होंने कहा :—"आज तक मैंने आपलोगोंका अत्यन्त स्नेह और भक्ति-

भावसे परिपालन किया है। अनेक अवसरोंपर मैंने आपके प्रति आत्मीयता एवं दया-भावना भी वर्ती है। अतएव जिस प्रकार आपलोग मेरे प्रति विनयशील रहे हैं और मेरी आज्ञाको प्रभुकी आज्ञाके समान समझकर उसको मान्य करते रहे हैं; उसी प्रकार अब अपने नये राजाकी आज्ञाको भी प्रत्येक अवसर पर सविनय पालन करना और किसी भी दशामें आज्ञाभंगका अवसर उपस्थित न होने देना; क्योंकि प्रचण्ड तेजको धारण करनेवाला सूय जैसे अन्धकारको कदापि सहन नहीं कर सकता। उसी प्रकार नया राजा भी आपके अपराधोंको नहीं सह सकेगा।"

इसके बाद पिताको प्रणाम करके श्रेणिकने अपनी माताको नमन किया। तत्पश्चात् अपनी अपर सौतेली माताओंको भी प्रणामकर आशीर्वाद लिया। उस समय अनेक प्रकारके मङ्गलवाद्य बजने लगे। स्त्रियाँ धवल गीत गाने लगीं। नये राजाकी सवारी नगरमें निकली और रथशाला तक जाकर वापस लौट आई। आठ दिनों तक यह महोत्सव चलता रहा। राजकीय भोजनशालासे अनेक प्रकारके मन चाहे भोजन मिलते रहनेसे समस्त नागरिक

अपना काम-धंधा छोड़कर इस मंगलमय प्रसङ्गमें आनन्द पूर्वक भाग लेने लगे।

राजगृहीके महोत्सवके दिन व्यतीत हो गये। श्रेणिकने अपने बन्धुओंको उनके अधिकार पुनः प्रदानकर अपने-अपने पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। राज्यमें जो भी सुधार या वृद्धिके कार्य करना उचित जान पड़ा; उनको संपन्न किया। प्रधानोंके पद पर नियुक्तिके लिए उसने योग्य व्यक्तियोंकी खोज करना आरम्भ किया और उन लोगोंकी बुद्धिकी परीक्षा करनेके बाद ही मंत्री-पदपर नियुक्ति की जाने लगी; क्योंकि राज्यका विस्तार और उसकी रक्षा मंत्रियोंके बुद्धि-बलपर ही आधार रखती है। उस भिल्लनायकको भी मुक्तकर अपनी आज्ञाका पालन कराते हुए उसका देश उसे वापस सौंप दिया, किन्तु अपनी पराजय होनेके कारण लज्जित हुए उस भिल्लराजने अपने पुत्रको शासन सौंपकर तापस वेश धारणकर लिया और अनेक प्रकारके जप-तप करके उसने आत्म-कल्याणका मार्ग साधन किया।

इस प्रकार श्रेणिक बिम्बिसार (भंभासार) ने राज्य-कार्यमें परिवर्तन कर अपनी बुद्धि एवं शक्तिके अनुसार और भी अनेक प्रकारके सुधार किये।

इसी प्रकार जिन-जिन सामन्तोंने उसकी आज्ञाका अनादर किया ; उन्हें अपनी शक्तिका चमत्कार दिखाकर अनन्य सेवक बना लिया। शत्रुओंका भय दूर करके राज्यकी व्यवस्थाके लिए पितासे भी अधिक सुविधाजनक प्रबन्ध करके प्रजाकी सुख-सुविधा एवं शान्तिमें पूर्ण रूपसे वृद्धि की।

इसी बीचमें महाराज प्रसेनजितकी बीमारी बहुत बढ़ गई ; किन्तु अपने मस्तकपरसे शासनका भार उतर जानेके कारण वे निश्चिंत होकर एकान्त जीवनमें यथाशक्ति अपने समयको धर्म-ध्यानमें व्यतीत करने लगे। प्रभु भक्ति, सामायिक, प्रतिक्रमण, पठन आदिमें लगे रहनेका तो उन्हें रातदिनका अभ्यास था ही। सम्यक्त्व और मूल बारह व्रतोंको भी उन्होंने पहलेही से अङ्गीकार कर लिया था। अब तो वे समस्त उपाधियोंको त्यागकर केवल मोक्ष-मार्गकी ओर ही अपना लक्ष्य रखते हुए धर्मकी आराधना में लगे रहते थे। ऐसी अवस्थामें उनकी बीमारी बढ़ गई ; और मानव जीवनका अन्तिम दिवस भी आ पहुँचा। दीर्घकालकी बीमारी एवं वृद्धावस्थाके कारण उनका शरीर अत्यन्त निर्बल हो चुका था। वह अस्थि-पंजरमात्र रह जानेसे एकदम निस्तेज भी हो गया था।

अतः अन्तिम समय उन्होंने आराधना आरम्भ कर दी। अरिहन्त, सिद्ध, साधु और जिन कथित धर्मकी शरण इस जन्म पर्यन्त अङ्गीकार की। अपने व्रतोंमें प्रमादवश अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार या अनाचारका दोष लगने अथवा जाने-अनजानेमें अन्य किसी भी पापका सेवन हुआ हो; तो ऐसे दुष्कृत्योंकी निन्दाकर बारम्बार क्षमा याचना की। शासन नायक पार्श्वनाथ भगवानका स्मरण करते हुए प्रभुके ध्यानमें—नाम-स्मरणमें अपना चित्त एकाग्र किया। अन्तमें अठारह पापस्थानोंकी निन्दाकर उन्हें भी वोसिराया विसर्जित किया। जाने या अनजानेमें यदि किसीके साथ अपराध हो गया हो तो उन सब जीवोंके प्रति खमत-खामणा—क्षमा याचना की।

मृत्युके समय आराधना की। समस्त क्रियाएँ करके सबसे विदा ग्रहण कर मानों विदेश जाते हों, मिल-जुलकर अलग होनेके साथ उन्होंने श्री पार्श्वनाथ भगवानकी शरण ग्रहण की। उस समय भम्भासार आदि सभी पुत्र पिताके सम्मुख उपस्थित थे। मन्त्रीगण एवं सम्बन्धी जन भी उनका उत्तम मृत्यु प्रसङ्ग देख रहे थे। उनकी त्याग सम्बन्धी एवं अन्तिम समयकी वैराग्यमयी शुभ भावनाका वे सब

अनुमोदन कर रहे थे। एक ओर रानियाँ भी शांति-पूर्वक बैठी हुई थीं। कोई धीरे-धीरे रुदन करती थी तो कोई संसारकी असारताका चिन्तनकर वैराग्यकी सीढ़ी चढ़ रही थी। मोहग्रस्त एवं पितृ-भक्ति वाले पुत्रोंके नेत्रोंसे आँसू टपक रहे थे। भला, मोहके लिए भी अब कोई लज्जाका स्थान हो सकता था? इतनी अवस्थामें भी पिताके परलोक गमनको वे असन्तोषकी दृष्टिसे देख रहे थे। वे उन्हें वृद्धावस्थामें रोगग्रस्त पड़े हुए देखकर चिन्तित थे। यह सब संसारकी विचित्रताके सिवाय और क्या कही जा सकती है?

परमात्माके स्मरणमें अपना समय व्यतीत करते हुए वे पार्श्वनाथ भगवानमें ही लयलीन होकर उन्हींके चिन्तनमें लगे रहते थे। "हे प्रभु! हे पार्श्वनाथ! जगतमें तुम्हारी महिमा अद्भुत है। हे भगवन! हमारे जन्म-मरणके फेरे टालकर अखंड सुखशान्ति वाला शिवसुख हमें प्रदान कीजिये। हमारे कष्टोंको निवारण कीजिये।

तेईस तीर्थंकरोंमें हे पार्श्व प्रभु! आपही सबसे अधिक महिमावाले सिद्ध हुए हैं। आप अनन्त शक्ति-योंके स्वामी एवं समर्थ नायक होते हुए शत्रु पर

दया-दृष्टि रखकर उन्हें भवसागरसे पार किया है। कमठकी शत्रुताका विचार न करते हुए उस उपसर्ग करनेवाले कमठको आपने क्या-क्या प्रदान नहीं किया ? शत्रुभावसे मिलनेपर भी कमठने आपके दर्शनमात्रसे क्या कष्टसे प्राप्त होनेवाला समकित रत्न नहीं प्राप्त कर लिया ?

हे प्रकट महिमावाले ! आपका वंदन, पूजन और कीर्तन करनेसे संसारमें प्राणियोंको क्या-क्या प्राप्त नहीं हो जाता ? यदि प्राणी एक भी नमस्कार श्रद्धा-भक्ति और भाव पूर्वक करता रहे; तो इस लोकके इच्छित पदार्थोंके अतिरिक्त वह परम्परासे संसारके पार उतर सकता है। भक्तजनोंको मांगलिक और कल्याणकी परम्परा प्रदान करने और मिथ्या त्वरूप विषको दूर करनेवाले ऐसे आपकी भवो-भव मुझे शरण प्राप्त हो।

हे आदेय नामकर्मवाले ! हे शासन नायक ! हे जगत् बन्धु विश्ववत्सल ! आपके स्वरूपको समझने वाले पुरुष ही संसारमें धन्य हैं। आपकी शक्ति समझने वाले ही आपकी भक्ति कर सकते हैं। आपकी नामरूप मन्त्र शक्तिसे भी प्राणियोंके घोर पाप नष्ट हो जाते हैं। जो जीव आपके नाम-

रूप मन्त्रका वारम्वार स्मरण करते हैं, वे ही जगतमें भाग्यशाली हैं। उनको सब प्रकारके रोग-शोक दुष्ट ग्रह एवं समस्त आदि-व्याधि नष्ट होकर मनो वाञ्छित फल प्राप्त होता है।

हे भगवन्! आपके दुर्लभ सम्यक्त्वकी तो बात ही अद्भुत है। आपका सम्यक दर्शन देव गुरु और धर्मकी भक्ति एवं श्रद्धा तो चिन्तामणि रत्न एवं कल्पवृक्षसे भी अधिक महिमा वाला है जिस पुरुषने उसे प्राप्त कर लिया; उसका वेड़ तो पार ही हुआ समझना चाहिए; क्योंकि चिन्ता मणि रत्न और कल्पवृक्ष तो केवल इसी जन्ममें सुर दे सकते हैं; अर्थात् परलोक-सम्बन्धी फल देनेक उनमें कोई शक्ति नहीं है, जबकि आपके सम कित रत्नकी प्राप्तिसे तो जीव इस लोकमें सुर सामग्री प्राप्त करनेके अतिरिक्त परलोकमें भी अत्यन्त आश्चर्यकारी इन्द्र उपेन्द्रादि पदवियाँ और परम्परा तीर्थंकर पद प्राप्तकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त करत है। इस प्रकार आपके समकित रत्न प्राप्त करनेवालोंकि कहाँ तक प्रशंसा की जाय? उस दुर्गतिमें जाने वाले नागको भी मरते-मरते दर्शन देकर आपने नागेन्द्र (नागकुमार निकायका इन्द्र-धरणेन्द्र) बन

दिया, आपकी उस शक्ति, माहात्म्य और प्रभावका हम कैसे वर्णन कर सकते हैं? महान इन्द्रके भी गुरु वृहस्पति जब आपके गुणोंको गिननेमें असमर्थ हो जाते हैं, तब हम जैसे सामान्य शक्तिवाले मनुष्योंकी क्या गणना?

उन शासन-नायककी भक्ति, उनके ध्यान एवं नाम स्मरणमें एकाग्र चित्तवाले उस नरश्रेष्ठको देखकर उसकी राज्यशक्ति और धर्मध्यानमें लीन होनेकी शक्तिसे चकित हो जानेवाली एवं नित्य नव यौवनवाली देवबालाएँ वरमाला लेकर स्वर्गसे उसे वरण करनेको चलपड़ीं और आकाशमें खड़ी होकर उस वरमाला-द्वारा हाव-भावके साथ अपना स्वामी बननेके लिए प्रार्थना करने लगीं—ललचाने लगीं; किन्तु अनेक देवबालाएँ उस नरोत्तमको वरण करनेके लिये आतुर होनेसे वह उत्तम पुरुष उन्हें निराश न करते हुए उनके उत्संग गोदमें क्रीड़ा करनेके लिये इस लोकसे विदा हो गया; चिर-काल-पर्यन्त उपभोग करनेपर भी अक्षय रहनेवाली स्वर्ग लक्ष्मीको भोगने चला गया। वे गये सो; चले ही गये! भला, देवाङ्गनाओंके मोहजालसे कोई छुट सका है कि जिससे यह पुरुष भी उस बंधनको

तोड़कर अपने पुत्रादिको समाचार देने आता ? अनेक देवाङ्गनाओंके बाहु पाशमें पड़े हुए उस नरोत्तमको अब हम उसके सुखमें बाधा न डालकर उस परम आनन्दमें ही निमग्न रहने देना चाहते हैं ; किंतु उनके जानेके बाद यहाँ क्या हुआ उसे तो आप जानते ही हैं न ?

—०—

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

सुसेना

—: : ❀ : :—

पहलेकी घटना घटित होनेके पश्चात् बीचमें कुछ समय व्यतीत हो गया। मगधराज श्रेणिकका राज्य सानन्द चलते रहनेके कारण वे सुख-शांति एवं प्रियाओंके विलासमें अपना समय व्यतीत करते थे। कितनी ही सुन्दर राजकुमारियोंको अपनी स्त्रियें बना डाली थीं फिर भी पूर्णतृप्ति न होनेसे वे अपनी स्त्रियोंकी संख्या बढ़ाते ही जा रहे थे। उनके रूपपर मुग्ध हो

जानेवाली अनेक राजकुमारियोंने उन्हें अपने स्वामीके रूपमें स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार उनके स्नेह-वश अधीन बनी हुई राजकुमारियोंके सुखमें महाराजके लिये क्या कमी हो सकती थी?

एकदिन मगधराज घोड़ेपर सवार होकर शिकारके लिये जङ्गलमें निकल पड़े; किन्तु वे किसी दिव्य पुरुषके साथ थोड़े ही समयमें वापस लौट आये। मगधराजने उन नये अतिथिकी अत्यन्त भक्तिभावसे सेवा-चाकरी की। मगधराज द्वारा उनका इस प्रकार सम्मान होता देखकर सबने समझ लिया कि अवश्य ही वे कोई महापुरुष होंगे; किन्तु उन सबमेंसे केवल एक व्यक्तिकी दृष्टि उसपर जम गई। वह एक-टकी लगाये बारम्बार उस पुरुषको देखती ही रही।

वह दिव्य पुरुष विद्याधरोंका स्वामी महाबल नामका विद्याधरेन्द्र था। वह मगधराज श्रेणिककी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली एवं बड़ा ही वैभववाला था। फिर भी किसी पूर्व संचित संबंधके कारण श्रेणिकसे उसकी मित्रता हो गई थी। अतएव आज वह अचानक अतिथि बनकर आनन्द अनुभव कर रहा था। उस उत्तम एवं रूप सम्पन्न अतिथिको

अनिमेष नेत्रोंसे देखनेवाली व्यक्ति मगधराज श्रेणिककी छोटी बहन सुसेना ही थी। प्रथम दर्शनसे ही सुसेनाके हृदयमें अभिनव उर्मियाँ उभरा रही थीं। क्या पता कि वह बाला अब क्या उत्पात मचाना चाहती थी?

वह सतरह वर्षकी सुसेना तीसरे पहरमें अपनी सखियोंके साथ उद्यानमें खेल रही थी। फिर भी उसका मन उस खेलमें नहीं लग रहा था। वह खेलसे विरक्त होकर वारम्बार विचार मग्न हो जाती थी। उसकी यह दशा देखकर सखियाँ भी विचारमें पड़ गई। वे उससे मनकी बात पूछने लगीं; किन्तु गरीब बेचारी सुसेना उनके सम्मुख क्या स्पष्टीकरण कर सकती थी? क्योंकि इस प्रकार मनकी बात सहज ही कैसे किसके सम्मुख प्रकट की जा सकती हैं? किस घड़ीमें उस विद्याधरके दर्शन हुए कि तभीसे इसके मनमें बेचैनी पैदा हो गई है। उसके सुन्दर सुडौल शरीरको वह बाला एक टकसे निरख रही है, किन्तु यह बात सखियोंसे कैसे कही जा सकती है? कहती है तो उसकी हँसी होनेके साथ ही प्रतिष्ठामें भी हानि पहुँचती है!

उसकी इस प्रकारकी दशा देखकर उस मानिनी

राजकुमारीका हँसी मजाक न करते हुए वे सभी सखियाँ एक-एक करके वहाँसे चल दीं। सुसेनाने भी उनकी पर्वाह नहीं की; क्योंकि इस समय उसे भी एकान्तकी ही आवश्यकता थी। खेलती हुई बाला सुसेना लताकुंजके पास आकर एक सुन्दर आसनपर बैठ गई और पुष्पमाला गूँथने लगी; किन्तु इसके पूर्व उसने उन पुष्पोंको बावलीके जलसे धो लेना उचित समझा। अतएव वह बावलीकी ओर चल दी।

विद्याधरपति महाबल उस समय राजप्रासादके पिछले भागमें खड़ा हुआ उस बगीचेकी अलौकिक शोभा निरख रहा था। बागीचेकी मनोहर रचना स्वच्छता एवं लताकुंज आदिको देखकर वह अपनी उमंग पुरी करनेकी इच्छा से तत्काल बगीचेकी ओर चल दिया। अनेक प्रकारके जाई-जुही, गुलाब, मोगरा, चम्पा, चमेली, मालती आदिके पुष्पोंकी सुगन्धसे प्रसन्न होकर वह क्रमशः उस बावलीके पास आ पहुँचा; किन्तु बावलीमें दृष्टि डालते ही वह सहसा चौंक पड़ा। उसने देखा कि 'यह तो कोई नाग कन्या है या पाताल कन्या है? परन्तु यह क्या कर रही है? कहीं ऐसा न हो कि यह मुझे देखते

ही पाताललोक चली जाय!' इसलिये वह गुप-चुप खड़ा रहकर उसे देखता रहा।

उधर इसकी मानी हुई नागकन्या वावलीके जलसे पुष्प धोकर हंसगामिनी-गजगामिनी गतिसे हँसती-मुसकुराती वावलीकी सीढ़ियोंको पवित्र करती हुई ऊपर आई तो एक वस्तुपर दृष्टि पड़ते ही वह वाला सुसेना वहीं पर खड़ी हो गई और जानते हुए भी अचानक उसके मुखसे निकल पड़ा कि "आप कौन हैं? महानुभाव!"

उत्तरमें उसने सुसेनासे पूछा कि :—"तुम कौन हो! नाग कन्या हो या पाताल कन्या? वह पुरुष उस वालाकी ओर एक टक देखता रहा। वास्तवमें ऐसा रूप-सौन्दर्य तो केवल नाग कन्याओंका ही हो सकता है!"

"अच्छा! यह वात है!" यों कहते हुए वाला सुसेना मुसकुराई। उसने पूछा :—"तब तो आपको नाग कन्याएँ अधिक प्रिय लगती होंगी!"

"किन्तु अब तो मैं नागकन्याओंसे बहुत डरता हूँ।" उस पुरुषने हँसते हुए कहा। उस हास्यमें प्रसन्नता थी और मृदुता एवं स्नेह झलक रहा था।

"डरनेका कारण? किन्तु आप तो भयभीत हो

जानेवाले प्रतीत नहीं होते।" बालाने अपनी आँखें नचाते हुए कहा :—

"उन नागबालाओंको मनुष्योंका संसर्ग नहीं सुहाता! मनुष्योंके पैरोंकी आहट पाते ही वे पातालमें उतर जाती हैं। वे देखनेवालोंकी दृष्टिको निराश कर देती हैं; तुम चली मत जाना।"

"किन्तु मैं नागकन्या होऊँ, तब तो?"

"तब तुम कौन हो?"

"मैं? तो क्या आप मुझे नहीं पहचानते?" बालाके सब भाव जादूसे भरे थे।

मैंने तुम्हें देखा नहीं था, और मैं देखता भी कहाँसे? अभी पातालमेंसे तो तुम बाहर निकल ही रही हो! जरा बतलाओ कि तुम किस लोकमेंसे आ रहो हो?" महाबलने पूछा :—

"मनुष्य लोकमेंसे! अपने रहनेके महलमेंसे हो बालाने उत्तर दिया।

"तुम मुझे ठगती तो नहीं हो? क्या मानवी हो? किन्तु मनुष्योंमें तो ऐसा सौन्दर्य नहीं होता! अतः या तो तुम नागकन्या हो सकती हो या विद्याधरी हो सकती हो। विद्याधरोंकी कन्याओंमें ऐसा सौन्दर्य हो सकता है!"

"तो क्या आप विद्याधरपति हैं? विवाहित हैं या अविवाहित?" बाला सुसेना पूछते-पूछते फिर शर्मा गई।

"तुम्हारा अनुमान ठीक है। मैं हूँ तो विद्याधरपति ही; किन्तु तुमने अपना परिचय तो नहीं दिया! तनिक बतलाओ तो? तुम कहती हो कि मैं नागकन्या नहीं हूँ और न कोई पातालकन्या ही। तब तुम कौन हो?"

"मैं कौन हूँ?" चञ्चल नेत्रोंसे सुसेनाने पूछा:— आप जिनके घर अतिथि बनकर पधारे हैं, उन्हींको क्या आप नहीं पहचानते? वाह, धन्य है अतिथि महोदय!

"तो क्या तुम श्रेणिकसे कोई सम्बन्ध रखती हो? भला, बताओ कि तुम श्रेणिकके क्या लगती हो?"

वे मेरे बड़े भाई हैं। बालाने कहा:—

"अच्छा! यह बात है? यदि मेरे कहनेपर बुरा लगा हो तो क्षमा करना। मैं विदा होता हूँ। मैं तो तुम्हें नागकन्या ही समझे हुए था।" यों कहकर महाबल चलने लगा।

"जरा ठहरिये, तो सही! आप पातालकन्या पर मोहित हुए जान पड़ते हैं। भला, पातालकन्याके सम्मुख मनुष्य कन्याकी क्या गिन्ती हो सकती है?"

"तब तो तुम श्रेणिककी छोटी बहन हो! ऐसी दशामें तुम्हारे साथ एकान्तमें वार्तालाप करना मेरे लिये शोभा नहीं दे सकता; क्योंकि मैं उसके घरका अतिथि हूँ; और वह मेरा मित्र है। कदाचित् मेरे इस व्यवहारसे उसे बुरा लग जाय तो?"

"बस, यही भय है अथवा और भी कुछ? इस प्रकार बलवान होकर ऐसी साधारण सी बातसे भय खाते हैं? आपसे तो हमही अच्छी हैं!"

"हो सकता है! किन्तु अब मैं जाता हूँ"

"जरा ठहरिये, तो सही!"

"झट्पट् कहदो, तुम्हें क्या कहना है!"

"आप नागकन्याओं पर इस प्रकार मोहित हुए हैं; तो क्या उनके समान मानव कन्याओंमें सौन्दर्य नहीं हो सकता?"

"नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं है। तुम भी उनसे किस बातमें कम हो!"

"मैं क्या नागकन्याके समान सुन्दर तो नहीं हूँ न?"

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

मिलन-मन्दिरमें

—: : ❀ : :—

"नहीं नहीं, तुम इस प्रकार कैसे कह रही हो? तुम्हें देखकर तो नागकन्या भी लज्जित हो जायगी" इस प्रकार विद्याधरने सुसेनाकी प्रशंसा की।

"तभी तो आप मेरे सामनेसे चले जा रहे हो नँ? आपके समान एवं आपकी विद्याधरियोंके समान रूप-लावण्य तो हम मानवी स्त्रियों में कहाँसे हो सकता है?"

"तुम तो बोलनेमें बहुत चतुर जान पड़ती हो! किन्तु यह तो बताओ कि तुम विवाहिता हो अथवा कुमारी?"

"महाबलको भी उसके हावभाव और उसकी वाणीमें मधुर रस प्रतीत होता था। महाबलका प्रश्न सुनकर सुसेना शर्मा गई। भला, इस प्रकार भी कहीं पूछा जाता है? खड़े-खड़े आप थक जायँगे, अतः

तनिक बैठ जाइये! सामनेके आसनपर बैठिये; आपको मेरी सौगन्ध है।

बाला, कोमल काया तो तुम्हारी है। देखो, गुलाबका यह फूल कैसा विकसित हो रहा है और यह किस प्रकार महँक रहा है! आओ, तुम भी तो बैठो!"

"इस गुलाबकी सुगन्ध तो बिना भ्रमरके भी महँक रही है!"

"अच्छा, तो तुम अभी कुमारी हो!" महाबल मुसकुराते हुए संगमर्मरकी कुर्सीपर बैठा।

"क्या कुमारी रहना कोई बुरी बात है? सुगन्धका रसिक कोई भोगी भ्रमर न मिले तो वह भी अच्छा ही है। सभी आपके समान पराक्रमी और भाग्यशाली थोड़े ही होते हैं?"

"अच्छा बतलाओ तो, हम कैसे हैं? क्या तुम्हारी दृष्टिमें हमारा कोई महत्व नहीं जान पड़ता है?"

"महत्व जान पड़ने पर भी क्या हो सकता है? आपलोग हमारी बात क्यों मानने लगे?"

"क्यों न मानेंगे? किन्तु तुम इतनी दूर जाकर क्यों बैठी हो! जरा पास आकर बैठो नँ?"

अच्छा तो आप हमारा वचन माननेको तैयार हैं ! लाइये हाथ और दीजिये वचन ! लेकिन याद रखिये, फिर आप यहाँसे जा नहीं सकेंगे। सोच समझकर वचन दीजिये ! कहीं जालमें उलझ न जायँ ?"

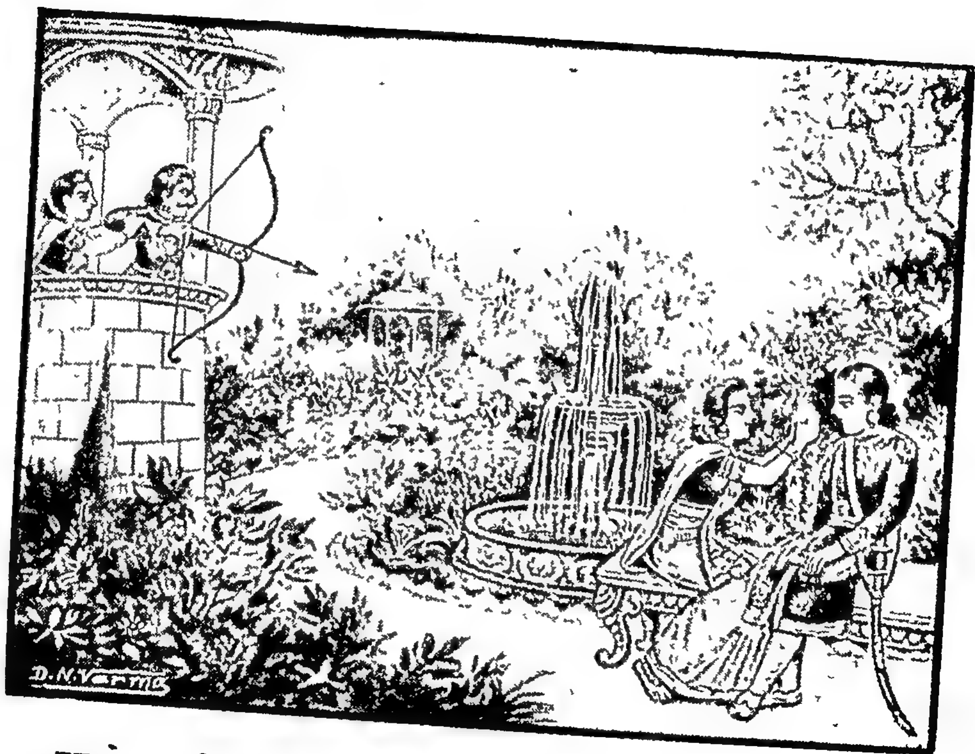
"हाँ ; तो मैं तुम्हें अपना वचन देता हूँ। कहो, तुम क्या कहना चाहती हो ?"

यह सुनते ही बाला सुसेना अपने आसनसे उठकर मन्दगतिसे चलती हुई महाबलके अत्यन्त निकट आकर खड़ी हो गई ; और चञ्चल मदमाती दृष्टिसे उसका रूप-सौन्दर्य एवं प्रभाव देखती रही। हाव-भाव एवं आंतरिक प्रेमकी उमङ्गसे उसका हृदय उमड़ रहा था। "आपको तो स्वीकार है न ? देखना, कहीं हमारा अपमान न कर देना।" यों कहते हुए उसने वह पुष्पमाला महाबलके गलेमें पहना दी ! "लीजिये मेरे देव !"

"अच्छा !" महाबलने भी हँसते-हँसते अपनी दोनों भुजाएँ उस सुकोमल देहलताके आस-पास फैला दीं। "तो फिर तुम्हें हमारे यहाँ कैदी बनना पड़ेगा, तब········?"

प्रियतमके बाहुपाशमें पड़ी हुई सुसेनाने उस मधुर

राजा श्रेणिक



पुरुषने अपनी प्रिया को हटाकर धनुष पर बाण चढ़ाया। पृष्ठ २७५

बन्धनको सहर्ष स्वीकार करलिया। इस बन्धनको दूर खड़ा हुआ एक शूरवीर गुप्त रूपसे देख रहा था। उसे इन दोनोंके प्रति घृणा हो गई। तत्काल ही उसने धनुषपर बाण चढ़ाकर अपने महलके झरोखेसे उस मेहमानको संसारसे विदा कर देनेकी तैयारी की; किन्तु उसके पास खड़ी हुई नवयौवनाने हाथ पकड़कर कहा:—"देखना, कहीं कोई अविचारपूर्ण कार्य न कर बैठना!"

"चुप रहो! दूर हो जाओ! मेरी आँखोंके सामने इस प्रकारका अन्याय नहीं चल सकता! इसे तो दंड देना ही चाहिये।" पुरुषने अपनी प्रियाको हटाकर धनुष पर बाण चढ़ाया।

किन्तु उस नवयौवनाने फिर उसका हाथ पकड़कर कहा:—"प्राणेश्वर पहले मेरी एक प्रार्थना सुन लीजिये! फिर आपकी जो इच्छा हो सो कीजिये।"

"कहो, झटपट कह दो! तुम क्या कहना चाहती हो? ये दुष्टलोग मर्यादाका भङ्ग करें, और मैं खड़ा-खड़ा देखता रहूँ, यह कैसे हो सकता है?"

"प्यारे! अब सुसेना बहन बच्ची नहीं हैं। वे अपना भला बुरा सब समझती हैं! उनके लिए आपको योग्य वरकी कितनी चिन्ता थी? तो

क्या विद्याधर महाबल उनके लिये योग्यवर नहीं हो सकते ? जरा विचार तो कीजिये ! बहुत खोजने पर भी क्या ऐसा योग्य, पराक्रमी और सुन्दर नर आपको दूसरा मिल सकेगा ?"

उस नवयौवनाके शब्द सुनते ही वीर पुरुषके हाथोंसे धनुष-बाण नीचे गिर पड़ा। उसे अपनी प्रियतमाका वचन उचित प्रतीत हुआ।

"हमारी सुसेनाने जान बूझकर ही उन्हें पसन्द किया है। दोनोंने प्रेम-पूर्वक ही परस्पर वरण किया है। अतएव इन अक्षय युगल-जोड़ीका हमें अनुमोदन ही करना चाहिये। किसी प्रकार भी इनका स्नेह भङ्ग नहीं होने दिया जाय ! क्योंकि जो कुछ होता है, अच्छेके लिये ही होता है।"

प्रियतमाके वचनका उस वीर पुरुषने अनुमोदन किया। पाठक समझ ही गये होंगे कि वह वीर पुरुष मगधराज श्रेणिक-बिम्बिसार और उसकी प्रियतमा धारिणी ही थे। "अब मैं इन दम्पतिको बधाई देने जा रही हूँ प्रियतम ?" यों कहकर वह मुसकुराती हुई हरिणीके समान वहाँसे चल दी।

महाबलकी भुजाओंके पाशमें बन्धी हुई सुसेना अपनी प्रियतमकी गोदमें देर तक पड़ी रही। महा-

बलने उसे देखते हुए कहा :—"प्रिये! तेरे सौन्दर्यने मुझे मुग्ध कर लिया है।"

"आप भी कहाँ मुझसे कुछ कम हैं?" सुसेनाने मुसकुराते हुए कहा :—

"किन्तु जरा मेरे सामने तो देखो। तुम्हारे भाई मेरे साथ विवाह करनेकी आज्ञा तो दे देंगे न?"

"जो कुछ होना होगा सो होगा! किन्तु अब तो इस जीवनके लिये आप मेरे हैं और मैं आपकी···।" सुसेना हँसते हुए यों कहकर लजा गई।

"अबकी·········"पीछे खड़ी हुई एक तीसरी व्यक्तिके कोमल शब्द सुनाई दिये; किन्तु अचानक ही उस व्यक्तिके कारण अपनी प्रेमलीलामें बाधा पड़ते देखकर वे युगल शर्मा गये। सुसेना तत्काल दूर जा खड़ी हुई। लज्जाके कारण वह मस्तक भी ऊँचा न उठा सकी। प्रेमके एकान्त मिलनका परिणाम इस प्रकार निकलनेकी उसे कल्पना ही कहाँसे हो सकती थी?

"कैसे पकड़े गये, क्यों सुसेना? अरे, इसमें शर्मानेकी क्या बात है? मैं तो आप दोनोंको बधाई देने आई हूँ।" वह आगन्तुक व्यक्ति मगध-राजकी मानिनी रानी धारिणी ही थी। उसने

सुसेनाकी ओर मुसकुराते एवं महाबलकी ओर व्यङ्ग-भाव दिखाते हुए कहा :—"वाह विद्याधर राज! आपने हमारी सुसेनाजीको ही पूर्ण रूपसे चुरा लिया! आप तो बड़े उठाईगिरे निकले।" धारिणीने अपने भावी नन्दोईका उपहास करते हुए कहा :—

सुसेना भी सहजभावसे अपनी बड़ी भावजकी ओर देखकर हँसी और धारिणी उसके निकट जाकर उसका हाथ पकड़ते हुए बोली, "बधाई! अनेक बधाई!! आप दोनोंका जीवन सुखमय हो, और दीर्घकाल पर्यन्त आप आनन्द पूर्वक सुख भोग करें। आपके भाईसे कहकर मैं शीघ्र ही आप दोनोंका स्थायी मेल-मिलाप करा दूँगी। तनिक धैर्य रखिये।"

सुसेना अपनी आँखोंसे भाभीके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हुई देखती रही। इसके बाद दूसरे ही दिन मगधराजने अपनी बहन सुसेनाका विवाह विद्याधर राज महाबलके साथ बड़ी धूमधामसे कर दिया और विद्याधर भी उसे विमानमें बिठाकर अपने राज्यमें ले गया। वहाँ जानेपर उसके प्रेमके वशीभूत हो सुसेनाको उसने पटरानी बना दिया।

उन्तीसवाँ परिच्छेद

अभय कुमार

—: : * * : :—

पहलेकी घटना घटित होनेके कुछ समयके बाद आज कितने ही बालक खेलते दिखाई दे रहे थे; किन्तु बालकोंके ही तरह उनकी मित्रता या शत्रुता भी क्षणिक ही होती है। वे थोड़ी देरमें लड़ पड़ते हैं और थोड़ी ही देरमें फिर मिलकर खेलने लगते हैं। यदि पाठशालाका समय हो तो इच्छा या अनिच्छा पूर्वक उन्हें उतनी देरके लिए वह पाठशाला कैदखानेकी तरह जान पड़ती है; किन्तु जब शालाकी छुट्टीका दिन हो; तो फिर देखिये उनके बाल चापल्य और तूफानको ! मानों संसारका राज्य उन्हींके हाथमें हो; इस प्रकार मातापिता या किसी भी गुरुजनके भयकी जरा भी पर्वाह न करते हुए वे अपना सारा दिन खेल-कूद या मरजी तूफानमें ही बिता देते हैं; क्योंकि उस समय वह खेल ही उनके लिए सर्वस्व होता है। वैसे तो उनके

निर्दोष एवं निश्चिन्तमय जीवनको सांसारिक शीत और घामका कैसे ज्ञान हो सकता है ?

अनध्याय-छुट्टीके दिन नये नये खेल खेलने भौंरे (लट्टू) या चकरी घुमाने, चौसर या पत्तोंके खेल आदि अनेक प्रकारके मनोरञ्जक खेलोंमें वे लगे रहते हैं। आज भी छुट्टीका दिन होनेसे कितने ही बालक साथ मिलकर खेल रहे थे, किन्तु हार-जीतके खेलमें दो बालकोंके बीच कलह उत्पन्न हो गया। एक कहता था, तू हारा है; अतः मेरे लिये घोड़ा बन; और दूसरा कहता था, तू हारा है।"

किन्तु हारनेवाला लड़का शरारती बदमाश होनेसे उसने जीतनेवालेका घोड़ा बनना स्वीकार नहीं किया और वह जीतनेवालेको हारा साबित करनेके लिये प्रयत्न करने लगा। उसने कहा :—"नहीं, मैं नहीं हारा हूँ। तू बड़ा ही चतुर-चालाक है ! तूही हार चुका है और फिर मुझपर सिर जोरी कर मुझे ही मूर्ख बनाना चाहता है ! इसीके साथ-साथ वह अन्य बालकोंको भी अपनी ओर मिलाने लगा।"

"बोल ! झटपट मेरा घोड़ा बनता है या नहीं ?"

यों कहते हुए जीतनेवालेने उसकी गर्दन पकड़कर उसे घोड़ा बनाना चाहा !"

"देख, छोड़ दे सीधी तरह ! नहीं तो अभी तुझे इसका मजा चखा दूँगा !" यों कहकर उसने उसके हाथसे गर्दन छुड़ा ली।

"लेकिन क्या मैं तुझे सहज ही छोड़ दूँगा ?" उसने फिरसे उसे पकड़ लिया।

"अच्छा, तो ले, अब तू भी आजा।"

इस प्रकार बोला-चालीपरसे मारपीटपर दोनों उतर पड़े ; किन्तु अन्य लड़कोंने बीचमें पड़कर उन्हें छुड़ा दिया। सामान्य दो अक्षर सीख लिये ; इसलिये तू बड़ा ही घमण्ड कर रहा है न ? अरे तू बिना बापका कहाँसे यहाँ आकर टपक पड़ा है !

"तेरा ही बाप नहीं होगा, इसीसे तू ऐसा बोल रहा है। सम्हलकर मुँह खोलना, नहीं तो अभी अपनेको मरा समझना।" जीतनेवाले लड़केने कहा :—

"तो क्या मैं झूठ कह रहा हूँ ? तेरा बाप ही कहाँ है ? था भी किस दिन ? ऐसे बिना बापवालेका मिजाज तो देखो ! मानों कहींका राजा हो !" उसने गरजकर कहा :—

"भद्र सेठ मेरा पिता है ; क्या तू उन्हें नहीं जानता ?"

"वे तो तेरे नहीं, तेरी माँके बाप हैं ! तू केवल पढ़नेमें ही होशियार है बाकी तो तू अकलका दुश्मन ही है। तभी तो बेचारा माँके बापको अपना बाप समझता है।

"सच बात है अभय भैया। बुरा मत मानना। भद्रसेठ तो तेरी माँके पिता हैं।" दूसरे लड़केने उसकी बातका समर्थन किया।

किन्तु छोकरोंकी इस प्रकारकी बातें सुनकर उस जीतनेवाले बालकका मुँह नीचा हो गया। शीघ्र ही वह घर आकर सीधा अपनी माँके पास जा पहुँचा।

वह बालक अभयकुमार था। गोपालको जब राजगृहसे साँढनी सवार बुलाने आये, तब भद्र सेठकी पुत्री यानी श्रेणिक की पत्नी नन्दा गर्भवती थी। अतः उसे समझाकर गोपाल स्वदेशको चला गया था। पीछेसे उस गर्भवती नन्दाने समय पूरा होनेपर पुत्रको जन्म दिया। उसके मातामह नानाने बड़े उत्साहसे जन्म महोत्सव किया। साथ ही पूर्व संकेतानुसार उसका नाम अभयकुमार रखा। द्वितीयाके चन्द्रमाकी तरह वह प्रतिदिन पाँच धाय

माताओं द्वारा लालन-पालन किया जाकर बड़ा होने लगा। उसकी माता और नाना भद्रसेठ आदि उसे देख-देखकर अपनी आँखें ठंढी करते थे। उसका बाल-चापल्य, उसकी सुन्दरता और बुद्धिको देख-कर सारा परिवार ही हर्षित हो उठता था! पति वियोगिनी नन्दा तो उसको देखकर अपने दिन बिताती थी। उसके लिए तो वह अभय ही जीवन सर्वस्व था!

गोपाल के स्वदेश-गमनके पश्चात नंदाने उसकी बहुत दिनोंतक प्रतीक्षा की। 'आज बुलाते हैं···कल-बुलाते हैं' यों करते-करते कई दिन बीत गये, किंतु फिर भी न तो गोपालकी ओरसे बुलवाया गया और न कोई समाचार ही मिला। इधर अभय प्रतिदिन बड़ा होने लगा; किंतु उसे पिताका पता न लग सका, क्योंकि राजगृह जाकर वह बड़े-बड़े राजप्रपंचोंमें, नयी-नयी रमणियोंके विलासमें निमग्न हो अपनी इस पत्नीको बिल्कुल ही भूल गया था। नन्दाको थोड़े ही ज्ञान था कि मेरे पति कोई सामान्य गोपाल नहीं, बल्कि मगधराज श्रेणिक ही स्वयं हैं!

महिनेके बाद महिने और वर्षोंके बाद वर्ष बीत गये। नन्दाकी पतिसे मिलनेकी आशा-लता

भी सूख गई। कोई भी समाचार न मिलने से उसने सब प्रकारसे आशा छोड़ दी थी। अतः अबतो उसे दीक्षा ग्रहण करना ही उचित जान पड़ता था ; किंतु अभय ही अब तो उसका जीवनाधार होनेसे उसीके सहारे वह अपने दिन बिता रही थी। इस प्रकार एक-एक दिन और महिनेके बाद वर्ष बीतते हुए आठ वर्षका समय निकल गया। अपने पतिके धुंधले स्मरण ही उसकी स्मृतिमें शेष रह गये।

आठ वर्षकी अवधि बीत जानेके पश्चात आज अकस्मात् एक नवीन घटनाने पूर्व स्मृति की—उस सुखकी घड़ीकी याद दिला दी ! अभय कुमारने माताके पास आकर पूछा कि :—"माता ! मेरे पिता कौन हैं ?" किंतु पुत्रके मुखसे आज अचानक इस प्रकारका प्रश्न सुनकर आश्चर्य चकित हुई और वह अपने उस लाड़ले पुत्रके छोटे कोमल मुखको देखती रह गई।

"बेटा, आज तू यह क्यों पूछ रहा है ? रात-दिन घरमें रहते हुए भी तू अपने पूज्य पिताको नहीं जानता ? ये भद्र सेठ ही तेरे पिता हैं भैया ! माताने उसे समझानेका प्रयत्न किया ; किंतु उस चतुर कुमारका मन भला इस प्रकार कैसे सन्तुष्ट हो सकता था ?"

"वे तो तेरे पिता हैं, माता ! मेरे पिता कौन हैं, यह बतला !" पुत्रने फिरसे आग्रह किया ; किंतु उस बेचारीको क्या पता था कि उसका पुत्र बत्तीस लक्षणों-से युक्त एवं बहत्तर कलाओंमें प्रवीण था ! क्योंकि आठ वर्षकी अवस्था होनेसे माता उसे नादान ही समझ रही थी ।

फिरभी अभयका आग्रह सुनकर नन्दा उदास हो गई ! क्या उत्तर दे, यह उसकी समझमें नहीं आया । वह चुपचाप अपने पुत्रका मुँह देखती हुई स्थिर रह गई ।

"माता ! तू बोलती क्यों नहीं ? झट बतला कि मेरे पिता कौन हैं ? और वे कहाँ हैं ?" फिरसे उस बालकने हठ पकड़ी । संसारमें बाल हठ प्रसिद्ध ही है ।

पुत्रके बार-बार पूछनेसे माताकी आँखोंमें आँसू आगये । उसे वह पूर्वकी बातें और सुखके दिन स्मरण हो आये । वह सोचने लगी, हाय ! न जाने किस असमयमें वे यहाँसे गये सो आजतक भी न लौटे ! आज आठ वर्षकी लम्बी अवधि बीत गई किंतु अभी तक उनका कोई समाचार ही नहीं मिला । बिचारी नन्दा निःश्वास छोड़ती हुई रोनेकी सी हो गई और कण्ठ भरआनेसे वह बोल भी न सकी ।

"माता ! तू किसलिये रो रही है ? जो सत्य

बात है वह मुझे बतलाती क्यों नहीं ? मुझे इस बातका पता तो लगना ही चाहिये कि मेरे पिता कौन हैं ? संसारमें विना बापका होकर जीनेकी अपेक्षा मैं मर जाना अधिक अच्छा समझूँगा। विना बापके रहना, यह कोई साधारण बदनामी नहीं है।" इस प्रकार अभयकुमारने अपना निश्चय प्रकट किया ?

"अच्छा, तो बेटा सुन ! आज आठ वर्ष पुरानी बात तुझे बतलाती हूँ। कोई एक परदेशी देवकुमारके समान पुरुष हमारे घर अतिथि बनकर आये थे। उनके साथ मेरा विवाह हुआ, किन्तु कुछ समय बीतनेके बाद जबकि तू गर्भमें था; तब कुछ साँढनी (ऊँटनी) सवार यहाँ आये और उन्होंने एकान्तमें तेरे पिताको कुछ समाचार सुनाये। अतएव वे तत्काल ही उनके साथ चले गये, किन्तु वे गये सो फिर अबतक नहीं लौटे ! आज आठ वर्ष बीत गये और तू भी आठ वर्षका होने आया; किन्तु अब तक उनका कोई समाचार नहीं मिला। निर्मोही-की तरह वे हमें छोड़कर चले गये। फिर भी बेटा तेरे सहारे मैं जी रही हूँ।" उस गद्-गदित होती हुई माताने बालकको अपनी गोदमें ले लिया और पूर्वकी बातें फिरसे याद आ जानेके कारण उसने

आँसू गिराते हुए अपना हृदय खाली कर दिया।

"माता! तू क्यों रुदन करती है? मैं अपने पिताको पृथ्वीका कोना-कोना छान कर भी खोज निकालूँगा, किन्तु यह तो बतला कि वे जाते समय अपना कोई पता या चिह्न भी दे गये हैं?"

पुत्रका वचन सुनकर पतिका दिया हुआ वह शिलाखण्ड उसे स्मरण हो आया। उसकी याद आते ही माताने कहा :—तूने अच्छी याद दिलाई। उन्होंने एक वस्तु मुझे दी थी, किन्तु उसपर लिखा हुआ लेख हमारी समझमें नहीं आता। "भला, संसारमें बुद्धिका वैभव सभीको कैसे सुलभ हो सकता है?" यों कहकर माताने गोपालका दिया हुआ वह शिलाखण्ड अभयकुमारके हाथपर रख दिया और अभयने अक्षरोंको भली-भाँति जमाकर उसका आशय समझ लिया।

"किन्तु बेटा! अब यह प्रयास निरर्थक ही होगा; क्योंकि आज आठ-आठ वर्ष बीत जानेपर भी जिसका कोई पता हमें नहीं लगा; और जिसने तेरी या मेरी कोई सुधि भी नहीं ली, उसका पता अब कैसे लग सकता है?" माताने निराश होकर कहा :—

परन्तु उस निराश हो जानेवाली मातासे प्रसन्न वदन अभयकुमारने यही कहा कि :—"माता ! माता !! मैंने अपने पिताका नाम-धाम जान लिया है। वे भला, हमें क्यों याद करेंगे ? बड़े-बड़े राजकीय काम-काजमें वे हमें भूल जायँ, यह स्वाभाविक है। वे तो बहुत बड़े राजा हैं।"

पुत्रके वचन माता विस्मित नेत्रोंसे सुनती हुई बोली :—"तू क्या कह रहा है बेटा ? यही कि मेरे पिता बहुत बड़े राजा हैं ? देख न ? इसमें स्पष्ट ही तो लिखा है।"

"तू ही पढ़कर बतला, बेटा। मैं तो इसमें कुछ भी नहीं समझ पाती।" माताने कहा :—"वे कहाँके राजा हैं ? दीखते तो वे एक सामान्य मनुष्य जैसे ही थे। ठीकसे पढ़कर बतला, बेटा !"

सामान्य मनुष्य क्या ? वे तो राजगृहीके राजा हैं। 'पाण्डुरकुड्डी' अर्थात् सफेद दीवारों वाले महल और 'गोपाल' अर्थात् पृथ्वीपाल ! वे तो श्वेतवर्णके ऊँचे महलोंमें रहने वाले पृथ्वीपाल हैं।' यही इस शिलापट्टपर लिखा हुआ है माता !" उस आठ वर्षके नन्हेंसे बालककी इस प्रकारकी बुद्धिमत्ता देखकर माता आश्चर्य चकित हो गई। उसने



"यही इस शिला पट्टपर लिखा हुआ है माता ! पृष्ठ २८८

मन ही मन विचार किया कि अहो! इतने छोटे बालकमें ऐसी अद्भुत बुद्धि! अवश्य ही बुद्धिमान पिताकी सन्तान भी बुद्धिशाली हो सकती है! क्योंकि आमकी गुठलीमेंसे आम्रफल ही उत्पन्न होगा। अंततः उसने कहा :—"सचमुच बेटा ; तू भी अपने पिताके ही समान बुद्धिमान प्रतीत होता है। तेरे पिताका भाग्य भी वैसा ही था ; किन्तु यहाँ अपना नाम-धाम छिपाकर वे गुप्त वेशमें साधारण मनुष्यकी तरह रहे। इसीलिये यह पता नहीं लग-सका कि वे कोई राजा होंगे।" ऐसी धारणा सर्वथा नहीं थी।

"माताजी! अब हमें मेरे पिताके यहाँ जाना चाहिए। यहाँ ननिहालमें हम कबतक रहेंगे? साधा-रण स्त्रियाँ भी युवावस्थामें पिताके घर नहीं रहतीं, तो फिर राजाकी रानी कैसे रह सकती है? प्रत्येक अवस्थामें पतिका घर ही स्त्रीके लिये इज्जत और प्रतिष्ठाको बढ़ानेवाला होता है।

"किन्तु बेटा! आज आठ-आठ वर्षोंके परिवर्तनके पश्चात् तो तेरे पिता हमलोगोंको भूल ही गये होंगे। अतएव तू जरा और बड़ा हो जा ; फिर हम वहाँ जाएँगे। यदि वे हमें भूल ही गये होंगे

तो फिर हमें वहाँ जाकर क्या करना है ? उस परदेशमें फिर हमें पूछनेवाला ही कौन होगा ?" माताने शंका की।

"यह तो मैं वहाँ जानेपर सम्हाल लूँगा। तुझे उसको चिन्ता नहीं करनी होगी; किन्तु यहाँसे तू जल्दी चल। अब हमें बिल्कुल ही देर नहीं करना चाहिए।" पुत्रके इन वचनोंका माताने अनुमोदन किया। उसे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मेरा पति राजगृहीका स्वामी है !

इसके बाद अभयकुमारने अपने नानाजीके निकट जाकर हाथ जोड़े हुए निवेदन किया कि :— "मेरे पिता तो राजगृही नगरीके स्वामी हैं। अतएव कृपा करके हमें अब उनके पास पहुँचा दीजिये !" इस प्रकार उसने सब बातोंका खुलासा करके बतलाया।

किन्तु उस छोटेसे कुमारके वचनोंको सुनकर भद्रसेठको बड़ा आश्चर्य हुआ। साथ ही उसने दुःख पूर्वक कहा :—"बेटा ! यहाँ किस बातका दुःख है कि तू यहाँसे जाना चाहता है ? यह सब ऋद्धि, सिद्धि और समृद्धि किसकी है ? तेरे कारण ही तो हम फिरसे सुखी-सम्पन्न हुए हैं। तेरे चले जानेसे तो हमारा यह विशाल भवन शून्य हो जायगा।

अतएव बेटा ! तू यहाँसे जानेका तो नाम ही मत लेना ।"

"पूज्य नाना जी ! आज वर्षोंसे हम आपहीके अन्नसे पाले-पोसे गये हैं। आपके उपकारोंसे हम माँ-बेटे दबे हुए हैं; किंतु अब पिताजीका नाम-धाम जान लेनेके बाद एकबार तो मुझे अपने पितासे मिलनेके लिये अवश्य जाना चाहिये। अतएव अब हमपर दया करके राजगृहीकी ओर जानेको विदा कीजिये।" इसप्रकार अभयकुमारने अत्यन्त नम्रतासे कहा।

अभयकुमारके बालहठ एवं आग्रहको देखकर दुःखित चित्तसे भद्र सेठको 'हाँ' करनी पड़ी और वे उन माता बेटेको विदा करनेकी तैयारी करने लगे। नन्दाको मनमाना दहेज दिया; क्योंकि बिना कुछ लिए ससुराल जानेवाली लड़की वहाँ कोई आदर नहीं पा सकती।

सब प्रकारसे तैयारी हो जानेपर भद्र सेठने नन्दाको सुसराल भेजनेका शुभ मुहूर्त निकलवाया. साथ ही सुसरालमें जानेपर वहाँ किस प्रकारका व्यवहार करना चाहिये, इस विषयकी शिक्षा भी नंदाको दी। नन्दाने उस सिखावनको प्रसन्न चित्तसे ग्रहण

किया ; क्योंकि वैसे भी वह हृदयसे तो यही चाहती थी ; उसमें फिर माता-पिताने भी उसके मनकी बात कर दी ।

सेठने अभयकुमारको भी गद्‌गद् कण्ठसे सिखावन देते हुए कहा :—"बेटा ! सदैव अपने माता-पिताकी सेवा-भक्तिमें लगे रहना ! अपनी प्रजाका प्रेम संपादन करना । इससे तुझे भी अपने पिताकी ही तरह राज्य प्राप्त हो सकेगा, किन्तु बेटा ! तू हमारा घर छोड़कर जायगा ; तब हमें तेरे विना कैसे अच्छा लगेगा ? चन्द्रमाके विना आकाशकी भाँति यह घर निश्चित ही शोभा रहित हो जायगा ! अधिक मैं क्या कहूँ ! बेटा, पिताके घर जाकर हमें भूल मत जाना ! क्योंकि स्वर्गीय सुख भोगने वाला प्रायः पीछे वालोंको याद नहीं करता । तू ऐसा कदापि न करना ।"

"नानाजी ! आप यह क्या कह रहे हैं ? आपके उपकारोंको तो खम्भेपर अङ्कित किये हुए अक्षरोंकी तरह हम अपने हृदयमें निरन्तर वनाये रखेंगे । ऐसे असंख्य उपकारोंके होते हुए यदि मैं आपको भूल जाऊँ तो मुझसे वढ़कर कृतघ्न प्राणी दूसरा कौन हो सकता है ? आपने मुझे और मेरी माताको

जो उपदेश दिया है; उसका हम निरन्तर पालन करेंगे। भला, ऐसा कौन अभागा होगा; जो कान होते हुए भी मणि कुण्डल प्राप्त होने पर उन्हें नहीं पहनना चाहेगा?" अभयकुमारने नानाजीका उपकार मानते हुए उनकी शिक्षाको अङ्गीकार की।

इसकेबाद भद्रसेठने अभयकुमार और नन्दाको शुभ मुहूर्तमें राजगृही जानेके लिये विदा किया।

—o—

तीसवाँ परिच्छेद

सौतोंकी शत्रुता

—::❀::—

विवाह होनेके पश्चात् जब कन्याएँ सुसराल जाती हैं; तब माता-पिता उसे उचित सिखावन देनेमें कोई कसर नहीं रखते। साथ ही दामादको भी उस लाड़ प्यारमें पली हुई लड़कीके लिये पूर्ण रूपसे सिफारिश की जाती है; किन्तु वे सभी सिफारिशें तो प्रायः कन्याके सुसरालमें किये जानेवाले व्यवहार पर आधार रखती हैं। यदि सुसरालमें

उसका व्यवहार-वरताव अच्छा हो ; और सबको अनुकूल बनानेकी कला उसमें हो ; तो अवश्य ही वह सबके लिये प्रिय हो सकती है। उसमें यदि गुण हों तो अवश्य उसकी मान्यता हो सकती है। पति भी उसका आदर सम्मान करता है और वह पतिकी प्यारी बनकर सब किसीसे सम्मान पा सकती है।

विद्याधर राज महाबल सुसेनाको विमानमें बिठाकर अपने राज्यमें ले गया, उस समय भी सुसेनाके लिये श्रेणिक आदिने महाबलसे अनेक प्रकारसे अनुरोध किया था। फिर भी सुसेना अपने रूप, सौन्दर्य एवं अभिनय आदि अनेक गुणोंसे पतिकी अत्यन्त प्रिय हो गई थी। उसके प्रेममें मस्त होकर उसके अधीन बन जानेवाला महाबल अनेक विद्याधरियोंके रहते हुए भी रात-दिन उसीके महलमें पड़ा रहता था। अनेक प्रकारके भोग-विलासमें उसका समय सुखपूर्वक बीत रहा था। सुसेनाको पटरानीके पदपर कायम करके उसीके रूप-सौन्दर्यका वह भोगी भ्रमर बन गया था। इसप्रकार सुसेनाके रूप-सौन्दर्यमें लीन होकर उस भ्रमर भोगीने अपनी अन्य अनेक विद्याधरियोंको त्याग दिया था।

महाबल राजाको सुसेनाके स्नेह सागरमें गोते लगाते हुए कितना ही समय बीत गया। दोग-न्दुक (इन्द्रके तैंतीसदेव) देवताकी तरह मनुष्यको सुखमें बीते हुए समयका स्मरण नहीं रहता। इस प्रकार अन्य रानियोंकी विद्याधर-द्वारा उपेक्षाकी जानेसे सुसेनाके प्रति उनके मनमें ईर्ष्या होना स्वाभाविक ही था। अतएव अपने मार्गके इस काँटेको दूर करनेके लिए वे अनेक उपाय सोचने लगीं। वे परस्पर कहतीं थीं कि :—"अरे, जरा देखो तो सही कि, हम जैसी विद्याधरोंके वंशमें जन्मी हुई अनेक प्रकारके विद्या-वैभववाली रमणियोंको परास्त कर एक सामान्य मानवी महिलाके प्रेममें हमारा स्वामी लुब्ध हो रहा है। उस नीच-कुलटाने हमारे स्वामीको वशमें करके हमारा किस प्रकार पराभव कर दिया है? अरे बाई! ऐसा अपमान क्योंकर सहन किया जा सकता है? पराये स्थानमें निरन्तर भिक्षा माँगना अच्छा और अपनी अपेक्षा नीच मनुष्योंका वचन प्रहार सहना अच्छा, अन्नजल न भी मिले तो अच्छा, गहने-कपड़े रहित शरीर भी अच्छा, भयङ्कर वनमें वास करना अच्छा, किन्तु संसारमें स्त्रियोंके लिए सौतसे पराजित होना अथवा प्रतिदिन उसकी ओरसे

अपमान सहन करना कदापि अच्छा नहीं कहा जा सकता। अभी समय हाथमें है; अतएव इस सौत-रूपी काँटेका नाश करना ही उचित होगा। यदि कहीं इसके पुत्र उत्पन्न हो गया; तब तो फिर इसका नाश करना असम्भव ही हो जायगा। पुत्र उत्पन्न होनेके पहले ही इसे इस लोकसे विदा कर देना उचित होगा; क्योंकि जिस वृक्षकी जड़ें गहरी चली जाती हैं, उसे उखाड़ना कठिन हो जाता है। उत्कृष्ट स्थितिवाली मोहनीय कर्मकी गाँठको भव्य पुरुष भी नहीं भेद सकते। अतएव चतुर पुरुषोंको तो रोग और शत्रुका यथा समय उपचार-इलाज कर डालना चाहिये; जिससे कि अपना मार्ग साफ हो जाय।" इस प्रकार सुसेनाकी सौतें उसका सर्व-नाश करनेके लिये उद्यत हो गईं।

ईर्ष्याकी आगमें जलती रहनेवाली सौतें अनुकूल समयकी प्रतीक्षा करने लगीं, किन्तु अनु-कूल समय आते आते बीचमें कितना ही समय पानीके प्रवाहकी तरह व्यतीत हो गया। पति पत्नीके अनन्य प्रेमके कारण सुसेनाको सांसारिक सुख भोगते एक कन्या रत्नकी प्राप्ति हुई; और माता-पिताने उसका नाम तारा रख दिया। वह तोतली वाणीमें बोलती

और घुटनोंके बल चलती हुई अपने बाल चापल्यसे माता पिताके आनन्दमें अधिकाधिक वृद्धि करने लगी ! इसे देखकर दोनोंके मन एक दूसरेके प्रति विशेष रूपसे आनंदित होने लगे। उनका सुख-सौभाग्य देखकर प्रकृति को भी असह्य हो गया। क्रूर विधाता किसीको भी अधिक समय तक सुखी नहीं रहने देता। ऊँचे चढ़ाकर एकदम अन्धकारमय खड्डेमें गिरानेके लिये ऐसी लात मारता है कि उसे फिर अपनी पहलेकी अवस्थामें पहुँचनेके लिये वर्षोंतक प्रयास करना पड़ता है। अंततः सुसेनाके सुखके प्रति भी विधाताको ईर्ष्या हुई। अथवा यों कहिये कि प्रकृति सुख भोगनेका अवसर एकके बाद दूसरेको भी देती रहती है। इसे विधाताकी इच्छा कहिये अथवा भाग्यकी विचित्रता ; किन्तु एक दिन उसका सर्वनाश करने पर तुली हुई सौतोंको अनायास मौका मिल ही गया, और वह उन सौतोंके प्रपंचकी बलि होकर इस संसारसे विदा हो गई। गरीब बेचारी सुसेना ! अनेक प्रकारकी विद्यारूपी सम्पत्तिसे अभिमानमें मस्त बनी हुई उन अनेक विद्याधरियोंके सम्मुख उस अकेलीका क्या वश चल सकता था ?

अचानक मृत्युके शरणमें पड़ी हुई प्राण-प्रियाको

अपमान सहन करना कदापि अच्छा नहीं कहा जा सकता। अभी समय हाथमें है; अतएव इस सौत-रूपी कांटेका नाश करना ही उचित होगा। यदि कहीं इसके पुत्र उत्पन्न हो गया; तब तो फिर इसका नाश करना असम्भव ही हो जायगा। पुत्र उत्पन्न होनेके पहले ही इसे इस लोकसे विदाकर देना उचित होगा; क्योंकि जिस वृक्षकी जड़ें गहरी चली जाती हैं, उसे उखाड़ना कठिन हो जाता है। उत्कृष्ट स्थितिवाली मोहनीय कर्मकी गाँठको भव्य पुरुष भी नहीं भेद सकते। अतएव चतुर पुरुषोंको तो रोग और शत्रुका यथा समय उपचार-इलाज कर डालना चाहिये; जिससे कि अपना मार्ग साफ हो जाय।" इस प्रकार सुसेनाकी सौतें उसका सर्व-नाश करनेके लिये उद्यत हो गईं।

ईर्ष्याकी आगमें जलती रहनेवाली सौतें अनुकूल समयकी प्रतीक्षा करने लगीं, किन्तु अनु-कूल समय आते आते बीचमें कितना ही समय पानीके प्रवाहकी तरह व्यतीत हो गया। पति पत्नीके अनन्य प्रेमके कारण सुसेनाको सांसारिक सुख भोगते एक कन्या रत्नकी प्राप्ति हुई; और माता-पिताने उसका नाम तारा रख दिया। वह तोतली वाणीमें बोलती

और घुटनोंके बल चलती हुई अपने बाल चापल्यसे माता पिताके आनन्दमें अधिकाधिक वृद्धि करने लगी ! उसे देखकर दोनोंके मन एक दूसरेके प्रति विशेष रूपसे आनंदित होने लगे। उनका सुख-सौभाग्य देखकर प्रकृति को भी असह्य हो गया। क्रूर विधाता किसीको भी अधिक समय तक सुखी नहीं रहने देता। ऊँचे चढ़ाकर एकदम अन्धकारमय खड्डेमें गिरानेके लिये ऐसी लात मारता है कि उसे फिर अपनी पहलेकी अवस्थामें पहुँचनेके लिये वर्षोंतक प्रयास करना पड़ता है। अंततः सुसेनाके सुखके प्रति भी विधाताको ईर्ष्या हुई। अथवा यों कहिये कि प्रकृति सुख भोगनेका अवसर एकके बाद दूसरेको भी देती रहती है। इसे विधाताकी इच्छा कहिये अथवा भाग्यकी विचित्रता ; किन्तु एक दिन उसका सर्वनाश करने पर तुली हुई सौतोंको अनायास मौका मिल ही गया, और वह उन सौतोंके प्रपंचकी बलि होकर इस संसारसे विदा हो गई। गरीब बेचारी सुसेना ! अनेक प्रकारकी विद्यारूपी सम्पत्तिसे अभिमानमें मस्त बनी हुई उन अनेक विद्याधरियोंके सम्मुख उस अकेलीका क्या वश चल सकता था ?

अचानक मृत्युके शरणमें पड़ी हुई प्राण-प्रियाको

देखकर विद्याधर-राज महाबल अत्यन्त दुःखी हो गया। वह अनेक विद्याओंका जानकार और बड़ाही परा क्रमी होते हुए भी सुसेनाको मृत्युसे सजीवन करनेकी शक्ति उसमें नहीं थी। उसका प्रेम, उसके हा भाव एवं उसके भोग विलासके कौशल्यका बारबा स्मरणकर वह एकदम दुःख सागरमें डूब गया; कि सुसेनाकी मृत्युका अपराध वह किस पर लगाता। सुसेना तो इस लोकमें जैसी आई थी वैसी ही चल गई। अरे! अब "उसके बन्धुको मैं क्या उत्तर दूँगा हाय! मेरे प्रति अत्यन्त स्नेह रखनेवाली अपनी प्रि तमाकी मैं जरा भी सावधानीके साथ रक्षा न क सका।" यद्यपि सौतोंके ईर्ष्याभावका ही यह दुष्परि णाम होनेकी बात वह जानता था। फिर भी व अब क्या कर सकता था? अपनी सैकड़ों विद्या धरियोंमेंसे वह किससे पूछ सकता था! फिर भ उसने मनमें निश्चय कर लिया कि जाँच करनेप जब कुछ पता लगेगा; तब देख लिया जायगा किन्तु इस समय तो अवसरके अनुसार ही का करना चाहिये।

इस प्रकार अत्यन्त व्याकुल चित्तसे महाबलं अपनी प्रियतमाका मृत्यु कार्य सम्पन्न किया। प्रिय

आई और चली गई ! उसकी माया स्वप्नके समान हो गई। पत्नी वियोगका दुःख किसे नहीं होता ? बेचारे महाबलको भी अत्यन्त दुःख हुआ ; किन्तु गरीब बेचारी तारा ! वह तो सदैवके लिए मातृहीन हो गई ! सभी सौतें अपने बीचसे इस काँटेके दूर हो जानेपर मनमें बहुत ही प्रसन्न हुई। भला परस्पर ईर्ष्या रखनेवाली, और कलह-प्रिय सौतें रागद्वेषके वशीभूत होकर क्या-क्या नहीं कर डालतीं ?

बिना माताके उस अबोध बालिका ताराको देखकर महाबलने मनमें विचार किया कि "कामके अधीन बने हुए प्राणी पाप-कर्म करते जरा भी हिचकते नहीं। इसीलिए मोहके मारे विवश होकर ही इन विद्याधरियोंने यह दुःखदायक बड़ा ही कुकर्म किया है ! कामान्ध पुरुषको भले बुरेका ज्ञान ही कैसे हो सकता है ? किन्तु अब तो मुझे ताराकी रक्षा करना ही उचित है। अन्यथा ये ईर्षालू स्त्रियें इसकी माताके वैर भावको याद रखकर कहीं इसका भी नाश न कर दें।" किन्तु अब ताराकी रक्षा कैसे की जाय ? इस विषयमें महाबलने गम्भीरतासे विचार करनेके पश्चात अन्तमें यह निर्णय किया कि "ताराको इसकी ननिहालमें ही रखा जाय ! श्रेणिकके

यहाँ इस बालाका सुख-शान्तिसे परिपालन हो सकेगा; क्योंकि इसका वहीं सुरक्षित रह सकना सम्भव है। मैं भी बीच-बीचमें जाकर इसकी सुधि लेता रहूँगा।" इस प्रकार निश्चयकर विद्याधर राज विमानमें बैठ ताराके साथ श्रेणिकके पास आया।

महाबलने गद्‌गद् कण्ठसे श्रेणिकको सुसेनाका सब वृत्तान्त संक्षेपमें कह सुनाया। बहनकी मृत्युसे भाईके चित्तको आघात तो लगा; किन्तु उसे सहनेके सिवाय अन्य कोई उपाय ही न था। "मगधराज! यह तुम्हारी भानजी तारा तुम्हारी शरण है। इसकी यत्न पूर्वक प्राणके समान रक्षा कीजिये, क्योंकि वहाँ मेरे साथ रखनेसे यह मातृविहीना बालिका भी सम्भव है कि सौतोंकी ईर्ष्याग्निमें जला दी जाय! अतएव यहींपर सुरक्षित रह सकेगी। साथ ही इसके कारण अपने स्नेहमें भी वृद्धि होती रहेगी।"

महाबलका वचन श्रेणिकने अङ्गीकार किया और अपनी भानजीको हृदयसे लगाकर प्रेमाश्रु बहाये। इसकेबाद महाबल अपने राज्यमें वापस चला गया। इधर मामाके घर तारा लाड़ प्यारमें पलकर धीरे-धीरे बड़ी होने लगी।

इधर मगधराजका भी अनेक रानियोंके संसर्गसे

पुत्र-पुत्रियोंके रूपमें बहुत बड़ा परिवार हो गया था। उनके साथ हँसती खेलती तारा भी क्रमशः बड़ी होने लगी।

इकतीसवाँ परिच्छेद

बुद्धि क्या किसीको बपौती है?

—: : * * : :—

राजगृह नगरीकी शोभा अवलोकन करनेके लिए विदेशी जैसे प्रतीत होनेवाला एक किशोर वयका बालक नगरके मुख्य दरवाजेमें आया। बालकके मनमें अनेक प्रकारके विचार उठ रहे थे। "पिताके पास कैसे पहुँचा जाय? और अपना समाचार उन्हें कैसे पहुँचाया जाय?" इसी विषयमें उसके मनमें अनेक प्रकारसे उथल-पुथल हो रही थी; किन्तु केवल विचार करनेसे ही क्या हो सकता है? विचार निरन्तर भिन्न होते हैं, जबकि विधि निर्माण कुछ और ही होता है! इस पर भी मनुष्य विचार

तो अवश्य करता ही है। राजगृही नगरीकी शोभा अवलोकन करता हुआ वह बालक बाजार चौक-चौराहे एवं राज-किला आदि कई स्थानोंको देखता एवं श्रीमानोंके ऊँचे-ऊँचे बड़े ही मनोहर भवनोंपर दृष्टि डालता हुआ सारा नगर घूमा फिरा। घूमते फिरते वह उस स्थानपर पहुँचा, जहाँ अनेक मनुष्योंका समूह एकत्रित हो रहा था। वहाँ उन मनुष्योंका कोलाहल सुनकर कुमारको आश्चर्य तो हुआ; किंतु वह भी उसका रहस्य जाननेके लिए वहाँ पहुँचकर एक मनुष्यसे पूछने लगा। "चाचाजी! ये सब यहाँ क्यों एकत्रित हो रहे हैं? क्या यहाँ कुछ प्रसाद या गुड़-धनिया बँट रहा है?"

वह पुरुष इस प्रश्नको सुनकर कुमारकी ओर देखने लगा। उसने कहा :—"जान पड़ता है तू परदेशी है! तभी तू इसका स्वरूप नहीं जानता। अन्यथा यहाँ न तो कोई प्रसाद बँट रहा है और न गुड़ धनियाँ; किन्तु हाँ, ऐसी वस्तु अवश्य बँट रही है; जिसकी देवता भी इच्छा कर सकते हैं। जान पड़ता है तुझे गुड़-धनियाँ बहुत अच्छे लगते हैं! यहाँ तो दिन उगते ही रोज ऐसा मेला लगता है और वह लगना ही चाहिए।

"किन्तु इसका कोई कारण भी अवश्य होगा।" कुमारने आतुरतासे वह रहस्य जानना चाहा।

"कारण ? अच्छा, तो सुन ! मैं इसका कारण लाता हूँ। मगधपति श्रेणिक राजाने एकसे एक धिक बुद्धिशाली चारसौ निन्यानवे मंत्री एकत्र कर ये हैं, किन्तु उन सब श्रेष्ठ एक पाँचसौवें ऐसे य मंत्रीकी उसे आवश्यकता है कि जो इन्द्रके बृहस्पतिको भी पराजित कर सके ! उसीकी क्षाके लिए राजाने इस खाली कुएमें अपनी ल्य मुद्रिका निधानके रूपमें डालकर आज्ञा दी कि:—"जो बुद्धिमान पुरुष कुएके किनारे पर बैठकर लोह चुम्बक जिस प्रकार लोहेको खींच है, उसी प्रकार अपने हाथसे उस मुद्रिकाको ल लेगा, उसीको मैं महा मंत्रीकी पदवी देकर सौ निन्यानवे मंत्रियोंमें मुख्य मंत्री बनाकर ा आधा राज्य देनेके साथ अपनी पुत्रीका उससे विवाह कर दूँगा। भला, अब तूही बतला देवता भी उसकी इच्छा करेंगे या नहीं ?" उस ने लोगोंके एकत्रित होनेका रहस्य बताया !

"तो क्या आज कितने ही दिनोंसे राजाने प्रयोग चला रक्खा है और क्या कोई उस

मुद्रिकाको निकाल सके, ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है ?" अभयकुमारने पूछा। वह कुमार नन्दाका पुत्र ही था।

"आज कितने ही दिन बीत गये। कमसे-कम दो-चार वर्ष तो हुए ही होंगे। कितने ही आकर चले गये; किन्तु उस अँगूठीको कुएके किनारे बैठकर कोई कैसे निकाल सकता है ?" उस पुरुषने उत्तर दिया।

"इतना समय बीत जानेपर भी अबतक ऐसा कोई बुद्धिमान नहीं मिल सका ! किन्तु यह तो एक साधारण सी बात है। इसे तो सहज ही निकाल लिया जा सकता है !"

"अच्छा ; यदि ऐसा ही है तो तू ही उसे निकाल कर बतला दे !" उस व्यक्तिने कहा।

इधर अभयकुमार बढ़कर उस कुएके किनारे पहुँच और उसने भीतर पड़ी हुई मुद्रिकाको देखा। इसके बा बोला कि :—"भाइयो ! इस अंगूठीको तो कोई भ निकाल सकता है ! इसमें कुछ भी कठिनाई नह है। आपलोग प्रयत्न क्यों नहीं करते ?"

"अरे भाई ! दर्पणमें दिखाई देनेवाले प्रति बिम्बको तो सभी लोग देख सकते हैं; किन्तु उसे क

पकड़ नहीं सकता। उसी प्रकार हम तो केवल इसे देखनेके लिए शक्तिमान हैं, ग्रहण करनेकी हममें कोई शक्ति नहीं है।" लोगोंने प्रत्युत्तरमें कहा।

"क्या कोई परदेशी चाहे तो इसे निकाल सकता है? या केवल मगध देशके लोगोंको ही प्रोत्साहन देनेके लिए यह प्रयोग है?" अभयकुमारने पूछा।

"अरे, यह कहावत प्रसिद्ध है कि:—"जो गौ चरावे वही गोपाल (१) हो सकता है।" तुझमें यदि सामर्थ्य है तो तू ही क्यों नहीं आजमाता? यहाँ तो अबतक अनेक शास्त्रोंके पारंगामी, अनुभवी और बुद्धिमान पुरुष आये और चले गये; किन्तु किसीकी बुद्धि काम न दे सकी। जान पड़ता है तुझे अँगूठी पानेकी अधिक उत्कंठा है।" लोगोंने कहा।

"हाँ, मैं सुगमतासे उसे ग्रहणकर सकता हूँ, किन्तु पहले सब लोग अपनी-अपनी शक्तिकी परीक्षा कर लें। यदि किसीके मनमें अभिलाषा हो तो वह भले ही उसे पूर्ण कर देखे।" अभयकुमारने कहा।

---

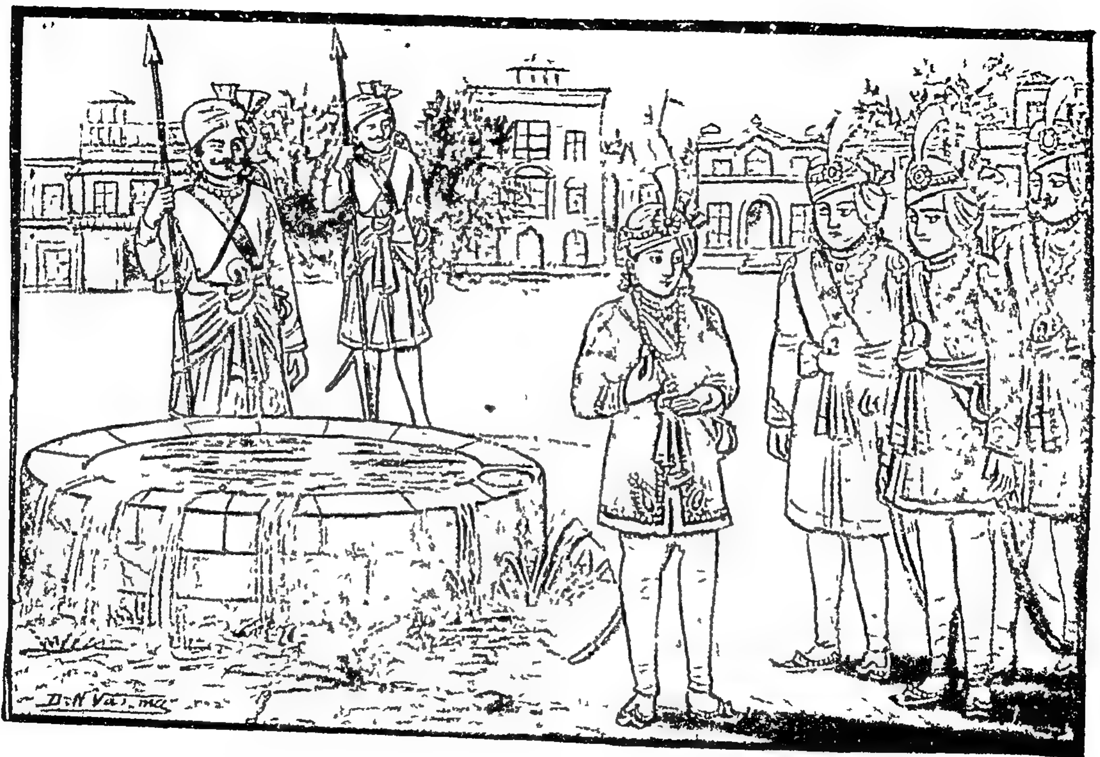
(१) इस कहावत के अनुरूप ही यह कहावत प्रसिद्ध है कि "जो गौ चरावे वही गोपाल है।"

"नहीं भाई, तू ही खुशीसे उस अँगूठीको पहन ले ! हमसे तो यह कार्य हो नहीं सकता। जो अपने हाथोंसे आकाशके तारोंको छू सकता है, वही इस मुद्रिकाको पहन सकता है !"

"अच्छा ; तो देखिये, मैं सहज ही इसे निकालकर दिखाता हूँ।" इस प्रकार हँसते-हँसते अभयकुमारने सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया।

एक आठ वर्षके बालककी इस प्रकार निर्भय वाणी सुनकर लोग विचारमें पड़ गये। वे कहने लगे ; अरे, यह कोई विशेष बुद्धिमान जान पड़ता है। इसके मुखकी आकृति ही इसके गुण एवं पराक्रमकी साक्षी दे रही है। अन्यथा यह छोटा-सा बालक कुएमेंसे अंगूठी कैसे ग्रहणकर सकता है ! अवश्य ही यह कोई विशेष युक्ति जानता होगा ; क्योंकि चन्द्रमाकी कीर्ति उसकी कलाके ही कारण होती है ; उसी प्रकार इसके मुखकी कांति ही इसकी कलाकी साक्षी दे रही है।

वह आठ वर्षका बालक क्या करता है ! उसकी चेष्टा देखनेके लिये लोग अधीर हो उठे। वे उसके सम्बन्धमें अनेक प्रकारके विचार कर ही रहे थे कि इसी बीच अभयकुमारने गीला गोबर मंगाया और उसे



अभय कुमारने तुरन्त उसे उठाकर उसमेसे वह अंगूठी निकालली।   पृष्ठ ३०७

उस मुद्रिका पर फेंका ! गोबर पूरी तरह उस मुद्रिका-पर पड़नेसे वह ढँक गई। इसके बाद उसे सुखानेके लिये ऊपरसे अग्नि डाली गई ; क्योंकि गोबरके सूख जानेसे वह मुद्रिका उसमें चिपक जायगी। अतः घासका जलता हुआ पूला उसपर फैंका गया, उससे वह गोबर सूख गया ; और उसमें वह अंगुठी भी चिपक गई।

इसके बाद एक पासहीके तालाबमेंसे पानीकी नाली निकालकर उसके द्वारा पानीसे वह कुआ भरना आरम्भ किया। फलतः ज्यों-ज्यों पानी भरता गया, त्यों-यों वह गोबरका उपला-कण्डा तैरता हुआ ऊपर आने लगा। अन्तमें तालाबके पानीसे कुआ भर जानेपर कण्डा तैरकर ऊपर आ गया और अभय-कुमारने तुरन्त उसे उठाकर उसमेंसे वह अंगुठी निकाल ली।

लोग उसकी इस अद्भुत युक्तिको देखकर चकित रह गये। वे परस्पर कहने लगे, "अरे ; यह एक छोटासा बालक होते हुए भी इतनी अद्भुत बुद्धि रखता है ; हमलोग बूढ़े हो गये और हमारे बाल सफेद हो जानेपर भी किसीमें इतनी चतुराई न आ सकी। दीर्घकाल पर्यन्त विचार करके भी हम जो

काम न कर सके ; उसे इस छोटेसे बालकने सहज ही करके दिखा दिया ! यह छोटासा होनेपर भी कितनी अद्भुत बुद्धि रखता है ? बुद्धिके वैभवके कारण यह छोटासा होनेपर भी हम सबसे आगे बढ़ गया है। संसारमें दीपककी छोटी सी ज्योति क्या अन्धकारके समूहका नाश नहीं कर देती ? उर्दके दाने जैसा चिन्तामणिरत्न क्या मनोवाञ्छित फल नहीं प्रदान करता ? छोटा-सा इन्द्रका वज्र जब बड़े-बड़े पर्वतोंको भेद सकता है ; तो यह छोटासा बालक क्यों अद्भुत शक्तिशाली नहीं हो सकता ? संसारमें तो सद्गुणीकी ही पूजा होती है ; अवस्थामें वृद्ध हो जाने पर भी ज्ञानहीन मनुष्य कैसे पूज्य हो सकते हैं ? बड़े और ऊँचे तो पहाड़ भी होते हैं ; किन्तु उन्हें कौन पूजता है ?

उस छोटेसे बालककी ऐसी चतुराई देखकर सब लोग प्रसन्न हो गये। इतनेहीमें राज पुरुषोंने उसका यह कार्य देखकर राजाके सम्मुख सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होंने कहा :—"महाराज ! कोई परदेसी जैसा जान पड़नेवाला कुमार आपकी घोषणाको सफल करनेमें समर्थ हो गया है। उसने उस खाली कुएँमेंसे किनारे पर बैठे ही बैठे मुद्रिकाको बाहर

निकाल लिया है। उसके लिये अब आपका क्या हुक्म है?"

राजपुरुषोंके वचन श्रवणकर राजा प्रसन्न हुआ और उसने आज्ञा दी कि, "जाओ, उस कुमारको शीघ्रतासे लाकर मेरे सामने हाजिर करो।" राजाका हुक्म होते ही वे लोग तीरकी तरह छूटे।

थोड़ी ही देरमें वह अंगुठी निकालनेवाला आठ वर्षका कुमार मगधराजके सम्मुख राजपुरुषोंके साथ उपस्थित हुआ। उसने अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति एवं आदर पूर्वक राज सभामें आकर पिताको प्रणाम किया। बालकने अपने पिताको देखा, क्योंकि वह जान चुका था कि ये राजा ही मेरे पिता हैं। अतः एक ओर जहाँ वे राजा थे; वहीं वे उसके पिता भी थे; अतएव उनके प्रति उस विनयशील पुत्रने अधिक भक्तिभाव प्रकट किया। उधर उस कुमारको देखते ही स्वाभाविक रूपसे नरपतिके हृदयमें भी स्नेहके अंकुर प्रकट हो चले। जाति स्मरण-ज्ञानकी तरह हृदय बिना देखी हुई वस्तुको भी पहचान लेता है। उदयाचल पर्वतपर रहनेवाले चन्द्रमाके सम्मुख जिस प्रकार बुधग्रह शोभित होता है; उसी प्रकार वे पिता पुत्र सुशोभित हो

उठे। प्रसन्न हृदयसे राजाने उस कुमारसे पूछा, हे बुद्धिमान्! तेरे इस अपूर्व बुद्धि कौशल्यको देखकर मैं प्रसन्न हुआ हूँ। तेरी अवस्था इतनी कम होने पर भी अपनी बुद्धिके प्रभावसे तूने आज सबको जीत लिया है। घोषणाके अनुसार तू पुरस्कार पानेका भी अधिकारी है; किन्तु जरा यह तो बतला कि तू कहाँसे आ रहा है? तेरी चरण-रजसे पवित्र हुआ देश कौनसा है?

भेदका स्पष्टी करण अब प्रकट होने जा रहा था। अतः राजाकी वाणी सुनकर कुमारने प्रत्युत्तरमें निवेदन किया कि:—"महाराज! मैं तो बेन्ना-तट नगरका निवासी हूँ। अभी मैं वहींसे आ रहा हूँ।"

बेन्नातटका नाम सुनते ही राजा एकदम चौंका। मानों उसे एकदम किसी भूली हुई बातका स्मरण हो आया हो, इस प्रकार थोड़ी ही देरमें उसे आठ वर्ष पहलेकी उस वणिक कन्या नन्दाके साथ किया हुआ विवाह एवं विलास क्रीड़ाकी याद आई। वह सोचने लगा, "उस गर्भवती बालाकी मैंने राज-काजमें फँसकर आजतक कोई खबर ही नहीं ली! न जाने, आज उसकी क्या दशा होगी!"

अपनी पूर्वकालकी प्राणप्रियाका स्मरणकर राजा मनमें उदास हो गया। फिर भी उसने उस कुमारसे कहा :—"कुमार! तेरे चले आनेसे चन्द्रमा द्वारा त्यागे हुए आकाशकी तरह वह नगर आज शून्य हो गया होगा। यहाँ भी तू कदाचित् किसी भाग्य योगसे ही आ पहुँचा है।" मगधराजने कहा :—

"स्वामिन! चन्द्रमाद्वारा त्याग कियाहुआ क्यों? यह उक्ति कुछ ठीक नहीं जान पड़ती, क्योंकि मेरे यहाँ आ जानेपर भी नगर तो ज्योंका त्यों ही है। रत्नाकरमेंसे यदि एकाध रत्न चला भी जाय तो उससे रत्नाकरकी शोभा नष्ट नहीं होती। जुगनुओंके चले जानेसे भला, आकाशकी शोभामें कोई न्यूनता आ सकती है?" कुमारने कहा :—

उसके इन चतुराई भरे शब्दोंको सुनकर राजा मनमें बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने सोचा, "अहो! बालक होते हुए भी इसकी वाणीमें कितनी चतुराई है? यह बृहस्पतिको भी परास्त करने जैसा चतुर जान पड़ता है। मेरे चार सौ निन्यानवे मन्त्रियोंसे भी यह बालक सर्वश्रेष्ठ हो सकेगा। अपनी बुद्धिके प्रभावसे मेरे शत्रुओंको भी यह भयभीत करके राज्यकी पूर्ण रक्षा कर सकेगा। साथ

ही इसे देखते ही मेरे हृदयमें स्नेहभाव जागृत हो रहा है। स्नेह पूर्वके ऋणानुबन्धके साथ कुछ सम्बन्ध अवश्य रखता है; क्योंकि विना पूर्व सम्बन्धके स्नेह कैसे उत्पन्न हो सकता है?

———

बत्तीसवाँ परिच्छेद

अभयकुमार मुख्य मन्त्री!

—::❀::—

"वरं बुद्धि र्न सा विद्या, विद्यातो बुद्धिरुत्तमा।
बुद्धि हीना विनश्यन्ति, यथा ते सिंहकारका:" ॥१॥

अर्थात्:—"संसारमें विद्याकी अपेक्षा जिसमें बुद्धि बल हो, वही श्रेष्ठ कहलाता है। यदि वह विद्वान् हो और उसमें बुद्धि-बल न हो तो सिंह के खिलौने बनानेवालेकी तरह नष्ट हो जाता है।"

मगध राजने पूछा:—"कुमार! तुम उस नगरके रहनेवाले भद्र सेठको पहचानते हो?"

अब भेदकी गाँठ धीरे-धीरे खुल रही थी। अतः महाराजका प्रश्न सुनकर कुमारने गम्भीर मुखमुद्रा बनाकर उत्तर दिया, "हाँ, नाथ! मैं उन्हें पहचानता हूँ। जिस प्रकार आपके साथ मेरा समागम हुआ है; उसी प्रकार उनके साथ भी मेरा दीर्घ काल का परिचय है। मैं ही क्या; बल्कि जिनके हाथोंसे निरन्तर दानकी ही वर्षा होती-रहती है, उन भद्र-हस्तीके समान भद्र श्रेष्ठीको भला कौन नहीं पहचानता होगा?"

उनकी नन्दा नामकी एक पुत्री थी; वह भी कुशल तो है न? राजाने पूछा :—

"कुशल? जिसे बाल्यावस्थामें विवाह करके पतिने त्याग दिया और आज कई वर्ष बीत गये; किंतु जो स्वामी (पति) उसे याद भी न करे, उस अभागिनी बालाके लिये आप ही बताइये कि कुशल कैसे हो सकती है?" बालकके वचन सुनकर राजाके मनमें अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ। उसका मुख गम्भीर हो गया। राजाने दुःखित होकर कहा :—"वह कैसे सुखी हो सकती है? तेरा कथन यथार्थ है वत्स!"

"किन्तु इतने पर भी वह अपने पतिका नाम स्मरण करती हुई अभीतक जीवित है; क्योंकि

'जीवित नर भद्रा प्राप्त करता है' किन्तु उसके स्वामीको उसकी चिन्ता कहाँसे हो सकती है ? मैं आया तबतक तो उसके स्वामीने उसे नहीं बुलवाया था।"

"वह नन्दा गर्भवती थी। क्या उसके बालक हुआ ? यह यदि तुम्हें पता हो तो बतलाओ !" राजाने मुद्दे की बात पूछी।

"महाराज ! उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ है। जो रूप, गुण और बुद्धिमें मेरे समान ही है। मेरे साथ उसकी पूर्ण मित्रता भी है।"

"तो उसका नाम क्या रखा है ?" राजाने पूछा :—

"युद्ध भूमिमें जब आप अपनी तलवार खींचकर शत्रुपर टूट पड़ते हैं ; तब वह निर्बल शत्रु आपसे क्या याचना करता है ?"

"जीवनकी ! अभयदानकी !" राजाने कहा।

"तो उसका भी यही नाम है। अर्थात् उसे अभयकुमार ही समझ लीजिये और वह भी अवस्थामें मेरे जितना ही बड़ा है। ठीक मेरे जैसा ही है। महाराज ! हम दोनों प्राण-प्रिय मित्र हैं !" कुमारने कहा।

छोटेसे बालकका इस प्रकारका बुद्धिवाद सुनकर

राजसभा खचाखच भर गई थी ; फिर भी वहाँ अपूर्व शान्ति थी। बड़े-बड़े राज-मान्य मंत्री एवं अधिकारीगण इस कुमारका बुद्धि कौशल्य देख-कर आश्चर्य चकित हो रहे थे। उस छोटेसे कुमारकी बोलनेकी चतुराई, निर्भयता और गम्भीरतापर सभी मुग्ध हो रहे थे। असंख्य मनुष्योंकी भीड़ एकत्र होते हुए एवं अपरिचित मानवोंके समूहके बीच एक बड़े महाराजाके सम्मुख वह निर्भीक होकर बोल रहा था। बिना घबराये सब बातोंका खुलासा कर रहा था। लोग उसकी बुद्धिमानीकी प्रशंसा कर रहे थे।

उसकी बात सुनकर सहसा महाराजने पूछा :—जब तेरी उससे इतनी घनिष्ट मित्रता है, तो तू उसे छोड़कर यहाँ कैसे चला आया ?"

"मैं उसके साथ ही आया हूँ महाराज ! वह और उसकी माता नगरके बाहर पास ही के उद्यानमें ठहरे हुए हैं !" कुमारने अधिक स्पष्टीकरण किया।

"तो क्या वे यहाँ आये हुए हैं ? अच्छा ‥ ।" राजाने हर्षित हृदयसे पूछा।

"हाँ, महाराज ! नगरके बाहर उद्यानमें ही हैं !" राजाने अपने मंत्रियोंको नन्दाके लिए प्रवेश

महोत्सवकी तैयारी करनेकी आज्ञा दी और वह स्वयं भी अभयकुमारको साथ लेकर उद्यानमें जानेके लिए तैयार हुआ।

इधर अभयकुमारने फुर्तीसे आगे बढ़कर माताको यह हर्षका समाचार सुनाया। अतः अनेक प्रकारके तर्क-वितर्क करती हुई माता नन्दा पुत्रके इस विजय समाचारको सुनकर प्रसन्न होती हुई वस्त्राभूषण धारण करने लगी; किन्तु अभयकुमारने माताको ऐसा करनेसे रोका; क्योंकि पतिके परदेशमें होनेपर स्त्रीके लिए उत्तम वस्त्राभूषण धारण करना उचित नहीं। सूर्यके अन्य भूभागमें होनेपर कमलिनी भी विकसित नहीं होती।

बन्धुके समान पुत्रके इन शब्दोंको सुनकर नन्दा अपने पूर्व वेशमें ही बैठी रही; क्योंकि बालकके मुखसे हितकारी वचन सुनकर बड़े-बड़े विद्वान भी उसे स्वीकार करते हैं।

अंततः बड़े ही ठाठ-बाट एवं समारोहके साथ मगधराज परिवार सहित नगरके बाहर जहाँ नन्दा ठहरी हुई थी उस उद्यानमें पहुँचे और वहाँ उस मलिन वस्त्रधारिणी, अञ्जन रहित एवं उदास चित्तवाली नन्दाको उन्होंने देखा। उसे देखते ही राजाने मनमें

विचार किया कि :—"अरे रे ! मेरे वियोगमें यह बेचारी किस प्रकार दुबली हो गई है ! इसकी सारी प्रसन्नता नष्ट हो गई है। हाय ! मैंने इसे त्यागकर अच्छा नहीं किया। बेचारी स्त्रियोंके लिए तो पति ही सब कुछ होता है ! पतिके बिना सती नारीका जीवन साध्वीके समान अत्यन्त सादा होता है और ऐसी सती-साध्वियोंके कारण ही यह भारतवर्ष श्रेष्ठ कहलाता है।" इस प्रकार दुःखित और उदासीन नन्दाको देखकर उदासचित्त मगधराज अपने परिवार सहित उद्यानमें आकर नन्दासे मिला और उसने उसे क्षमा याचना पूर्वक सान्त्वना देते हुए कहा :—

"प्रिये ! मैं राजकाजमें फँसकर तुझे भूल गया था ! मेरे इस अपराधको तू क्षमा कर दे। यों कहते हुए राजाने उसे धैर्य प्रदान किया। पुनः पूछा कि अपना वह पुत्र कहाँ है ?"

नन्दाने मुसकुराते हुए कहा :—"यह अभयकुमार ही हमारा वह पुत्र है, स्वामिन् !" दूर खड़े हुए उस बुद्धिमान बालककी ओर संकेत करते हुए नन्दाने कहा :—

राजाने उसे निकट बुलाकर कहा :—"अरे वत्स !

अबतक तो तूने मुझे भ्रममें ही रक्खा। भला ऐसा तूने क्यों किया ?"

"पिताजी ! मैंने सत्य ही कहा है ! क्योंकि मैं तो सदैव माताके हृदयमें ही बसता हूँ। इसीलिये मुझे उस रूपमें अपना परिचय देना पड़ा।" अभय-कुमारने खुलासा किया।

राजाने नन्दाकी ओर देखते हुए कहा :—"निश्चित ही तेरा पुत्र महान् भाग्यशाली और बुद्धिमान है। तेरे उस दिव्य स्वप्न एवं दोहदके अनुसार ही यह उत्पन्न हुआ है। यह छोटा-सा होनेपर भी इसकी अद्भुत बुद्धिने मेरे सारे नगरको ही परास्त कर दिया है। सबलोग इसकी प्रशंसा कर रहे हैं। क्या तुझे अपने इस चतुर पुत्रकी बुद्धिका पराक्रम ज्ञात हुआ ?" राजाने नन्दासे पूछा। उसके हृदयमें पुत्र प्रेमका वात्सल्य-भाव उमड़ रहा था। आज आठ वर्षके बाद एक दूसरेको देखकर दोनोंके हृदय हर्षित हो रहे थे।

नन्दाने पुत्रकी ओर देखकर हँसते हुए पूछा :— "किस पराक्रम की बात आप कह रहे हैं ?"

"यह तो अभीसे मेरा मुख्यमन्त्री बन गया है। मेरे चार सौ निन्यानवे मन्त्रियोंमें यह पाँच

सौवाँ मुख्यमन्त्री बन गया हैं। साथ ही मेरे आधे राज्यका स्वामी भी हो गया है।"

इस प्रकार नन्दासे मिलकर प्रसन्न चित्तसे उसे अपने पट्टहस्तीपर निधानकी तरह स्थापित करके अभयकुमार सहित मगधराजने नगरमें प्रवेश किया। जिस प्रकार जयंत सहित इंद्राणी प्रवेश करती है, उसी प्रकार पुत्र सहित नन्दाको देखकर सभी प्रजा-जन आनन्दित हो गये। उसके रूप, गुण एवं सौभाग्य पर सभीको आश्चर्य हुआ। उस प्रवेश उत्सवको देखनेके लिये सारा नगर ही उलट पड़ा। जहाँ-तहाँ हजारों मनुष्योंके समूह दिखाई देने लगे। कोई झरोखेमें तो कोई छज्जे अथवा अटारी या छत्त-चाँदनी परसे वह दृश्य देख रहा था। कितनी ही स्त्रियाँ मन ही मन नन्दा जैसे सौभाग्यकी इच्छा करने लगीं। कई पुरुष नन्दाके भाग्यकी प्रशंसा करने लगे। कोई महाराजके भाग्यको सराहने लगे। इस प्रकार राजगृहीकी शोभा निरीक्षण करती हुई नन्दा अपने पुत्र सहित राज प्रासादमें आ पहुँची।

राजभवनमें आते ही नन्दाने अपनी सासुओंके चरणोंमें मस्तक नवाँकर प्रणाम किया। उन्होंने उसे शुभाशीर्वाद दिया। "हे वत्से! तू दीर्घकाल-

पर्यन्त अपने पतिके लिये सौभाग्यरूप बनी रहकर अपने पुत्र सहित सदैव सुख भोगती रहना ! और हे पुत्र अभय ! तू भी राज्यका स्वामी बनकर चिरञ्जीवी हो !"

इसके बाद मगधराजने रूप-गुण सम्पन्ना नन्दाको अपनी समस्त स्त्रियोंमें पटरानीके पदपर स्थापित किया। उत्तम कुलमें जन्म लेकर अभय परिवारको शोभित करनेवाली नन्दा मगधराजकी पटरानी तो बनी ही; साथ ही उस वीर और बुद्धिमान पुत्रकी माता कहलानेका सौभाग्य भी उसे प्राप्त हुआ।

अभयकुमारको भी अपने पाँच सौवें प्रधानमंत्रीके पदपर प्रतिष्ठितकर मगधराजने अपनी घोषणाके अनुसार आधा राज्य भी दिया; किन्तु अभयकुमार अपना ही पुत्र होनेसे उसे पुत्री तो दी ही नहीं जा सकती थी; अतएव राजा विचार करने लगे कि इस शर्तको कैसे पूरा किया जाय ?

तैंतीसवाँ परिच्छेद

प्रलोभन

—::❀::—

एक पुरुष हाथमें भिक्षापात्र लेकर राजगृही नगरीमें घूमता-फिरता दिखाई दे रहा था। उस साधु पुरुषका रूप देखकर मोहित हो जानेवाली नगरकी नारियाँ पात्र भर-भरकर उसे भिक्षा देने लगीं। यद्यपि उसे मनचाही भिक्षा मिल रही थी; फिर भी वह बहुत थोड़ी और नीरस भिक्षा ही ले रहा था। अभी कुछ ही दिनोंसे उसने राजगृहीको पावन किया था। नगरके लोग उस भिक्षुकको उसकी पूर्व स्थिति जाननेके लिये अनेकबार पूछते; किन्तु वह वैराग्यमें रङ्गा हुआ बहुत ही कम बोलता और वह भी केवल काम पुरता ही। उस पुरुषका वैराग्य बड़ा ही अद्भुत था। उसके वैराग्यमें आडम्बर या दम्भ-कपटका नाम तक न था; किन्तु आत्मामें तो वैराग्यकी भावना ही लहरें ले रही थीं। लोगोंको दिखाने या नाम-

वरी करने के लिये उसका साधुवेश नहीं था; किन्तु त्यागके विकट मार्गका यथार्थ रूपमें पालन कर किसी सत्यकी खोज करना उसका लक्ष्य था। इस अपूर्व ध्येयको सिद्ध करनेके लिये ही उसने ऋद्धि-सिद्धिका एवं वैभवका त्याग किया था। उसे संसार या यहाँके मनुष्योंकी जरा भी पर्वाह नहीं थी। त्याग और वैराग्यकी भावनामें आगे बढ़कर बाहरी मोह बन्धनोंको तोड़नेके लिये अनेक प्रकारके प्रयत्नकर रहा था।

उस भिक्षुकके वस्त्र गेरुए रङ्गके थे। हाथमें तूँबीका बना हुआ भिक्षा-पात्र था। चाहे जितना तप करके भी वह सच्चे सुखको खोजनेकी जिज्ञासा रखता था। उसके बाद वह संसारको उसका लाभ पहुँचानेके लिये आतुर हो रहा था। अतः अनेक प्रकारके तप करके कष्ट सहन करते हुए किसी एकान्त स्थानमें आसन जमाकर ध्यानस्थ दशा प्राप्त करते हुए उसने बोधिसत्व * प्राप्त करनेका निश्चय किया था। उस ज्ञानसे संसारको लाभ पहुँचाकर कुछ

* किसी प्रकारका ज्ञान या अमुक मनका माना हुआ एक मन्तव्य।

नया कार्य कर दिखानेको उत्कट भावना उसके हृदयमें जागृत हो रही थी।

राजगृही नगरीमें भ्रमण करते-करते वह भिक्षुक राजमहलके सामने से जा रहा था। उसका तेज प्रभाव और गौरव अलौकिक था। वह साधु त्यागी एवं जीर्ण वस्त्रधारी होते हुए भी अपनी ओजस्विताके कारण सबका ध्यान आकर्षित कर रहा था!

मगधराज बिम्बिसारकी दृष्टि भी अचानक उस पर पड़ी; और उसे देखते ही उसके मनमें भक्ति-भावना जागृत हुई। उसने विचार किया कि यह इतना महान भाग्यशाली होते हुए भी भिक्षुककी दशामें है। पता नहीं; संसारके समस्त सुखोंको त्यागकर न जाने किस दुःखके कारण उसने यह वैराग्य (त्याग) का मार्ग ग्रहण किया है। महाराज इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि इस बीच वह महलके सामने होकर निकल गया। भला, त्यागी पुरुषोंको किसकी पर्वाह हो सकती है? संसारकी किसी भी वस्तुकी जिसे वाञ्छा नहीं है और जीवनके प्रति जिनका मोह नहीं रहा है ऐसे महापुरुष आत्मकल्याणके सिवाय दूसरा कौनसा मार्ग स्वीकार करेंगे? धन्य है ऐसे त्यागी महान पुरुषों को!

मगधराज उस महान पुरुषके दर्शनार्थ उसके पीछे-पीछे चल दिये। उस समय भोजन कार्यसे निपट कर वह भिक्षुक एक वृक्षके नीचे आसन जमाकर बैठा हुआ था। राजाने जाकर उसे प्रणाम किया। साथ ही तीक्ष्ण दृष्टिसे उस ध्यानमग्न साधुकी स्थितिका अवलोकन किया। उसके वैराग्यके ऊपरी या आंतरिक होनेकी परीक्षा करनेकी उसे इच्छा हुई। उसका नाम-धाम जाननेकी इच्छासे वह ध्यानस्थ पुरुष जागृत हो तब उससे पूछनेका विचार किया।

थोड़ीही देरमें ध्यानमुक्त होनेपर उस साधुने राजाकी ओर देखा। राजाने उससे सुखसाता पूछी:— परिवार सहित आये हुए मगधराजको वह जानता था। अतः विशेष परिचयकी आवश्यकता नहीं थी।

राजाने पूछा :—"महाराज! आपका नाम-ग्राम क्या है?"

"मेरा नाम? मैं इस संसारमें कौन हो सकता हूँ? शरीर या आत्मा? शरीर तो नाशमान है। ऐसे अनेक शरीर यह आत्मा धारण करतीं रहती है। तभी नामका संस्कार भी अलग-अलग ही होता है।" उस त्यागी पुरुषने उत्तर दिया। उसके इन वचनोंको सुनकर राजा विचारमें पड़ गया।

"फिर भी इस शरीरको लोग किस नामसे सम्बोधन करते हैं ? मैं आपका वही नाम जानना चाहता हूँ।" राजाने फिर पूछा :—

"इस शरीरको लोग सिद्धार्थके नामसे पहचानते हैं। इसीप्रकार गौतमके नामसे भी इसे लोग जानते हैं, राजन् !"

"हे पूज्य ! रूप, लावण्य एवं प्रभावसे युक्त होते हुए भी आपने युवावस्थामें ही ऐसा कठोर व्रत किस दुःखके कारण ग्रहण किया है ?"

"मैंने किसी भी दुःखके कारण इस व्रतको स्वीकार नहीं किया। वरन् आंतरिक इच्छासे ही सत्य वस्तुकी खोजके लिये मैंने इस व्रतको अंगीकार किया है, राजन् !"

"ऐसा तप तो वृद्धावस्थामें ही शोभा दे सकता है ? अथवा जिसको संसारमें किसी प्रकारका दुःख हो, अर्थात् धन वैभव या स्त्री आदि प्राप्त न हो सकते हैं ; उसीके लिये यह हो सकता है ?"

ये सब तो आत्माको अधोगतिमें ले जानेवाली वस्तुएँ हैं ! इन उपाधियोंमें फँसा हुआ जीव मनुष्य आत्मकल्याणका मार्ग खोज ही नहीं सकता।"

"तब तो महाराज ! निश्चित ही आपको किसीने

बहकाकर धोखा दिया है। यह संसार तो स्वर्गका भण्डार ही है। जिसप्रकार देवता लोग देवांगनाओंके साथ अनेक प्रकारके सुख भोग करते हैं; उसीप्रकार मनुष्य भी सुन्दर ललनाओंके साथ नाना प्रकारकी क्रीड़ाएँ करता हुआ यहीं स्वर्गका सुख भोग सकता है। ऐसे अमूल्य सुखको छोड़कर आपने किस दुःखके कारण यह वेष धारण किया है? क्या आपके पास धन-दौलत नहीं है; इसीलिये आप साधु बनें हैं? युवावस्था तो संसारमें अनुपम सुख एवं मनचाहे मनोरथको प्रदान करती है। इस अवस्थामें स्त्रियोंके साथ स्नेह सम्बन्ध करना और नाना प्रकारके गहने-कपड़े धारण करना तथा नित्य नये-नये मन चाहे भोजन करना और इन सबके लिये उद्योग करके धनोपार्जन करना ही उचित कहा जा सकता है।" इसप्रकार राजाने सांसारिक सुखोंका वर्णन और समर्थन करना आरम्भ किया।

साधुने कहा :—"इन क्षणिक सुखोंके पीछे बहुत बड़ा दुःख छिपा हुआ है, राजन्! युवावस्था केवल भोगोंमें ही व्यर्थ बिता देनेके लिये नहीं है। वरन् आत्मकल्याण प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करना ही इस अवस्थाका प्रधान धर्म है।" क्योंकि :—

"स्नेह मूलानि दुःखानि, रसमूलाश्च व्याधयः।
लोभ मूलानि पापानि, त्रीणि त्यक्त्वा सुखीभव ।।

"अर्थात् :—राजन् ! संसारमें स्नेह ही दुःखका मूल है ! उत्तमोत्तम मिष्टान्न भोजन ही व्याधिके मूल हैं। इसीप्रकार समस्त पापोंका मूल लोभ है। अतएव इन तीनोंको त्यागकर सुखी होना उचित है।"

यह सुनकर राजाने कहा :—"नहीं, महाराज ! ये विचार तो आप वृद्धावस्थामें करना। यदि आपकी इच्छा हो तो मैं अभी आपको अपने राज्यमें उच्च पद प्रदानकर धनवान बना सकता हूँ। किसी योग्य कन्यासे आपका विवाह करा सकता हूँ। मेरी कृपासे आप मन चाहे भोग भोगिये और सुखी होइये।"

साधुने कहा :—"किन्तु तेरी वह कन्या और लक्ष्मी तो मेरे लिए तृणके समान है। संसारकी मायाका त्याग करनेवाले साधु इस प्रकारकी तुच्छ वस्तुओंकी कभी इच्छा नहीं करते ! जिसके अन्तरमें वैराग्यका रङ्ग जम गया है; उस उत्तम पुरुषको तेरे ये प्रलोभन कभी विचलित नहीं कर सकते !"

राजाने कहा :—"परन्तु महाराज ! मैं तो आपके हितके लिये ही कह रहा हूँ ! क्यों व्यर्थके लिये कष्ट उठाकर आप इस कायाको सुखा रहे हैं?

युवावस्था तो सुखभोग करने के लिये है ; उसे दुःख-कष्टमें क्यों बिता रहे हैं ?"

साधुने कहा :—"जो कुछ करने योग्य है, वह युवावस्थामें ही कर लेना चाहिये। जो लोग युवावस्थामें अनेक प्रकारके सांसारिक बन्धनोंमें फँस कर वृद्धावस्थामें धर्म साधन करनेकी इच्छा करते हैं, उन्हें क्या पता है कि वह वृद्धावस्था कैसी और कब आयेगी ? पानीके बुल-बुलेके समान इस जीवनका तो क्या भरोसा ?"

राजाने कहा :—"किन्तु आपके लिये इस युवावस्थामें ऐसा कष्ट उठानेका कोई कारण भी तो होना चाहिये ?"

साधुने कहा :—"केवल किसी नवीन दिव्य वस्तुको प्राप्त करनेके लिये, सत्य-ज्ञान प्राप्तिके उद्देश्यसे और उसे प्राप्तकर संसारका उद्धार करनेके लिये !"

राजाने कहा :—"तो क्या वह ज्ञान संसार या गृहस्थावस्थामें रहते हुए नहीं प्राप्त हो सकता ?" साधु सिद्धार्थकी दृढ़ता और उसके त्यागके प्रति महाराजके मनमें अत्यन्त सम्मान और श्रद्धा हो गई।

साधुने कहा:—"रात-दिन संसारकी मायामें वशीभूत होकर एवं विषय वासनामें लगे हुए मनुष्योंको

ऐसी दुर्लभ वस्तु कदापि नहीं मिल सकती। वह कोई रास्तेमें नहीं पड़ी हुई है कि तत्काल उठा ली जाय! महान कष्ट एवं अनेक प्रकारके तप और ध्यान करनेपर ही उस सत्य ज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है।"

राजाने कहा:—"तो क्या आपको सत्य ज्ञान प्राप्त हो गया है? यदि सत्य ज्ञान प्राप्त हो जाय तो अवश्य आप मुझे अपना भक्त बनाइये। उद्धार का मार्ग मिल जाय तो अवश्य मुझे भी उस ओर ले जाइये। मेरा स्थान पवित्र कीजिये।"

"साधुने कहा! तेरा निवेदन मुझे स्वीकार है; किंतु अभी सत्य ज्ञान प्राप्त करने में बहुत देर है। जैसाकि होना चाहिए उसका पूर्ण विश्वास हो जानेपर ही मैं तुझे उस मार्ग पर लेजा सकूँगा। यद्यपि बोधिसत्व तो मुझे प्राप्त हो चुका है; किंतु फिर भी परिपूर्ण हुए बिना मैं संसारको उसका लाभ नहीं दे सकता। अतः सत्य-ज्ञानकी परिपूणताके पश्चात् यदि तेरी इच्छा होगी तो अवश्य तुझे मैं अपना प्रथम उपासक बनाऊँगा!" इस प्रकार सिद्धार्थने उसकी प्रार्थना स्वीकार की।

फिर भी उस साधुका नाम-धाम जानकर मगधराज-

ने उसके मनकी परीक्षा करनेके लिए अनेक प्रकारके प्रयत्न किये। वाणीके द्वारा अनेक प्रकारके प्रलोभन भी दिये; किंतु उस पुरुषकी दृढ़ता, वैराग्यमय भावना अचल ही रही। अतः बिंबिसारके प्रलोभनोंका कुछ भी प्रभाव न पड़ सका! और उसे विश्वास हुआ कि उसके अन्तरकी वैराग्य भावना शुद्ध थी। लोगोंको दिखानेके लिए केवल वाह्याडम्बर घटाटोप नहीं था। इसीलिए उस महापुरुषके प्रति इसके मनमें दृढ़ श्रद्धा हो गई। उसके निकट परिचयमें आने और उसके सत्य-ज्ञानसे लाभ उठानेके लिए राजाके मनमें प्रबल भावना उत्पन्न हो चली और उसी समयसे वह उसका भक्त बन गया। अनन्तर भक्ति पूर्वक सिद्धार्थको करबद्ध नमन-करके महाराज बिम्बिसार सपरिवार मन ही मन उस महापुरुषका स्मरण करता हुआ नगरमें चला गया। सिद्धार्थ साधु भी अपने ध्येयकी प्राप्तिके लिए वहाँ से अन्यत्र चल दिया।

—०—

चौतीसवाँ परिच्छेद

शिकार खेलनेके लिये

—: : ❀ : :—

"तादृशी जायते बुद्धि, र्व्यवसायश्च तादृशाः।
सहायास्तादृशा ज्ञेया, यादृशी भवितव्यता" ॥१॥

अर्थात्—जैसे भवितव्यता (होनहार) होती है, वैसी ही बुद्धि उत्पन्न हो जाती है और उसी प्रकार के कार्य करनेकी भावना पैदा होती है। एवं उसी प्रकारके सहायक भी मिल जाते हैं।

मगधराज बिम्बिसारको शिकारका शौक तो था ही; अतएव वे प्रतिदिन घोड़ेपर सवार होकर वनमें जाते थे। कभी अकेले जाते तो कभी नौकर-चाकरोंके साथ भी वनकी शोभा देखनेके लिए चलेजाते। उस शोभाको देखते हुए वे कभी-कभी शिकारके लिए भी दूर जंगलमें चले जाते थे; क्योंकि नीति शास्त्रमें कहा है कि—"यौवन की आँधी, सम्पत्ति, प्रभुत्व, और अविवेक, इन चारोंमेंसे एक भी यदि होतो वह अनर्थ

कर डालता है। तो फिर जहाँ चारों ही विद्यमान हों, वहाँ के अनर्थ का क्या कहना ?"

संसारी मनुष्य सवगुण सम्पन्न नहीं होता। कुछ न कुछ दोष तो उसमें अवश्य होता ही है। मगधराज श्रेणिक में यदि राज्य शासन चलानेकी बुद्धि, शक्ति, कार्यदक्षता, धैर्य, शौर्य एवं गम्भीरता आदि अनेक व्यवहार दक्षता के गुण विद्यमान थे; तो इन्हींके साथ मृगया अथवा शिकार खेलनेका एक भयंकर अवगुण भी था।

एकदिन महाराज बिम्बिसार अपने कर्मचारियोंके साथ शिकार खेलने वनमें गये और अनेक प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते हुए वनमें बहुत दूर निकल गये। वहीं पर एक दूतने आकर यह समाचार सुनाया कि :—"महाराज ! उस ओर बहुतसे मृग नाच-कूदकर रहे हैं; अतः उधर शिकार करनेकी आपको सुविधा होगी। आप उधर पधारें तो ठीक होगा।"

यह सुनते ही राजाने अपने घोड़ेकी लगाम उसी ओर मोड़ दी। फलतः वह पवन वेगी अश्व बड़े ही वेगसे दौड़ पड़ा। राजाके पीछे धनुष्य, बाण, भाले, आदि लेकर उनके नौकर-चाकर भी थे। मानों फिरभी भयंकर शत्रुपर आक्रमण करने के लिये शस्त्रों से सजी

हुई एक छोटी-सी सेना अपने वैरीका बदला लेने के लिये जा रही हो ?

दूरसे घोड़ोंकी खट-खटाहटका शब्द सुनते ही वे सब हिरन चौंक पड़े और अपने विशाल नेत्रोंसे दूर से आती हुई शत्रु सेनाको देखकर जोरोंसे भागने लगे। इस प्रकार भयके कारण वे सब कूदते-फाँदते हुए न जाने कहाँ अदृश्य हो गये !

मगधराजने दूरसे उन्हें भागते हुए देख लिया था; अतएव उन्होंने अपने अश्वकी चाल बढ़ाई; और उनका पीछा किया ; किंतु हिरन तो चारों ओर भाग गये; क्योंकि उनकी दौड़नेकी गति तीव्र होनेसे वे महाराजके हाथ न आ सके। तब भला, वे धनुर्धारी श्रेणिक किसपर तीर-कमान चलाते ? अन्तमें घोड़ेको बुरी तरह भगानेपर आखिर एक साधारणसी हिरनी उनके हाथ आ गयी ! पर दैवयोगसे वह गर्भिणी थी ; अतः दौड़ते-दौड़ते विचारी थक गई थी। अब उसमें भागनेकी शक्ति नहीं थी। अन्ततः वह थककर लोथकी तरह दीन भावसे उस तीर कमान लगानेवाले शिकारीकी ओर इसप्रकार देखने लगी मानों अपने प्राणोंकी भिक्षा माँग रही हो ! किंतु उस भोली हिरणीकी आतुर आँखोंका भाव वह पाषाण

हृदयी पुरुष न पहचान सका। उस शिकार प्रेमीको उसके जीवनकी पर्वाह भी नहीं थी। भला; शिकारका प्रेमी अपने हाथमें आई हुई शिकारको कभी जाने दे सकता है?

इसप्रकार उन मृगोंके पीछे पड़े हुए राजाने हिरनीपर दृष्टि पड़ते ही धनुष पर चढ़ा हुआ तीव्र बाण चला ही तो दिया! उस प्रबल वेगसे छुटे हुए तीरके सम्मुख बेचारी गरीब अनाथ हिरनीका क्या वश चल सकता था?

अन्तमें राजाका बाण उस गर्भवती हिरणीको छेद करके दूर तक चला गया और एक वृक्षमें जा घुसा। इधर मृत्युके निकट पहुँची हुई वह हिरनी और उसका गर्भस्थ बच्चा दोनों ही तड़पने लगे; किन्तु इधर अपना निशाना अचूक ठीक जा लगनेके कारण प्रसन्न होकर महाराज घोड़ेसे नीचे कूद पड़े। उनकी प्रसन्नताकी तो कोई सीमा ही नहीं थी। एक साथ दो प्राणियोंका घात होनेसे वे अपने पराक्रम पर अत्यन्त आनन्दित हो रहे थे। भला, उन्हें उस मृगीके जीवनकी क्यों चिन्ता होती?

वे प्रसन्न चित्तसे उस तड़पती हुई मृगीको देख रहे थे। इतनेहीमें उनके संगी-साथी लोग भी वहाँ



हिरणी और उसका गर्भस्थ बच्चा दोनो ही तड़पने लगे। पृष्ठ ३३४

आ पहुँचे। वे सब अपने-अपने घोड़ोंसे उतरकर महाराजकी सेवामें उपस्थित हुए और उस मरी हुई हिरनीको देखकर चापलूसी भरे शब्दोंमें महाराजके पुरुषार्थकी प्रशंसा करने लगे। अहा! महाराजका निशाना कितना अचूक है कि एक ही बाणमें हिरनी और उसके गर्भको एक साथ वेध दिया।

"किन्तु इनका वह बाण कहाँ गया? वह तो मृगीको वेधकर कहीं दूर चला गया है!" एकने कहाः—

इसके बाद सबकी दृष्टि राजाका बाण खोजनेमें लगी। इतनेहीमें एक व्यक्तिने कहाः—"अरे, वह देखो, उस वृक्षके तनेमें महाराजका बाण कितना गहरा घुस गया है! धन्य है! महाराजमें कितनी विशाल शक्ति है?"

तत्काल ही सबकी दृष्टि उस बाणपर पड़ी; और उनमेंसे एक व्यक्तिने जाकर उस वृक्षमेंसे बाण खींचना चाहा; किन्तु वह उसमें लगभग आधा घुस जानेसे नहीं निकल सका। सभी प्रयत्न करके हार गये; किन्तु वह किसीसे भी नहीं निकल सका। अन्तमें महाराजने स्वयं एक झटका देकर उसे निकाल लिया।

सभी महाराजके पुरुषार्थकी प्रशंसा करने लगे।

महाराज भी उनके शब्दोंको सुनकर हर्षके मारे फूल गये; किन्तु वे उस गर्भवती हिरनीको मारकर प्रसन्न हो रहे थे और उसमें भी उनके सहयोगियोंने प्रशंसा करके उन्हें आकाश पर चढ़ा दिया था।

उस तड़पती हुई हिरनीको देखकर भी उन पाषाण हृदय शिकारियोंको जरा भी दया नहीं आई। एक ओर वह गर्भस्थ बच्चा तड़पकर मर रहा था; दूसरी ओर उस बेचारी मृगीने प्राण त्याग दिये। क्योंकि इस जगत्में उसकी पुकार सुननेवाला कोई न था। अर्थात् जिस प्रजापालक राजासे वह फर्याद कर सकती थी; उसीके हाथों उसकी हत्या हुई थी। ऐसी दशामें उसकी रक्षा कौन कर सकता था? कहा भी है :—

माता यदि विषं दद्यात् पिता विक्रयते सुतम्।
राजा हरति सर्वस्वं, का तत्र परिवेदना ?"

अर्थात् :—माता जब स्वयं ही बालकको जहर पिलाती हो और पिता ही उस पुत्रको बेचने लगे; तथा राजा अप्रसन्न होकर सर्वस्व छीन ले; तो फिर वहाँ शोक या खेद करनेसे क्या लाभ?

वह निराधार तड़पती हुई हिरनी प्रकृतिको ही

न्याय करनेका भार सौंपकर इस लोकसे विदा हो गई! यह देखकर मगधेश्वरको अपनी अद्भुत शक्ति और स्फूर्तिपर अतिशय प्रसन्नता हो रही थी। उस आनन्दकी कोई सीमा ही नहीं थी। हिरनीको मारकर वे अपनी विजयपर अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे; अतएव उनका हर्षातिरेक यदि मर्यादा छोड़ दे तो आश्चर्य ही क्या? अन्तमें समय अधिक हो जानेसे महाराजने नगरकी ओर लौट चलनेका विचारकर दो एक सेवकोंसे उस मृगीका कलेवर उठवाकर महाराज सदलबल राजगृहीकी ओर चल दिये।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

वे सिद्धार्थ कौन थे?

—::**::—

ईस्वी सन् पूर्व ६२३ * से पहले काशीसे उत्तर हिमालयकी तलहटीमें शाक्य लोगोंका राज्य स्थापित

* डा० हंटरने बुद्धका जन्म ई० सन् पूर्व ६२३ में और निर्वाण ई० सन् पूर्व ५४३ में लिखा है; इस विषयमें अन्य कई लोग

हुआ। उनकी राजधानी कपिलवस्तु नगरीमें थी। ईस्वी सन्से पूर्व ६२३ में वहाँ शुद्धोदन नामका राजा

भिन्न मत रखते है। किन्तु वह हमें मान्य नहीं है; क्योंकि महावीर स्वामीसे पहले ही बुद्धका निर्वाण हो चुका था। अर्थात् बुद्ध निर्वाणके बाद लगभग २४ वर्ष पर्यन्त महावीर स्वामी विचरते थे। यह निश्चित है। अर्थात् ई० सन् पूर्व ६२३ में जन्म लेकर ई० सन् पूर्व ५४३ में ८० वर्षकी अवस्थामें ही बुद्ध दिवंगत हुए थे। डा० हंटरका यह मत कई अंशोंमें स्वीकार करने योग्य प्रतीत होता है।

फिर भी कितने ही इतिहासकारोने बुद्ध-निर्वाणसे पहले महावीर-निर्वाण बतलाकर जो भ्रम उत्पन्न कर दिया है; वह उनकी भूल है; क्योंकि यह भ्रम महावीर निर्वाणके कारण नहीं; वरन् 'गोशाला' के निर्वाणके कारण उत्पन्न हुआ है। अर्थात् महावीर स्वामीसे सोलह वर्ष पूर्व 'गोशाला' की मृत्यु होनेसे ही बौद्ध ग्रन्थोंमें कहा गया है कि—"ज्ञात पुत्र निर्ग्रंथको रक्तकी उल्टी-कय होनेसे, उसकी मृत्यु हुई; किन्तु यह घटना वास्तवमें गोशालाके सम्बन्धकी ही है। उसके शरीरमें 'तेजोलेश्या' फैली हुई होने से ही उसे रक्तकी उल्टी हुई थी और सात दिन दुःख भोगकर वह इस लोकसे विदा हो गया था, किन्तु वह महावीर स्वामीका भक्त एवं अर्हन् होनेसे ही बौद्ध ग्रन्थोंमें ऐसा लिखा जाना प्रतीत होता है! जो भी हो; किन्तु इतिहासकार दोनोंके निर्वाणके सम्बन्धमें भूल ही करते मालूम होते हैं।

राज्य करता था। उसको माया नामकी पटरानी थी। उसके जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसीका नाम सिद्धार्थ था।

वैसे तो महावीर स्वामीका निर्वाण ईस्वी सन् पूर्व ५२७ में और जन्म ई० सन् पूर्व ५९९ में हुआ था। अतः इस हिसाबसे गोशालेके निर्वाणके बाद लगभग उसी अवधिमें बुद्धका निर्वाण हुआ हो तो डाक्टर हंटरका मत प्रायः प्रमाणित होता है।

डा० चार्पेनियर साहबने भी सिद्धकर दिखाया है कि—वीर निर्वाणसे पहले सोलहवें वर्षमें गोशाला स्वर्गवासी हुआ और लगभग उसी अवधिमें अजातशत्रु मगधकी गद्दीपर बैठा था। अतएव अजातशत्रुके बुद्धके समागममें आनेका प्रतिपादन इतिहास कारोंने किया है; और यही मत चार्पेनियरका भी है कि अजातशत्रुके राजगद्दीपर बैठनेके आठ वर्ष पश्चात् बुद्ध निर्वाण हुआ। इसी प्रकार उसके गद्दीपर बैठनेके सोलह वर्ष पश्चात् वीर निर्वाण हुआ था। डा० चार्पेनियरके मतानुसार बुद्ध निर्वाणके आठ वर्ष पश्चात् वीर निर्वाण हुआ था। इस विषयमें कदाचित् कुछ फेर-फार हो सकता है, किन्तु वैसे तो यह मत अनेक अंशोंमें ठीक ही जान पड़ता है।

जो भी हो, किन्तु बुद्धका जन्म ई० सन् पूर्व ६१५ से ६२३ के बीच होनेके साथ ही ८० वर्षकी अवस्थामें ई० सन् पूर्व ५२३ से ५४३ के बीच निर्वाण होना सम्भव है। यथार्थ बात तो ज्ञानी ही जान सकते हैं।

गर्भवती मायादेवीने पतिकी आज्ञा लेकर सपरिवार अपने पिताके यहाँ जानेके लिये प्रस्थान किया। उनका नैहर 'देवदह' नामक ग्राममें था। मायादेवीने कपिलवस्तु और देवदहके बीच लुम्बिनी नामक वनमें बने हुए उद्यानमें एक शालि वृक्षके नीचे विश्राम किया था। उसी स्थानमें बोधिसत्व सिद्धार्थका* जन्म हुआ। अतः शाक्य नरपति शुद्धोदनके पास यह समाचार पहुँचते ही उन्होंने मायादेवीको वापस अपने नगरमें बुलवा लिया और पुत्रका नाम सिद्धार्थ रखा। बालक सिद्धार्थ सात दिनका होते ही उसकी माता मायादेवी इस लोकसे विदा हो गई। फलतः बालक सिद्धार्थ मातृविहीन हो गया। फिर भी जिस प्रकार द्वितीयाका चन्द्रमा प्रति दिन बढ़ता जाता है; उसी प्रकार धाय-माताओं द्वारा लालित-पालित होकर सिद्धार्थ भी बड़ा होने लगा। उसे लोग गौतम भी कहते थे; किन्तु असलमें यह उसका उपनाम ही था।

बाल्यावस्था पूर्णकर जब सिद्धार्थ युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब पिताने यशोधरा नामकी कन्याके

(*) सिद्धार्थ जब गर्भमें था तभी उसकी माताकी मृत्यु हो जानेसे पेट चीरकर उसे निकालने की बात भी कही जाती है।

साथ उसका विवाह कर दिया। सिद्धार्थ अपनी पत्नीके सहवासमें सुख-पूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगा। फिर भी उसे भोग-विलास सर्वथा पसन्द नहीं थे। वह निरन्तर उदास रहता था। उसका चित्त वैराग्यके रंगमें रंग चुका था। संसारके किसी भी मोह बन्धनमें उसका चित्त लगता नहीं था। वह रात दिन इसी चिन्तामें रहने लगा कि :—"संसारके ये बन्धन किस प्रकार टूट सकते हैं? फिर भी वह सुखमें तो प्रवृत्त रहता ही था। कभी शिकार करने भी जाता था।

सिद्धार्थके वैराग्यको देखकर पिताको चिन्ता हुई कि—"कहीं पुत्र साधु (त्यागी) न हो जाय। अतः उसे महलमें ही रखकर दिन-रात नृत्य-गीत एवं स्त्रियोंके भोग-विलासमें ही लगा रखा जाय तो ठीक होगा। जिससे कि उसे बाहर निकलनेका अवसर ही न मिल सके। राजाने उसके महलके आस-पास पहरा बैठा दिया। महलसे ऐसी सभी वस्तुएँ हटवा दीं, जिनको देखनेसे सिद्धार्थके मनमें वैराग्य उत्पन्न न हो और शृङ्गारकी सभी वस्तुएँ महलके अगल-बगलमें लगवा दीं। इसप्रकार शुद्धोदन राजाने अपने

पुत्रको सांसारिक मोह-बन्धनमें फँसाये रखनेके लिए अनेक प्रकारके प्रयत्न किये।

यदि सिद्धार्थको कभी नगरमें घूमने-सैर करनेके लिये जाना होता तो उसके साथ नौकर-चाकर रक्षककी तरह रहते थे। वे सब चौकीदार उसके साथी दोस्त कहलाते थे। अतः सिद्धार्थके मनमें किसी प्रकारकी शंका ही उत्पन्न नहीं हो पाती थी। अर्थात् वे लोग जहाँ भी सिद्धार्थ जाता, उसके आगे पीछे लगे ही रहते थे। यही नहीं वरन् कई तो आगे दौड़कर सिद्धार्थके मनमें वैराग्य उत्पन्न करनेवाली अनिष्ट एवं दुर्गन्धयुक्त वस्तुओंको सामनेसे तत्काल ही दूर हटा देते थे। ताकि सिद्धाथकी उनपर दृष्टि ही न पड़ सके।

इस प्रकार संसारके मोहमें सिद्धार्थके कितने ही वर्ष पानीके प्रवाहकी तरह बीत गये। उसे प्रसन्न रखनेके लिए यशोधरा दिन रात उसकी सेवामें उपस्थित रहती थी। नाच-रंग और गान-तान एवं हाव-भावके द्वारा अनेक रमणियाँ निरन्तर सिद्धार्थका मनोरञ्जन करती रहती थीं। इस प्रकार सिद्धार्थके अगल-बगल सौन्दर्यका बगीचा लगा दिया था। अनेक दास-दासियाँ उसकी सेवाके लिए उपस्थित रहते

थे। अतः जिस समय और जिस वस्तुकी उसे आवश्यकता होती वह तुरत ही हाजिर हो जाया करती। पानीकी इच्छा होने पर बादाम-पिस्तेका शर्बत या स्वादिष्ट दूधके कटोरे उसके सम्मुख लाकर रख दिये जाते थे।

फिर भी सिद्धार्थके मनमें तो वैराग्यने ही पूर्ण रूपसे अधिकार कर लिया था। इतने सब मोह बन्धन एवं विलासके साधन रहते हुए भी, वे उसका चित्त अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सके; क्योंकि प्रायः जो वस्तुएँ मनुष्यके हाथोंमें रात दिन रहती हैं; उनकी वासना उसे नहीं रह जाती। अर्थात् संसारमें यही देखनेमें आता है कि विधुर-अविवाहित पुरुषोंको ही स्त्रीकी अभिलाषा अधिक होती है। इसी प्रकार विवाहित पुरुषको अपनी स्त्री परसे कुछ समयमें मोह प्रेम कम होते हुए पर-स्त्रियोंमें स्नेह उत्पन्न होता है। भूखेका मन भोजनकी ओर आकर्षित होता है। संसारमें जो वस्तुएँ आँखोंकी निगाहसे दूर रहती हैं; ऐसी वस्तुओंपर उसका आकर्षण विशेषरूपसे होता है। अर्थात् जैसे भूखे मनुष्यको भोजन करनेकी आतुरता होती है; उसी प्रकार विरही जनोंको अपने स्नेहियोंसे मिलनेकी प्रबल अभिलाषा होती है। ठीक

उसी प्रकार दूर रहने वाली वस्तुओंके प्रति मनुष्यका विशेष आकर्षण रहता है; किन्तु जब वही वस्तुएँ दिन रात उसके समक्ष उपभोग व्यवहारमें आती रहती हैं; तो थोड़े ही समयमें उनपरसे प्रायः उसका मोह दूर हो जाता है। यह सब केवल संसारकी विचित्रता ही कही जासकती है।

इसप्रकार सांसारिक सुखका उपभोग करते हुए सिद्धार्थकी अवस्था तीस वर्षकी हो गई। इस बीचमें उसे एक पुत्र-रत्नकी भी प्राप्ति हो गई, किन्तु पुत्र जन्मका समाचार पाते ही सिद्धार्थने कहा :—"अरे, यह तो राहु उत्पन्न हो गया! मेरे बन्धनोंमें एककी और वृद्धि हो गई।"

शुद्धोदन राजाने पौत्रके जन्मपर बड़ा ही महोत्सव मनाया। अनेकप्रकारके दान दिये। वारांगनाओंका नृत्य गान करवाकर यथेष्ट ईनाम दिया। साथ ही सिद्धार्थके मुखसे निकले हुए 'राहु' शब्द परसे शुद्धोदनने पौत्रका नाम राहुल रख दिया। उस पुत्र-महोत्सवके कारण वारांगनाएँ भी सिद्धार्थके सम्मुख रात्रिमें देर तक नृत्य-गान करनेके पश्चात् उसीके महलमें सो गई। मदिरा पानसे उन्मत्त किन्तु परिश्रमसे अत्यधिक थक जानेसे

उन्हें सोते ही नींद आगई ; किन्तु विरागी सिद्धार्थको भला, उस अवस्थामें निद्रा कैसे आसकती थी ?

अन्ततः अस्तव्यस्त वस्त्रोंमें मदिरापानसे अचेत बनी हुई विकृत मुखवाली उन नर्तिकाओंको उसने डाकिनी-शाकिनीके समान देखा। उनकी वह बुरी हालत और मुखसे निकलती हुई दुर्गन्ध तथा शरीरपरके अस्त-व्यस्त वस्त्रोंने उसकी वैराग्य भावनामें और वृद्धि कर दी। उसे क्षणभर भी उस संसार या राजभवनमें रहना अनुचित मालूम होने लगा। वह मन ही मन सोचने लगा कि कब मैं इन आफतोंसे मुक्त होकर दूर चला जाऊँ ! भला, पूर्वके ऐसे दृढ़ वैराग्यके सम्मुख चाहे जैसे मोह-पाश भी क्या कर सकते हैं ? वे बन्धन उसे मोहमें फँसानेके बदले वैराग्यको ही दृढ़ करनेवाले हो जाते हैं।

इस प्रकार संसारमें दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर तथा राज्य-समृद्धि, वैभव और प्रभुता आदि सब कुछ पाकर भी न तो उसकी भोग विलासमें रुचि थी और न शिकार अथवा वन-विहारमें ही उसका चित्त लगता था ; क्योंकि उसका हृदय समस्त जीवोंके प्रति दयासे भरा रहता और सबको वह समताकी ही दृष्टिसे देखता था। वह दिन रात उनके दुःख दूर करनेमें

ही अपनी शक्तिका उपयोग करता था। सिद्धार्थ अत्यन्त बुद्धिमान् विचारशील एवं विवेकी था। उसकी वाणीमें मिठास थी और प्रत्येक प्राणीकी ओर वह करुणाकी दृष्टिसे देखता था। वन क्रीड़ा करनेके लिए जानेपर जब वह निरपराध मृगोंको चरते देखता तो उसका चित्त द्रवित हो जाता। वह ममताकी दृष्टिसे उनकी ओर देखता रह जाता। फिर भला, उनका वध या शिकार करनेकी दुर्बुद्धि तो उसे हो ही कैसे सकती थी ! वह विचार करता कि इन निरपराध तृण भक्षी निरीह पशुओंके शिकार करनेका मुझे क्या अधिकार है ?

एक दिन सिद्धार्थ नगरके बाहर उद्यानमें भ्रमण करनेके लिये जा रहा था ; उसी समय वृद्धावस्थाके कारण झुककर चलनेवाले एक वृद्ध मनुष्यको उसने अपने सेवकों द्वारा मार्गसे दूर हटाया जाते हुए देखा। अतः उसपर दृष्टि पड़ते ही उसने अपने सेवकोंको उसे सताने से रोककर ऐसा व्यवहार करनेके लिये कारण पूछा ! किन्तु वे गरीब वेचारे राजाके चाकर उन्हें क्या कारण बतला सकते थे ? अन्तमें जब सिद्धार्थने उनपर सख्ती की तो एक सेवकने स्पष्टी करण करते हुए कहा :—“आपकी दृष्टिमें ऐसी कोई अनिष्ट

वस्तु न पड़ने देनेके लिये सावधान रहनेका महाराजने हमें आदेश दिया है।" तब सिद्धार्थको पिताकी इस आज्ञाका रहस्य समझमें आया और वह घोड़ेपर सवार होकर नगरकी ओर लौट पड़ा; किन्तु वह वृद्ध मनुष्य उसके हृदयसे दूर न हो सका। वह मन ही मन विचार करने लगा:—"अरे, क्या अन्तमें मनुष्यके इस नवयौवन सम्पन्न शरीरकी यही गति होती है? क्या इस प्रकारकी वृद्धावस्था सभीको प्राप्त होती होगी? तब तो एकदिन मुझे भी यह अवस्था अवश्य प्राप्त होगी ही। अतः ऐसे असार संसारके स्वरूपको धिक्कार है! ऐसी सुन्दर काया भी वृद्धावस्थामें किस प्रकार विकृत्-कुरूप होजाती है! बाल्यावस्थासे क्रमशः कुमार एवं युवावस्था प्राप्त होना अर्थात् माताकी गोदसे प्रियाकी गोदमें पहुँचना और अन्तमें वृद्ध हो जाना; तथा उस दशामें सबके लिये अप्रिय बन जाना ही क्या मनुष्य जीवनका ध्येयहै?"

"उत्तमोत्तम भोजन पाना, प्रियाके सहवासमें रहना और शरीरसे स्वस्थ रहते हुए नये नये वस्त्राभूषण धारण करना; क्या इसीका नाम सांसारिक सुख है? और यह सुख कितने दिनोंका है? युवावस्थाकी यह मस्ती तो साढ़े तीन दिनमें ही दूर हो जायगी! उसके बाद तो अनन्त अन्धकारवाला बुढ़ापा चुनौती देता

और उपहास-हँसी करता हुआ चला ही आ रहा है! और उसके पश्चात मृत्यु भी ताक लगाये बैठी ही हुई है! इस प्रकारके दुःखोंकी परम्परामें मनुष्यको किस बातका सुख हो सकता है! अरे रे! यह कितना अज्ञान है? अपने पीछे घोर शत्रुओंके एकके बाद दूसरेके लगे रहनेपर भी मनुष्य कभी उनकी ओर दृष्टिपात ही नहीं करता! जबकि यह सब सुख तो थोड़े ही समयका दिखाई देता है। तब क्या अल्प सुखकी प्राप्तिमें ही मनुष्यका ध्येय समाया हुआ है? नहीं, नहीं, ऐसा तो कदापि नहीं हो सकता। तब कोई सच्चा सुख तो जगत्‌में अवश्य होना चाहिए कि जिसके पीछे कभी किसी भी दुःखका नाम भी न रहे। तब वह सत्य-सुख क्या हो सकता है? वह सुख तो त्यागमें है, या कि सांसारिक मोहके बन्धनोंमें उसका अस्तित्व हो सकता है?

छत्तीसवाँ परिच्छेद

सुख किस वस्तुमें है ?

—::※::—

"स्नेह-मूलानि दुःखानि, रस-मूलाश्च व्याधयः।
लोभ-मूलानि पापानि, त्रीणि त्यक्त्वा सुखी भव ॥"

अर्थात् :—"दुःखका मूल संसारमें स्नेह है और रोगोंका मूल अनेक प्रकारके षट्‌रसका आस्वादन है। इसीप्रकार पापका मूल लोभ है। अतएव स्नेह, रस (जिह्वाकी लोलुपता) और पाप इन तीनोंको पूर्ण रुपसे; त्याग कर हे आत्मा! तू सुखी हो!"

मनुष्यकी इच्छाकी अपेक्षा विधिकी इच्छा कुछ और ही होती है। शुद्धोदन राजाकी इच्छा सिद्धार्थको मोह जालमें बांधकर राजगद्दीपर बैठानेकी थी; किन्तु विधाताकी इच्छा उसे भिक्षुक बनाकर त्यागके मार्ग पर ले जानेकी थी। शुद्धोदन राजाकी ओरसे अनेक प्रकारका कठोर प्रबन्ध रहते हुए तथा सिद्धार्थके आस-पास अनेक प्रकारके भोग-विलासके साधन प्रस्तुत

जानेपर भी दैव उसके लिये कुछ और ही कार्य निर्माण कर रहा था। दैवकी इच्छासे सिद्धाथके सम्मुख ऐसे-ऐसे दृश्य उपस्थित होने लगे कि जिनके कारण उसे गृहस्थाश्रम कारावासके समान मालूम होने लगा। स्त्रियोंके संसर्गसे और शिकार खेलनेसे उसका चित्त हट गया। वह सांसारिक बन्धन तोड़नेके लिए आतुर हो उठा। पहले जिस प्रकार वह वृद्धावस्थासे जर्जर मनुष्य सिद्धार्थके लिये वैराग्यका कारण बन गया था; उसी प्रकार फिर मार्गमें पड़े हुए एक रोग ग्रस्त मनुष्य पर उसकी निगाह पड़ी और तीसरी वार नगरसे बाहर उद्यानमें घूमनेके लिये जाते समय एक सड़े हुए दुर्गन्धसे भरा-पड़ा मनुष्यका शव उसकी निगाहमें पड़ा। उसी दिन मरेहुये मनुष्यको देखकर सिद्धार्थका हृदय एकदम विचलित हो उठा; किन्तु वह अपनी मनोवेदना किसके समक्ष प्रकट करता! उसके ऐसे ऊँचे आध्यात्मिक विचारोंको सुनने और समझनेकी शक्ति ही किसमें हो सकती थी! यदि अपने मित्रोंके सामने भी उन्हें प्रकट करता तो वे हंसकर वातको उड़ा देते!

"अरे! जगत्की कैसी विचित्रता है! वृद्धावस्थासे युवावस्था रूपी संपत्तिका नाश, रोग-व्याधिके

द्वारा बल-शक्ति और स्वास्थ्यका नाश एवं मृत्युसे आयुष्यका नाश होने पर प्राणियोंकी कैसी दुर्दशा होती है ? तो क्या मेरी भी यही दशा होगी ? और ऐसी दशामें क्या बिना किसी ध्येयके मनुष्य जीवन यों व्यर्थ चला जायगा ? क्या उपाय करना चाहिए कि जिससे आत्मा इस प्रकारके दुःखोंसे मुक्त हो सके ! क्या विना किसी लक्ष्य बिन्दुके मेरा जीवन भी व्यर्थ नष्ट हो जायगा ? नहीं ; मुझे कुछ तो ध्येय धारण करना ही होगा, जिस ध्येयमें मेरा सम्पूर्ण सुख समाया हुआ हो !

तब सुख किस वस्तुमें हो सकता है ? धन, वैभव या ठकुराईमें अथवा मौज-शौक अथवा प्रियतमा या अन्य सुन्दरियोंके भोग विलास में ? क्या खान-पान (स्वादिष्ट भोजन) अथवा वस्त्रालंकार धारणकर नित्य नये वेष सजनेमें सुख है ? मेरे लिये इनमेंसे किस बातकी कमी है ? फिर भी मुझे इनसे जरा भी सुख प्राप्त नहीं होता। यशोधरा अथवा उस नन्हेंसे राहुलके संसर्गमें भी मुझे सुखका अनुभव नहीं होता। संसारके किसी भी पदार्थमें मुझे सुख प्राप्त नहीं होता ; क्योंकि उस अल्प सुखके पीछे कितने ही दुःख छिपे हुए हैं। तब सुख किसमें हो सकता है। न गृहस्थाश्रममें सुख

है और न अविवाहित यानी क्वाँरेपनमें सुख प्राप्त हो सकता है। अनेक प्रकारकी चिन्ताओंसे ग्रस्त सांसारिक जनोंको सुख मिल ही कैसे सकता है! यदि मान भी लियाजाय कि किसी एक मुख्य व्यक्तिको बिना किसी प्रकारकी असुविधाके सुख प्राप्त हो जाय तो भी वह कितने समयके लिये होगा? उस सुखके पीछे तो असंख्य दुःख खड़े ही रहते हैं।

एकबार बगीचे की ओर जाते हुए उसने एक किसानको अस्थिपिंजर दुर्बल बैलको हाँकते हुए देखा। उसकी पीठ पर सूजन थी; फिर भी किसान लकड़ी मारकर निर्दयतापूर्वक उसे सता रहा था। इसी प्रकार आगे बढ़ने पर एक बाज पक्षी अपने कठोर पंजेमें कबूतरको पकड़कर उसका शिकार करनेमें ही आनन्द मान रहा था। इस प्रकारके अनेक दृश्योंको देखनेके कारण सिद्धार्थ हमेंशा ही शोकातुर और उदास रहता था। बढ़ता हुआ वैराग्य उसे इस संसार रूपी कीचड़से बाहर निकालनेके लिये तड़प रहा था।

संसारके सुख भोगते और वैराग्यके साथ गाढ़ी मित्रता रखते हुए सिद्धार्थकी आयुके तीस वर्ष व्यतीत हो गये। उसकी वैराग्यकी भावना इतनी तीव्र हो रही थी कि एक दिनके लिए भी वह गृहस्थाश्रममें रहनेके

लिये समर्थ नहीं था। उसे मालूम हुआ कि संसारके कारावासकी अपेक्षा त्याग मार्गमें ही सच्ची मौज सुख और शांति है। त्याग ही उपाधि-रहित आनन्द मय मस्त जीवन है और त्यागके द्वारा ही जीवनका ध्येय सिद्ध किया जा सकता है। अतएव त्याग-निवृत्तिमें ही सच्चा सुख समाया हुआ है उस त्यागके मार्गपर अब किस प्रकार जा सकते हैं?

किन्तु क्या यशोधरा मुझे साधु (त्यागी) हो जानेके लिए अनुमति दे देगी? पिताजी तो मुझे संसारमें फँसाये रखनेके लिए अनेक प्रकारके प्रयास कर रहे हैं! ऐसी दशामें उनसे तो पूछा ही कैसे जासकता है? तब मैं क्या करूँ? बस, यही ठीक होगा कि इन सबको त्यागकर चुपचाप घरसे चल दूँ!

अंततः एकदिन रातके समय अर्धरात्रि व्यतीत हो जाने पर भी सिद्धार्थको निद्रा नहीं आई। वह पलंग-पर लेटा हुआ करवटें बदलकर विचार-मग्न हो रहा था। पास ही उसकी प्रियतमा यशोधरा भी निश्चित होकर निद्रादेवीकी गोदमें विश्राम ले रही थी। उसी समय उसने अपने राजमहलसे निकलकर कपिलवस्तु नगरीको सदैवके लिए त्याग देनेका निश्चय करलिया।

पलंगसे उठकर बाहर आनेके बाद उसने पुकारा,

"पहरेपर कौन है?" उत्तरमें तत्काल ही एक सिपाही आकर उपस्थित हो गया। उसे सिद्धार्थने घोड़ा तैयार करनेके लिए आज्ञा दी। इसके बाद उसने वापस लौट-कर एकबार फिरसे अन्तिम समयमें अपनी प्रिया और पुत्रका मुख देखनेके लिए शयन-गृहमें प्रवेश किया और वह निद्रादेवीकी गोदमें लेटी हुई यशोधराका चन्द्र-वदन अवलोकन करने लगा। उसने मन-ही-मन कहा:—"प्रिये! आज मैं तुझे सदैवके लिए त्याग कर जारहा हूँ। तुझसे आज्ञा लिये बिना मुझे चुपचाप जाना पड़ता है; इसके लिए तू मुझे क्षमा करना। अब मैं संसार (गृहस्थी) में क्षणभर भी नहीं रह सकता। अब तो यह संसार मेरे लिये विषके समान हो गया है। मुझे इसमें कहीं भी सुखका लवलेश नहीं मिला। प्रिये! अब मैं सुखकी खोजमें जा रहा हूँ कि सच्चा सुख कहाँ है? अतः अब तू सदैवके लिए मेरी आशा छोड़ देना। किंतु फिर भी तू अपने कुलकी रक्षाका पूर्ण ध्यान रखकर चलना।

"अरे, प्रातःकालमें जब तू जागृत होगी; तब मेरे प्रति एकान्त श्रद्धा रखनेके कारण तुझे कितना दुःख होगा? पिताको पता लगनेपर वे भी मेरी खोज करनेके लिए सब प्रकारसे प्रयत्न करेंगे, किन्तु तब-

तक तो तेरे और मेरे बीच न जाने कितना अन्तर पड़ जायगा। अतः प्रिये ! तू मेरी जरा भी चिन्ता मत करना। तू अपना जीवन क्रम सम्हालना और मुझे अपने भाग्यकी परीक्षा करनेके लिये छोड़ देना।"

हा ! तुझ सरीखी निर्दोष एवं निष्कलङ्क अर्धांगिनीको मैं बिना किसी दोषके त्याग रहा हूं, किन्तु इसमें मैं कोई भूल तो नहीं कर रहा हूं न ? अथवा पूर्वकालमें नल राजाने भी अपनी रानी दमयन्तीको नैहर जानेके लिए उसके हितका विचार करके बीचमें ही त्याग दिया ; उस प्रकार मैं तो अधबीचमें छोड़कर नहीं जा रहा हूँ ! मैं तो तुझे इस अटूट सम्पत्ति एवं पिताकी शीतल छत्रछायामें सुख पूर्वक रहते हुए छोड़कर जा रहा हूँ। मुझे अब सच्चे सुखकी खोज करना है कि संसारमें वह कहाँ प्राप्त हो सकता है ? और वह किस प्रकार प्राप्त हो सकेगा ? उसी मार्गका मुझे पता लगाना है। अतएव प्रिये यशोधरा ! तू मुझे भूल जाना ! तू निरन्तर सुखी रहना !

इसप्रकार शांतिकी गोदमें पड़ी हुई यशोधराके प्रति अपने मनके उद्गार प्रकट करनेके बाद अन्तमें सिद्धार्थ जब यशोधराके चन्द्रवदनको देखनेके लिए नीचे झुका; तो उसीक्षण उसे विचार हो आया कि यदि

कहीं प्रिया जग जायगी तो मेरी मनकी सारी आशाएँ जहाँ की तहाँ रह जायगी, और यह व्यर्थ ही कल्पांत-दुःख मचा देगी। अरे, अब मुझे इस प्रकारका मोह भी क्यों होना चाहिए?" इस प्रकार वह अपने मनको उधरसे हटाकर प्रियाका मुखावलोकन करते हुए बाहरकी ओर निकला। वह किसी भी प्रकारकी खड़खड़ाहट या शब्द तक न होने देकर बहुत ही साव-धानीके साथ चलने लगा। फिर 'जाऊँ या न जाऊँ?' इस प्रकार विचार करता हुआ कुछ दूर आगे बढ़कर फिर वापस लौट आता और प्रियाका चन्द्रवदन देख-कर उसके मनमें फिर दया उमड़ने लगती। 'अरे' ऐसी सुन्दर प्रियाका त्याग करना क्या मेरे लिये योग्य हो सकता है?' किन्तु फिर भी एकबार मनको दृढ़ करके वह चल ही दिया।

शयन-गृहके निकट ही एक कमरेमें राहुलका छोटासा पलंग था। उसपर वह अबोध शिशु रात्रिका तृतीय प्रहर व्यतीत हो जानेसे प्रातःकालकी मधुर निद्रामें सो रहा था। अन्तिम वार सिद्धार्थ उसके पास आया, और स्नेह पूर्वक उसने उस शिशुके मस्तक एवं शरीरपर हाथ फिराते हुए विचार किया "अरे, इस नन्हेसे शिशुने मेरा क्या अपराध किया है

कि जिसके कारण मैं इसे छोड़कर जा रहा हूँ ? क्या इन सबको एकाकी छोड़कर जानेमें मेरे हाथोंसे न्याय हो रहा है ? किन्तु इसका निर्णय कौन कर सकता है ? अनभिज्ञ मानवमें तो इसका न्याय करनेकी शक्ति हो ही नहीं सकती ! यदि मेरे द्वारा अन्याय भी होता हो तो उसका फल भोगनेको ही मैं यहाँ से जा रहा हूँ । संसारके इन सभी बाह्य सुखोंका त्याग-कर थोड़ी ही देरमें मैं यहाँसे चला जाऊँगा । न जाऊँ तो क्या करूँ ? इन सभी सुखोंके पीछे रोग, शोक, सन्ताप; बुढ़ापा और मृत्यु रूपी कैसे-कैसे भयङ्कर दुःख छिपे हुए हैं ? इन सब दुःखोंको मैं प्रत्यक्ष देख भी रहा हूँ । उन्हें देखकर मेरा हृदय काँप उठता है । ऐसा प्रतीत होता है मानों वे सब मेरी हँसी कर रहे हैं कि सावधान सिद्धार्थ ! हम भी एक दिन तुझे अपने पंजेमें अवश्य फँसा लेंगे ? तू हमसे भयभीत क्यों हो रहा है ? और वास्तवमें ही तू हमसे भयभीत होता हो तो इन सब मोह-बन्धनोंको—इन सुवर्णकी बेड़ियोंको इसीक्षण त्यागकर वैराग्यके मार्गपर अग्र-सर हो जा ! और सुखी हो ! तू सच्चा सुख प्राप्त करनेके लिये ही प्रयत्न करना । उस त्यागके मार्गपर बढ़ते हुए संसारके झगड़ोंमें भूल कर भी न पड़ना ।

पराई पञ्चायतोंमें न पड़कर तू अपना ध्येय सिद्ध करना। इस मार्गसे जानेपर ही तू हमसे बच सकेगा; अन्यथा संसारके अन्य प्राणियोंकी तरह तेरी भी वही दुर्गति होगी!"

धीरेसे प्रिय पुत्र राहुलका चुम्बन कर सिद्धार्थ बाहर निकल आया। उसका नौकर घोड़ा तैयार करके उसकी प्रतीक्षा ही करता था। सिद्धार्थ उसी समय घोड़े पर सवार हुआ और उसने सेवकसे कहा :—"छन्न! तू भी मेरे साथ चल!" अतः वह भी दूसरे घोड़ेपर सवार होकर उसके साथ चल दिया।

सिद्धार्थ घोड़ा दौड़ाता हुआ नगरसे बाहर कुछ दूर निकल गया। थोड़ी ही देरमें घोड़ेको रोक कर वह नीचे उतर पड़ा। उसीके साथ छन्न भी घोड़ेसे उतर गया। इसके बाद सिद्धार्थने अपने शरीर परसे सब अलङ्कार उतारकर उस सेवकको देना आरम्भ किया। सिद्धार्थको ऐसा करते देखकर वह सेवक भी बड़े आश्चर्यमें पड़ गया। उसने पूछा :— "युवराज! यह आप क्या कर रहे हैं? कहीं आप पागल तो नहीं हो गये हैं?"

"नहीं भाई! ये सब मैं तुझे देना चाहता हूँ कि तू जाकर ये सब पिताजीको सौंप देना और उनसे

कहना कि :—"सिद्धार्थ तो संसारकी माया छोड़कर त्यागी—संन्यासी हो गया है। वह सच्चे सुखको खोजनेके लिये चल दिया है। इसलिए अब उसकी खोज मत कीजिये!"

यह सुनकर सेवकने कहा :—राजकुमार! इस प्रकारका अप्रिय सन्देश मैं उन्हें कैसे सुना सकूँगा? संसारमें इस प्रकारके सुख-समृद्धि एवं वैभव महान पुण्यसे प्राप्त होते हैं! आपके समान सुख प्राप्त करनेके लिये तो हम नित्य ही प्रभुसे प्रार्थना करते रहते हैं; जब कि आप इन सब सुख साधनोंको पागलकी तरह लात मार-कर वनमें चले जा रहे हैं। हे भगवन्! तनिक इस जगतके न्यायको तो देखिये! मनुष्यकी प्रवृत्तियाँ किस प्रकार जुदी-जुदी होती हैं! जिन वस्तुओंको प्राप्त करनेके लिए एक मनुष्य आकाश-पाताल एक कर रहा है; फिर भी उसे वे प्राप्त नहीं होतीं और दूसरा उन्हें बेपर्वाह होकर ठुकरा रहा है! कैसा आश्चर्य है?

"किन्तु यह सब प्राणियोंके प्रारब्धकी विचित्रता है, छन्न! जिसमें तुझे सुखका भास होता है, उसीको देखनेसे मुझे दुःख होता है। उसमें मुझे दुःख ही दुःख दिखाई देता है; इसके लिये मैं क्या करूँ? मैं तो सच्चा सुख किस वस्तुमें है; उसीका पता लगाने जा

रहा हूँ। रोग-शोक, बुढ़ापा एवं मृत्यु आदि दुःखोंसे मुक्त होनेके लिए जा रहा हूँ। अतः तू पिताजीसे निवेदन करना कि वे व्यर्थ ही मेरी खोजका प्रयत्न न करें।"

सिद्धार्थने आभूषण उतारनेके बाद अपने शरीर परके मूल्यवान् वस्त्र आदि भी उतार कर सेवकको दे दिये। यहाँ तक कि अन्तमें केवल एक लंगोटी मात्र ही शेष रह गई। इसकेबाद भिक्षुक वेशमें सिद्धार्थ सत्य सुखकी खोजमें राजगृहीके मार्गसे चल दिया। उधर रोते हुए सेवकने भी उसके वस्त्राभूषण लेकर कपिल वस्तुकी ओर प्रयाण किया।

इस प्रकार तीस वर्षकी अवस्थामें सिद्धार्थ गौतम (इसका दूसरा नाम गौतम था) संसारकी माया त्यागकर भिक्षुक वेशमें सच्चे सुखका पता लगाने चल दिया।

———

सैंतीसवाँ परिच्छेद

पूर्ण सुखकी प्राप्तिके लिए

—::※::—

कपिलवस्तु नगरीको त्यागकर सिद्धार्थ भिक्षावृत्ति-द्वारा अपना निर्वाह करता हुआ एक सप्ताहमें

राजगृही नगरी आ पहुँचा। वहाँ पर उसकी बिम्बिसार राजासे भेंट हुई। राजापर सिद्धार्थका प्रभाव पड़नेसे वह शिष्य बन गया; किन्तु अभी सिद्धार्थको सत्य ज्ञानका मार्ग खोजना शेष था, अतएव वह वहाँ अधिक समय तक न रह सका। पाण्डव पर्वतसे निकलकर वह राजगृहीके निकट योगशास्त्रमें पारंगत कालामऋषिके आश्रममें जा पहुँचा। उसने ऋषिको नमस्कार कर निवेदन किया कि :—"हे महा-पुरुष ! मैं आपका शिष्य बननेके लिये आया हूँ। मैं सच्चे सुखकी प्राप्तिका मार्ग खोजना चाहता हूँ।

कालामऋषिने उसे उच्च कुलका जानकर आदर पूर्वक कहा :—"यदि तू मेरा मत स्वीकार कर शिष्य बन जायगा तो तुझे सत्य सुखका रहस्य जाननेमें जरा भी देर नहीं लगेगी !"

कालामऋषिके इन वचनोंको सुनकर सिद्धार्थ उनका शिष्य बन गया और थोड़े ही समयमें उसने कालामऋषिके पास जितना भी ज्ञान था, उसे पूर्ण रूपसे प्राप्त कर लिया, किन्तु इन सब बाहरी विद्याओंसे सिद्धाथका चित्त प्रसन्न नहीं हुआ। अतः उसने समयको व्यर्थ बिताना उचित नहीं समझा; क्योंकि मनुष्यके अमूल्य समयका महत्त्व उसे मालूम

था। अतः उसने कालामऋषिसे नम्रता पूर्वक निवेदन करते हुए पूछा कि :—"गुरुदेव! आपसे इतनी विद्या प्राप्त करनेपर भी मुझे साक्षात्कार नहीं हुआ?"

इस प्रश्नके उत्तरमें कालामऋषिने कहा :—"सप्त सोपान (सीढ़ियों) के अभ्याससे उनका ज्ञान होनेपर ही तुझे सच्चे सुखका मार्ग मालूम हो सकेगा।"

"किन्तु वे सातों सोपान तो मुझे मुखाग्र याद हैं। अतः कृपा करके उनका स्पष्टीकरण करते हुए समझाइये!" फलतः सिद्धार्थके आग्रहसे कालामऋषिने 'सप्तसोपान' (सीढ़ियों) का रहस्य उसे समझाया। सिद्धार्थने उसपर गम्भीरतासे विचार किया, किंतु उसमें भी उसे पूर्णता नहीं जान पड़ी।

अन्ततः कालामऋषिके पाससे वह आगे चल दिया। वहाँसे वह उद्रक रामपुत्र नामके अन्य एक प्रसिद्ध ऋषिके आश्रममें पहुँचा। उनके सम्मुख उसने सप्तसोपानके अभ्यासकी बात कह कर उसका कुछ विवेचन भी किया। सिद्धार्थका ज्ञान देखकर ऋषि चकित हुए और उसकी प्रशंसा करने लगे। उन्होंने कहा :—सिद्धार्थ! कालाम ऋषिने तुम्हें जिस सप्त सोपानका ज्ञान कराया है, उससे भी आगे एक सोपान

(सीढ़ी) और है; जिसे हमलोग "नैव संज्ञा-नाऽसंज्ञायतन समाधि" कहते हैं।

सिद्धार्थने उस आठवें सोपानका भी उनसे ज्ञान प्राप्त कर लिया। इसके बाद उसने उद्रक रामपुत्रसे पूछा कि:—"अब मुझे क्या करना चाहिए? क्योंकि इतने से भी मुझे किसी पूर्ण सुखकी प्राप्ति नहीं होती!"

इसपर उद्रक रामपुत्रने कहा कि:—"अब तू मेरे समान हो गया है।" किन्तु इससे भी सिद्धार्थको सन्तोष नहीं हुआ; क्योंकि उसमें भी उसे पूर्ण सुख प्रतीत नहीं हुआ। अतएव वह उद्रक ऋषिसे आज्ञा लेकर आगे बढ़ा।

इसके बाद उरुपेला नामक स्थानमें जाकर सिद्धार्थने स्वयं योगसाधन आरम्भ किया। उस योगके द्वारा आत्म साक्षात्कार करके स्वतः 'स्वयं बुद्ध' बननेका विचार किया। उधर सिद्धार्थको परम योगी बनकर अनेक प्रकारके तप करते देख कौंडिन्य, वप्र, भद्र, महा-नाम और अश्वजीत नामके पाँच ब्राह्मण तपस्वी भक्त बनकर उसकी सेवा करने लगे। अन्तमें शांति और धैर्य पूर्वक सिद्धार्थने अनेक प्रकारके कष्ट सहनकर पूर्ण सुख प्राप्त करनेके लिए दृढ़ निश्चय किया, किन्तु उसे फिर भी शांति प्राप्त न हो सकी। नाम मात्रका

आहार लेनेके कारण उसकी भूख भी मर चुकी थी, और इसी कारण शरीर अस्थिपंजर हो गया था। फिर भी उसे पूर्णता तो प्राप्त हो ही न सकी। अतएव सिद्धार्थने कायाकष्ट छोड़कर पूर्ण आहार लेना आरम्भ किया। इस परसे उसे पाखण्डी जानकर उक्त पाँचों ब्राह्मण उसे त्यागकर वहाँसे चले गये। अन्तमें सिद्धार्थने भी शरीरमें चलनेकी शक्ति आते ही आगे जानेका सोचा।

इतने ही में किसी सेनानी नामके जागीरदारकी सुजाता नामकी पुत्रीका मनोरथ पूर्ण होनेसे उसने वन देवताको क्षीरके नैवेद्यकी जो मनौती-मिन्नत की थी, उसे पूर्ण करनेके लिए उसने दासीको वनमें भेजा। जब दासी वन देवताके वृक्षके नीचे पहुँची तो वहाँ सिद्धाथके रूपमें एक सुन्दर पुरुषको ध्यानस्थ देखकर वह नैवेद्य सहित सुजाताको तुरन्त वहाँ बुला लाई! सुजाताने भी उस गम्भीर मुद्रा और शान्ति एवं सुन्दर कान्ति देखकर उसीको देवता समझ क्षीरका नैवेद्य उसके सामने रख दिया। इसके बाद वह अपने प्रति अनुग्रह करनेके लिए निवेदन करने लगी। ध्यान त्यागकर उस तपस्वीने उसकी ओर देखा।

उसे तपस्वी समझकर सुजाताने वह नैवेद्य खानेके लिए निवेदन किया और सिद्धार्थने भी उस अना-

यास प्राप्त हुए क्षीर भोजनको पाकर अपनी क्षुधा शांत की। इसके बाद सिद्धार्थ वहाँसे चलकर जैन-साधुओंके समागममें आया।

शासन नायक पार्श्वनाथ प्रभुके तीर्थमें उस समय हजारों साधु विहार कर रहे थे। उनकी परम्पराके अनुसार चौथे पाटपर स्वयं प्रभसूरि विराजमान थे। उनके अनेक शिष्योंमें पिहिताश्रव नामका एक विद्वान् शिष्य था। सिद्धार्थ उसके समागममें आनेपर उसका शिष्य हो गया और बुद्धकीर्ति उसका नाम रखा गया। कुछ समय तक उसने जैन-तत्त्वोंका अध्ययन किया और अनेक तत्त्वोंका जानकार होनेसे उसे जैन-तत्त्वोंका गूढ़ आशय समझनेमें अधिक समय नहीं लगा। फिर भी पूर्वके क्षयोपशमके अनुसार बुद्धि तो अपना कार्य करती ही है; क्योंकि जैसी भवितव्यता होती है वैसी ही बुद्धि होती है।

किन्तु सिद्धार्थका मन कहीं भी परिपूर्णता प्राप्त न कर सका। उसका मन तो कुछ और ही चाहता था। उसकी भवितव्यता किसी अन्य ही प्रकारकी होने से उसकी बुद्धि भी कुछ और ही काम कर रही थी। अनेक शास्त्रोंके परिशीलन अध्ययनसे उसके मस्तिष्कमें जो बात जँच जाती उसीको वह सच्ची मान लेता था।

उसीमें उसे पूर्णताका भान होने लगा। उसके उस निश्चयके सम्मुख अनेक साधुओंकी दलीलें व्यर्थ सिद्ध हुई। सिद्धार्थके ऐसे कदाग्रहको देखकर प्रत्येक साधुने उसकी उपेक्षा की।

अब सिद्धार्थको किसी एकान्त स्थानमें तपस्या करनेकी इच्छा हुई। अतएव वह गुरुसे आज्ञा प्राप्तकर सरयू तटपर पलास नामक नगरके एक उद्यानमें रहते हुए तपस्या करने लगा। इस प्रकार तप करते हुए उसे कितना समय व्यतीत हो गया। निराहारके कारण उसका शरीर भी अस्थिपञ्जर हो गया। उपवासके पारणके दिन भी वह बहुत थोड़ा अन्न ग्रहण करता और शेष समय रात-दिन तपस्यामें ही व्यतीत करता था। तपस्याके फलस्वरूप कमजोरी होनेके कारण एक दिन सिद्धार्थ मूर्छित होकर गिर पड़ा। अन्तमें पुनः उसे तपसे अरुचि हो गई। वह सोचने लगा :—"क्या ऐसा करनेसे ज्ञान प्राप्ति हो सकेगी ? तप तो उलटा शरीरको क्लेश ही पहुँचाता है ! जीवितव्यताका नाश ही करनेवाला है। अतएव अब तो मुझे ध्यान ही करना चाहिए, किन्तु एकान्त तपकरनेसे वह ध्यान नहीं हो सकता ; क्योंकि ध्यानमें शक्तिकी आवश्य·

कता होती है। अतः उस शक्तिकी प्राप्तिके लिए उत्तमोत्तम पदार्थ खाने चाहिए ?”

इस प्रकार भोजनका निश्चय होनेपर तपका त्याग कर सिद्धार्थ धीरे-धीरे खानेका अभ्यास करने लगा। फलतः ज्यों-ज्यों शक्ति आती गई त्यों-त्यों सिद्धार्थ ध्यानका अभ्यास बढ़ाने लगा। ध्यानसे मनका विकास होनेपर आत्म साक्षात्कार होकर सत्यका मार्ग सुलभ हो जाता है और उस सत्यके मार्गकी प्राप्तिसे सच्चे सुखकी प्राप्ति भी अवश्य हो सकेगी। इसलिये पहले मनका पूर्ण विकास करनेके लिये सिद्धार्थने ध्यानका अभ्यास बढ़ाना आरम्भ किया। फलतः ज्यों-ज्यों उत्तम भोजनसे सिद्धार्थका शरीर पुष्ट होता गया। त्यों-त्यों उसने ध्यानका विशेष आडम्बर करना आरम्भ कर दिया। अर्थात् जो कार्य तपसे पूर्ण न हो सका उसे ध्यानके द्वारा सिद्ध करनेका विचार किया। इस प्रकार सिद्धार्थकी ध्यान-साधना भी कितने ही दिनों तक चलती रही।

किन्तु बहुत समय बीत जानेपर भी उसे ध्यान-साधनामें सच्ची गुरुकुंजी प्राप्त न हो सकी। फलतः इतनी-इतनी साधना और चिन्ता एवं सतत उद्योग एवं नवीन तत्वज्ञ पुरुषोंका समागम होने पर भी अपना

ध्येय सिद्ध न होनेसे सिद्धार्थके मनमें अनेक प्रकारके विचार उत्पन्न होने लगे। अपना देश छोड़े उसे कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये थे और वह सतत परिश्रम भी कर रहा था। फिर भी उसका ध्येय अभी तक सिद्ध नहीं हो सका था। उसके मनमें यह विचार भावना उत्पन्न हुई कि तप करते हुए भी आत्माका साक्षात्कार किस कारणसे नहीं होता ? किन्तु इसका खुलासा कैसे हो ?

अन्तमें सिद्धार्थने एक दिन प्राणोंकी बाजी लगाकर वनमें ही न्यग्रोध-वट वृक्षके नीचे आसन जमाया और ध्यानस्थिति अवस्थामें बैठकर पूर्व दिशाकी ओर मुँह रखते हुए उसने अभिग्रह किया कि, 'जबतक मैं बुद्ध (स्वयंज्ञानी) न हो जाऊँगा; तबतक यहाँसे नहीं उठूँगा।

उसी रात्रिको उसे प्रतीत हुआ कि इच्छारोध करनेका मार्ग और पुनर्जन्मका कारण पूर्वजन्मका ज्ञान हुआ अतः दूसरे दिन प्रातःकाल उसे अनुभव हुआ कि 'मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया है और मेरा मन विकास पा चुका है। मुझे सर्व श्रेष्ठ कैवल्यकी प्राप्ति हो गई है।" इसप्रकार उसने अपने मनमें निश्चय कर लिया।

सात दिनों तक वट वृक्षके नीचे सिद्धार्थ आसन जमाकर ध्यान लगाये बैठा रहा। इसके बाद आठवें

दिनसे फिर सात दिनके लिये उसी वृक्षके नीचे ध्यानस्थ हो आसन जमाकर बैठगया। अन्ततः रात्रिके प्रथम पहरमें सिद्धार्थने दुःखकी परम्पराकी खोज आरम्भ की। तत्पश्चात् द्वितीय प्रहरमें प्रतीत्य समुत्पादका पुनः समालोचन किया। तृतीय प्रहरमें फिर इसीका समालोचन करने पर उसे अपने मनका विकास होता जान पड़ा। उन्होंने कहा :—जब सद्धर्मका साक्षात्कार होता है, तब उसकी सब प्रकारकी कुशंकाएँ दूर हो जाती हैं। मन विकसित हो जाता है; अपूर्वज्ञानकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार मुझे भी आज अपूर्व ज्ञान प्राप्त होनेसे अब मैं भी स्वयंबुद्ध हो गया हूँ। मुझे अन्य किसीके बोधकी आवश्यकता नहीं रही, किन्तु अब मुझे संसारको उपदेश देकर अपने ज्ञानका लाभ पहुँचाना चाहिए। यह ज्ञान ही मोक्ष है। इसीसे मोक्ष प्राप्त होता है। अर्थात् मोक्षकी अनन्त सुख समृद्धि पानेका साधन तो यह ज्ञान ही कहा जा सकता है।

सरयू नदीके तटपर तपस्या करते हुए एक दिन सिद्धार्थने देखाकि पानीमें अत्यधिक बाढ़ (पूर) आ जानेसे कितने ही मत्स्य मरकर प्रवाहके साथ बहते हुए किनारे आ लगे हैं। उन्हें देखकर उसके मनमें विचार

हुआ कि "जब जगत्‌में आत्मा नामकी कोई वस्तु ही नहीं है ; तब पाप-पुण्यके लिए कारण ही क्या हो सकता है ? अर्थात् आत्मा तो केवल अज्ञानियोंकी मानी हुई कल्पना ही है !"

ये मत्स्य जब स्वयं मरकर किनारे आ लगे हैं ; तब इनका मांस खानेमें क्या पाप है ? हाँ यदि हम इनको मारकर उपयोगमें लावें तब तो और बात है ; किन्तु जब तैयार मांस मिल जाता हो ; तो मुझे उसमें कोई दोष नहीं जान पड़ता, क्योंकि उसमें जीव (प्राण) तो कहीं खोजने पर भी नहीं मिल सकता। फिर जब हम दूध, दही और फलका उपयोग भी भोजनमें करते हैं और मदिरा पानमें भी कोई दोष नहीं देखते ; तब दोश दर्शन तो केवल अज्ञानियोंकी कल्पना ही हो सकती है। अर्थात् दोपवाले ही प्रत्येक वस्तुमें दोष देखते हैं। पापियोंको ही प्रत्येक कार्यमें पापकी शंका रहती है। अतएव निःसंकोच भावसे मांस मदिराका भक्षण करनेमें जरा भी पाप या बुराई नहीं हो सकती। यदि हमें भी इस प्रकार तैयार आहार मिल जाता हो तो उसे ग्रहण करनेमें क्या दोष हो सकता है ? तप करके व्यर्थ ही काया क्लेश करनेसे क्या लाभ ? इत्यादि अनेक प्रकारके विचार उसके विकसित हृदयमें

प्रकट हुए। तप करके उकता जानेसे अब उसे उत्तमोत्तम भोजन पानेकी प्रबल उत्कंठा हो चली। अतः तप छोड़कर उसने अच्छे-अच्छे पदार्थ खाने शुरु किये। मांस मदिराका भी वह उपयोग करने लगा और बुद्धके रूपमें प्रकट हुआ।

—०—

अड़तीसवाँ परिच्छेद

परिवर्तन

—::※::—

पूर्वोक्त घटना होनेके पश्चात् अबतक कितने ही वर्ष जल प्रवाहकी भाँति व्यतीत हो गये। इस बीच और भी अनेक घटनाएँ घटित हो गईं। श्रेणिक महाराजकी चिल्लणा आदि मुख्य रानियोंको अभय कुमारके अतिरिक्त कोणिक, मेघकुमार, नन्दिषेण आदि अनेक राजकुमार उत्पन्न हुए। महा बुद्धिमान् अभयकुमार महाराज श्रेणिकका मुख्यमन्त्री था। उसने अपने बुद्धि चातुर्यसे अनेक राजाओंका मानमर्दन कर अपने पिताके राज्यको बढ़ा दिया था।

मगधराज श्रेणिककी मुख्यरानियोंमें चिल्लणाको पटरानीकी पद प्राप्त हुआ था। वह विशाला नगरीके अधीश्वर चेटक महाराजकी सबसे छोटी पुत्री थी। बाल्यावस्थासे ही चिल्लणाके मन पर जैन धर्मके संस्कार पड़नेके कारण अब वह शुद्ध श्राविका धर्मकी उपासिका बन गई थी। अतः उसके मनमें अनेक प्रकारके संकल्प-विकल्प होने लगे कि, बौद्ध धर्मके रङ्गमें रंगे हुए पतिको जैन धर्ममें किस प्रकार स्थिर किया जाय? इसके लिए वह अनेक प्रकारके उपाय करने लगी। वह बारम्बार धर्मकी चर्चा करती और अनेक प्रकारके प्रयास करनेमें भी कमी न रखती; फिर भी बौद्ध धर्मोपासक श्रेणिकके हृदयमें कोई परिवर्तन नहीं हो सका, किन्तु समयके प्रवाहके साथ चिल्लणा-द्वारा दो-एक ऐसे प्रसंग उपस्थित किये गये कि जिनके फलस्वरूप श्रेणिक महाराजकी श्रद्धा बौद्धधर्म परसे डगमगाने लगी। उसमें भी फिर एक दिन अनायास ही रयवाड़ी की ओर जाते हुए मार्गमें श्रेणिक महाराजका अनाथी मुनिसे समागम हो गया, और उनके उपदेशसे मगध पतिका चित्त जैनधर्मके विषयमें कुछ नवीन जानकारी पानेके लिये उत्सुक हो चला।

इसके बाद एक दिन चौवीसवें तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी राजगृही नगरीमें पधारे; और गुणशील उद्यानके समवसरणमें विराजे। वनपालकने आकर महाराजको नमन करते हुए प्रभु आगमनका शुभ समाचार सुनाया। भगवन्तके आगमनकी बात सुनते ही श्रेणिकके मनमें प्रभुके दर्शनकी प्रबल उत्कण्ठा हुई। अतएव वे सपरिवार गुणशील चैत्यमें आये। उन्होंने तीन प्रदक्षिणा करके वन्दना पूर्वक भगवानकी स्तुति की। उसके बाद हाथ जोड़कर निवेदन करने पर भगवानने बारह प्रकारकी पर्षदामें मधुर वाणीसे देशना देकर देवगुरु एवं धर्मके स्वरूपका वर्णन करना आरम्भ किया। सम्यक्त्व और मिथ्यात्वका स्वरूप बहुत ही स्पष्टतासे समझाते हुए संसारकी असारताका मर्म भी भलीभाँति समझाया। प्रभुके उपदेशसे मगध पतिके मनमें जो-जो शंकाएँ थीं, वे सब नष्ट हो गईं। इसी प्रकार अनेक भव्य जनोंके हृदय भी वैराग्यसे रंग गये। महाराज श्रेणिकका रहा-सहा मिथ्यात्वरूप अन्धकार भी नष्ट हो गया। अपने ज्ञानके द्वारा उसके मनकी शंकाओंको जानकर भगवानने एकके बाद दूसरीके क्रमसे इस प्रकार उत्तर देना आरम्भ किया कि वे सब (शंकाएँ) अनायास ही नष्ट होती चली गईं और

भगवानके प्रति उसके मनमें विशेष श्रद्धा-भक्ति जागृत हो चली।

गौतम—(इन्द्रभूति) आदि ग्यारह ब्राह्मणोंने अपने शिष्य परिवारके साथ भगवानसे बिना शास्त्रार्थ किये ही पराजित होकर दीक्षा ग्रहण कर ली! यह उड़ती हुई बात महाराज श्रेणिकने सुनी थी वही बात आज गौतम आदि को भगवानके ग्यारह गणधरके रूपमें प्रत्यक्ष देख-कर उसकी सत्यता प्रकट हो गई। ऐसी चौदह विद्याएँ एवं चारों वेदके ज्ञाता गौतम आदि अद्वीतीय पंडित भी भगवानके शिष्य बने। प्रभुकी ज्ञान शक्तिमें किस बातकी कमी हो सकती थी? समस्त साधुओंकी भक्तिपूर्वक वन्दना करके मगधराजने प्रभुसे समकित् अङ्गीकार किया और अन्य सबने भी अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार व्रत नियम ग्रहण किये।

इसके पश्चात् प्रभुको वन्दन करके मगधराज अपने परिवार सहित राजधानीमें पधारे; किन्तु उनमें एक आत्मा ऐसा था जो संसारके बन्धनोंसे मुक्त होनेको आतुर हो रहा था। भगवानकी देशना उसके कोमल हृदयमें लगजानेके कारण संसारसे उसका चित्त हट गया था। उसे संसारके भोग विलास एवं राज वैभव तथा नवीन युवतियोंका सहवास बाग-बगीचे आदि

काँटेके समान चुभने लगे थे। इन सब वाह्याडम्बरोंको त्यागनेके लिए उसका मन उत्सुक हो रहा था। अर्थात् इस प्रकार संसारके मोह बन्धनोंको तोड़नेके लिये उत्सुक होनेवाला अन्य कोई नहीं वरन् स्वयं मगधराज श्रेणिककी प्रिय रानी धारिणीका पुत्र स्वयं मेघकुमार ही था।

मेघकुमारने घर आकर माता पिताको हाथ जोड़कर निवेदन करके दीक्षाके लिए अनुमति माँगी। उसने कहाकि :—"हे माता-पिता ! संसारके बन्धनोंमें फँसकर आजतक मैं अपने आपको भूला हुआ था, किन्तु प्रभुके उपदेश से मैं अपने आपको अब पहचान गया हूँ और इसीलिए दीक्षालेनेके लिए उत्सुक हो रहा हूँ। आप कृपा करके आज्ञा दीजिये और मुझे कष्ट मुक्त कीजिये।

पुत्रकी इस प्रकारकी वाणी सुनकर माता-पिता दिगमूढ़ जैसे हो गये। फिर भी माता धारिणीने कहा :—"अरे बेटा ! तू यह क्या कह रहा है ? हमें दीक्षासे क्या प्रयोजन हो सकता है ! क्या सुख-समृद्धि भोगते हुए हमसे यथाशक्ति प्रभुकी सेवा नहीं हो सकती ?"

"माता ! कहाँ वह साधु-अवस्था और कहाँ यह

सांसारिक जीवन ? इनमें तो आकाश पातालका अंतर है! माता! जिस प्रकार चारित्र ग्रहणकर साधु मोक्ष साधन करता है ; उस प्रकार संसारी मानव कदापि नहीं !" मेघकुमारने कहा :—

क्यों नहीं कर सकता ! साधु जीवनमें कितना कष्ट है इसे तू नहीं जानता। यदि तुझे उन कष्टोंका पता होता तो दीक्षाकी बात तू मुँहसे भी नहीं निकालता !" माताने समझाया।

"ठीक है, मेघ ! विना विचारे जो कार्य किया जाता है उसका परिणाम क्या होता है ? सिवाय पीछेसे पछतानेके और कुछ भी हाथ नहीं लगता। अतएव तू अपने नित्यके कर्त्तव्यमें ही लगा रहकर धर्म-साधन कर ; दीक्षाका ममत्व त्याग दे।" महाराज श्रेणिकने रानीके कथनका समर्थन किया।

"किन्तु ये सब नरकादिक दुर्गतिके समान भयङ्कर नहीं हैं ? वल्कि ये कष्ट तो दुःख कारक ही हैं। रोगी बालकको माता कड़वी दवाई अवश्य पिलाती है ; किन्तु उससे क्षण भर दुःख (कष्ट) भले ही होता हो ; परिणाममें तो रोग नष्ट हो जाने पर दीर्घकाल पर्यन्त जैसा सुख होता है वैसा ही चारित्र भी है। वह तो मुक्ति और सुख प्रदान करनेवाला अमूल्य

चिंतामणि रत्न ही कहा जा सकता है। अतः उस रत्नको ग्रहणकर मुझे अपनी मन चाही वस्तुको प्राप्त करने दीजिये। मुझे आज्ञा देनेकी कृपा कीजिये।" मेघकुमारने विशेष स्पष्टीकरण करके अपना मनोरथ प्रकट किया।

महाराजने पूछा :—"तू कोमल सुकुमार होते हुए भी चारित्रके कष्टोंको-जैसेकि केश लोच कराने, शीत-ताप आदि सहन करने, ग्रीष्मकालमें नंगे पैर पैदल चलने, विहार करने, भूख-प्यासके दुःखोंको भी सुख रूप मानने आदि अनेक शारीरिक कष्टोंको कैसे सहन कर सकेगा?"

"अवश्य ही, मैं उन सबको सह लूँगा। अतः मुझे दीक्षा ग्रहणकर अपनी आत्माको इस भवसागरसे पार उतरनेकी आज्ञा दीजिये। जिससे कि मैं अपना इच्छित प्राप्त कर सकूँ। माता! माता! मुझे किसी भी प्रकारसे आज्ञा दो। संसारके मोह बन्धनोंमें जकड़कर मेरा भव मत बिगाड़िये।" राजकुमारने आग्रह किया।

"अच्छी बात है! तब तू मेरी एक बातको स्वीकार कर! पुत्र तो वही कहला सकता है जो पिता की आज्ञाका उल्लंघन न करे।" श्रेणिकने युक्ति चलाई।

"कहिये ! आपको क्या कहना है ? आपकी आज्ञाका मैं अवश्य पालन करूंगा !"

"तब मैं तुझे राज्यभार सौंपता हूँ। यों कहकर उन्होंने प्रसन्नतासे राजमुकुट मेघकुमारके मस्तक पर रख दिया। इसके बाद पूछा कि :—"अब मैं तेरे लिये कौन सा प्रिय कार्य करुँ ? इससे अधिक तुझे क्या दूँ ?" श्रेणिकने प्रसन्न मुखसे कहा।

"यदि आप मुझपर प्रसन्न हुए हैं तो मुझे रजोहरण ओर पात्र लाकर दीजिये।" मेघकुमारने कहा :—

किन्तु पुत्रके मुखसे इस प्रकारका एकान्तिक वैराग्य वचन सुनकर राजा-रानीको विवश हो उसे आज्ञा देनी पड़ी। इसके बाद बड़े ही उत्सव पूर्वक मेघकुमारको दीक्षा दिलाई।

तदनन्तर रात्रिके समय उसका संथारा-बिस्तर सबके बादमें आनेसे रात भर समस्त साधुओंके पैरोंकी आहट एवं टक्कर लगनेके कारण मेघमुनिके परिणाम विचलित हुए। यहाँतक कि दीक्षा त्यागकर प्रातःकाल अपने घर लौट जानेको भी वे तैयार हो गये, किन्तु जब वे भगवान महावीरके पास इसके लिये आज्ञा लेने गये, तब उन्होंने अपने ज्ञानसे उनका मनोभाव जान-कर उनके पूर्वभवका स्वरूप सुनाते हुए व्रतमें स्थिर

किया। तब वे उस अनुचित विचारका मिथ्या दुष्कृत करके अनेक प्रकारसे तप करने लगे। चिर-काल पर्यन्त व्रतपर्याय पालनकर मेघ मुनीश्वर पाँच अनुत्तर विमानके प्रथम विजय विमानमें एकावतारी देवत्वका सुख भोगकर महाविदेहमें उत्पन्न हो मोक्ष प्राप्त करेंगे। धन्य है ऐसे महान त्यागी पुरुष को।

श्रेणिक महाराजके नन्दिषेण नामके पुत्रने भी इसी प्रकार मातापितासे आज्ञा प्राप्तकर व्रत ग्रहण किया। प्रभुके साथ विहार करते हुए नन्दिषेण मुनि भी अनेक प्रकारके तप आदि दुष्कर क्रियाएँ करने लगे। छठ, अठम आदि तप करते और सूत्र अर्थमें ही अनुरक्त रहकर परिसह सहन करने लगे। इन्द्रियोंके विकारोंको शमन करनेके लिये प्रतिदिन स्मशान भूमिमें रहकर आतापना लेने लगे। पूर्वकर्मके उदयसे उनके अन्तरमें भोगकी इच्छा उत्पन्न होती थी; किन्तु उसे बलात्कारपूर्वक रोककर वे शरीरको अनेक प्रकारके कष्ट देने लगे।

व्रत भङ्गका अवसर आनेकी अपेक्षा वे मृत्युको अच्छा समझते थे, और इसके लिये उन्होंने अनेक प्रकारके उपाय भी किये। किन्तु भावी-भावके सम्मुख किसीका भी वश नहीं चलता। चाहे जैसी स्थितिमें

भी मनुष्यके अपने पूर्व कृत शुभा शुभ कर्मोंका उदय होता ही है। इस नियमके अनुसार नन्दिषेण मुनिको भी बारह वर्षतक वेश्याके यहाँ रहना पड़ा। अंतमें निमित्त प्राप्त होते ही वहाँसे निकलकर पुनः दीक्षा ग्रहण कर अपने किये हुए पापोंका प्रायश्चित करने पर वे शुद्ध 'अणगार' हुए और अन्तमें आयुष्य पूर्ण होने पर वे ही महामुनि नन्दिषेण देवाङ्गनाओंके प्रिय होनेके कारण उनके निकट रमण करनेको चले गये।

उन्नतीसवाँ परिच्छेद

विद्या ग्रहण

—::❀::—

महाराज श्रेणिककी चिल्लणा आदि अनेक स्त्रियाँ थीं। फिर भी अत्यन्त गुण रूप एवं चातुर्यके कारण चिल्लणाको ही उन सबमें अधिक महत्व प्राप्त था। अतः राजा भी अपना अधिक समय उसीके साथ सुख भोगमें व्यतीत करता था। उसके प्रति राजाका प्रेम भी अत्यधिक था। वह निरन्तर खाते-पीते, उठते-बैठते अथवा अन्यान्य कार्यके समय उसीके साथ रहता था।

एक दिन चिल्लणके प्रति अगाध प्रेम होनेके कारण उसके लिये एक स्तम्भ वाला महल बनवानेकी राजा श्रेणिकके मनमें इच्छा उत्पन्न होने पर उसके लिये जङ्गलसे उत्तम काष्ठ लानेकी एक कुशल बढ़ई सुथारको आज्ञा दी। जङ्गलमें भ्रमण करते हुए उस सुथारने समस्त लक्षणोंसे युक्त एक वृक्ष देखा। वह अच्छी तरह फला-फूला एवं विस्तृत होनेके साथ ही आकाश पर्यन्त ऊँचा भी था, किन्तु उसे वह कोई साधारण वृक्ष नहीं जान पड़ा। उसने सोचा कि जबकि कोई सामान्य मन्दिर या स्थानक भी विना देवताके नहीं होता ; तब यह उत्तम वृक्ष तो प्रकट रूपमें देवताधिष्ठित मालूम होता है। अतएव प्रथम इस वृक्षके अधिष्ठायककी तपस्या-द्वारा अराधना की जाय, जिससे कि मेरे तथा मेरे स्वामीके कार्यमें विघ्न-बाधा न हो ; क्योंकि पूर्ण रूपसे विचार करके आरम्भ किये जानेवाले कार्य प्रायः अन्यथा-व्यर्थ नहीं होते। इसलिये इसके अधिष्ठायकको प्रसन्न करना ही सबसे पहला कर्त्तव्य है।

यह सोचते हुए उस बढ़ई (सुथारने) सुगंधित धूप पुष्प माला आदिसे वृक्षकी पूजाकर अट्ठम तप किया। सुथारकी इस प्रकार उत्तम पूजन विधिसे प्रसन्न होकर उस

वृक्षका अधिष्ठायक व्यंतर अभय कुमारके पास आकर कहने लगा कि :—"हे महानुभाव ! उस सुथारको तू मेरे आश्रय रूप वृक्षको काटनेके लिये रोक दे ! मैं स्वयं तुझे एक खंभेवाला महल तैयार करा दूँगा।"

व्यंतरका वचन सुनकर अभय कुमारने उस सुथारको जंगलमेंसे बुलवा लिया और उधर व्यंतरने भी एक रात्रिमें एक खंभेवाला महल बनवा दिया। साथ ही महलके आस-पास सभी ऋतुओं फल देनेवाले वृक्षोंका सुन्दर उद्यान भी लगवा दिया।

प्रातःकाल श्रेणिक महाराजको उस महलकी रचना देखकर अत्यंत प्रसन्नता हुई। उन्हें एक महलकी आवश्यकता थी और उसमें ऐसा नव पल्लवित उद्यानके साथ महल देखकर उन्हें यदि प्रसन्नता हो तो यह स्वाभाविक ही था। अन्तमें शुभ मुहूर्तके समय मगधपतिने एक स्तम्भवाले महलमें निवास किया।

उसी महलके निकट एक जिन मन्दिर बनवाकर राजारानी दोनों ही महावीर स्वामीकी पूजा करने लगे। प्रतिदिन एक सौ आठ सोनेके यव (जौ) बनवाकर उनके द्वारा श्रीमहावीर भगवानकी अत्यन्त श्रद्धा भक्तिपूर्वक आराधना करते थे। इस प्रकार भक्ति करते हुए उनका कितना ही समय सुखमें व्यतीत हो गया।

एक दिन प्रातःकाल जब पटरानी चिल्लणा प्रभु पूजाके निमित्त फल-फूल लेने उद्यानमें आई, तो उसे वहाँ आम्र वृक्षपर फल नहीं दिखाई दिये। तब वह विचारने लगी कि 'अरे, जहाँ पर चिड़िया तकके आनेकी शक्ति नहीं ; उस उद्यानमेंसे आम्र फल कौन चुरा लेगया होगा ? अवश्य ही वह चोर कोई बड़ा ही शक्तिसम्पन्न मालूम होता है। अतएव तत्काल ही महाराजको खबर देनी उचित समझकर उसने उसी समय जाकर महाराजको यह बात कह सुनाई।

श्रेणिक महाराजने भी आकर उस फल रहित आम्रवृक्षको देखा और पहरे वालोंको बुलाकर इस विषयमें पूछ-ताछ की किन्तु बहुत कुछ जाँच करनेके बाद भी जब कोई परिणाम नहीं निकल सका ; तब अभयकुमार मन्त्रीको बुलाकर आम्रफलकी चोरीका पता लगानेकी आज्ञा दी।

फलतः सात दिनके भीतर अभयकुमार मन्त्रीने आम्रफल चुरानेवाले एक चाण्डालको राजसभामें महाराजके सन्मुख उपस्थित किया। उसे देखकर महाराजने तत्काल ही कठोर आज्ञा दी कि "जब साधारण चोरकी भी उपेक्षा नहीं की जाती ; तब ऐसे शक्ति सम्पन्न चोरकी उपेक्षा तो किसी भी प्रकारसे नहीं की

जा सकती। इसको तो संसारसे ही नेस्तनाबूद कर देना चाहिए।"

"यह सुन अभयकुमारने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि:—"हे देव! आपकी आज्ञा यथार्थ है; किन्तु फिर भी पहले आप इससे वह अद्भुत विद्या तो सीख लीजिये। उसके बाद जो इच्छा हो कीजिये।"

अभयकुमारकी बात महाराजको उचित जान पड़ी; अतः उन्होंने उस चाण्डालको सामने खड़ा करके उसके मुखसे वह विद्या सीखना आरम्भ किया। चाण्डाल बारम्बार वह विद्या बोलने लगा; किन्तु फिर भी गुरुके प्रति मान सम्मान न रखनेके कारण राजाको वह विद्या नहीं आ सकी। अतः राजा उस चोरपर क्रुद्ध होकर कहने लगा कि:—"अवश्य तुझमें कपट भाव है; जिसके कारण तेरी विद्या मुझे नहीं आ सकी। अतः शुद्ध भावसे बोल, जिससे कि मेरे हृदयमें वे विद्याएँ संक्रमित हो जायँ।"

इस प्रकार राजाको क्रोधित होते देखकर अभयकुमारने निवेदन किया कि देव! इसमें चाण्डालका दोष नहीं जान पड़ता। क्योंकि इस समय तो यह चाण्डाल भी आपका विद्या गुरु बन रहा है। अतः संसारमें विद्याएँ उन्हींको प्राप्त होती हैं जो गुरुके प्रति विनय

रखते हैं। बिना विनयके विद्या कैसे प्राप्त हो सकती है?"

"तब मुझे इसके प्रति किस प्रकारका विनय प्रकट करना चाहिए?" राजाने पूछा।

"आप इस चोरको सिंहासन पर बिठाइये और इसके सामने हाथ जोड़कर खड़े रहिये। इस प्रकार विनय भाव प्रकट करने पर ही आपको इसकी विद्या आ सकेगी!" अभय कुमारने कहा।

राजाने उसके कथनानुसार चोर को सिंहासन पर बिठाकर नम्रताके साथ उसकी विद्या सीख ली; क्योंकि नीतिशास्त्रका नियम है कि 'नीच जनसे भी उत्तम विद्या सीखना, और कूड़ेके ढेरसे रत्नको भी सम्मान पूर्वक ग्रहण करना चाहिए।' यह एक संसारका सामान्य नियम है, अतः विनय भावके कारण राजाके हृदयमें सब विद्याएँ संक्रमित हो गईं।

इसके बाद चोरको फाँसी पर चढ़ाने की आज्ञा दी गई, किन्तु राजाकी इस आज्ञाको सुनते ही अभय-कुमारने हाथ जोड़कर कहा कि:—हे देव! अब यह आपका विद्यागुरु हो गया है। अतएव जब साधारण मनुष्य भी अपनी शक्तिके अनुसार विद्यागुरुकी पूजा करते हैं; तब आपके समान पुरुषके विद्या गुरुको तो संसारमें बहुत ही मान-सम्मान होना चाहिए। उसके

बदले आप इसे फाँसी पर चढ़ाने की आज्ञा देते हैं; इससे तो आपकी जगत्‌में महान् अपकीर्ति होगी।"

अभयकुमार मन्त्रीके इन वचनोंको सुनकर महाराजने चोरका अपराध क्षमा कर दिया और उसे उत्तम वस्त्रालङ्कारसे सम्मानित कर विदा किया। इसके बाद राज-सभा विसर्जित हुई।

मगधराजश्रेणिककी आर्द्रक देशके आर्द्रक (आडन) नगरके आर्द्रक नामके राजाके साथ मित्रता थी। उस राजाका आर्द्रकुमार नामका पुत्र था। पूर्व भवमें चारित्रका विरोध करनेसे वह अनार्य देशमें उत्पन्न हुआ था। फिर भी परम्परानुसार श्रेणिक और आर्द्रक राजाकी ही तरह आर्द्रकुमारने भी अभयकुमार मन्त्रीके पास एकदिन अपना मित्रतापूर्ण सन्देश भेजा।

अभयकुमारने उसके उत्तरमें ऋषभदेवकी प्रतिमा आर्द्रकुमारके पास भिजवाई, किन्तु उस प्रतिमाको देखते ही उहापोह-संकल्प विकल्प करते हुए जाति स्मरण ज्ञान होने पर आर्द्रकुमारने अपना पूर्वभव देखा; और उसे अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ।

समय पाकर आर्द्रकुमार अपना अनार्य देश त्यागकर आर्य देशमें आया और स्वतः दीक्षा ग्रहण करनेके साथ ही उसने अपने पाँच सौ अङ्गरक्षकोंको भी

अपना शिष्य बनाया। उसने भी महावीर स्वामीके पास आकर चारित्र ग्रहण किया। उसे भी पूर्वकृत दुष्कर्मका अन्तराय नन्दिषेण मुनिके समान ही बाधक हुआ था; फिर भी वह अन्तमें समस्त कर्मोंका क्षय करके शिवरमणीके उत्संगमें रमण करने चला गया।

चालीसवाँ परिच्छेद

नयी-पुरानी

—:-❀-:—

महावीर स्वामीकी भक्ति करते हुए मगधराज श्रेणिकका बहुत सा समय सुखमें बीत गया। समय समयका काम करता चला जाता है। आज मगधराज श्रेणिकको भी मगधका साम्राज्य उपभोग करते हुए कितने ही वर्ष जल-प्रवाहकी तरह व्यतीत हो गये। उसीके साथ युवावस्था भी बीत गई। क्रमशः वृद्धावस्थाके चिह्न उनके शरीरपर दृष्टिगोचर होने लगे। फिर भी वे मोह बन्धनसे ऐसे जकड़े हुए थे कि उनका मन त्याग-मार्गकी ओर होते हुए भी वैराग्यकी ओर आकर्षित नहीं हो रहा था। पूर्वके किसी दुष्कृत कर्मके उदयके कारण किसी साधारणसी वस्तुका त्याग भी

उनसे नहीं हो रहा था। फिरभी संसारकी असार वस्तुओंका यथार्थ स्वरूप उनकी निगाहके बाहर तो नहीं था।

एक दिन भगवान महावीर स्वामी राजगृह नगरीके गुणशील नामक चैत्यमें पधारे। यह जानकर सपरिवार राजा उनकी वन्दना करने पहुँचा। भगवानकी देशना सुनकर मगधराजकी आत्मा संतुष्ट हुई। इसके बाद किसी बातका स्मरण हो आनेसे मगधपतिने भगवानसे पूछा :—"भगवन्! केवलज्ञान कब उच्छेद होगा?"

पर्षदामें महान् तेजस्वी विद्युन्माली नामका ब्रह्मदेवलोकका देवता भी अपनी चार देवियोंके साथ आकर बैठा हुआ था। उसे बताते हुए भगवानने कहा:—"इस पुरुषके बाद केवल ज्ञान नष्ट हो जायगा।"

"किन्तु प्रभो! यह तो देवता है। क्या देवताको भी केवल ज्ञान हो सकता है?" राजाने पूछा :—

उनकी आतुरता शांत करनेके लिये भगवान बोले :—"अभी तो यह ब्रह्मदेवलोकमें देवेन्द्रका सामानिक देवता है; किन्तु आजसे सातवें दिन यह वहाँसे च्यवित होकर तेरी नगरीमें ऋषभदत्त व्यवहारियाके यहाँ जंबू नामका पुत्र होकर जन्मेगा; और उसके बाद मेरे सुधर्मा नामके शिष्यका यह जंबू नामसे शिष्य बनेगा। वही अन्तिम केवली होगा। उसके बाद इस भरत

क्षेत्रमें किसी को भी केवल ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकेगा।

"स्वामिन्! देवता च्यवित होते हैं; तब उनका तेज मन्द पड़ जाना चाहिए। इस न्यायके अनुसार इस देवताका तेज क्यों क्षीण नहीं हुआ?" श्रेणिकने पूछा।

इसका तेज इस समय भी मन्द ही है। पूर्वके पुण्यसे पहले इसका उत्कृष्ट तेज था।

इस प्रकार मगधराज श्रेणिक और भगवानके बीच प्रश्नोत्तर हो रहे थे कि इसी बीच कुष्टरोगसे गलित एक पुरुषने आकर भगवानको वन्दन किया और पागल कुत्तेकी तरह वह प्रभुके निकट भूमिपर बैठ गया। इसके बाद अपने शरीरसे निकला हुआ पीप लेकर चन्दनकी तरह वह भगवानके शरीर और चरणोंको बारम्बार अर्चित करने लगा। उसकी ऐसी चेष्टा देखकर श्रेणिक मन ही मन क्रुद्ध हो सोचने लगा . कि "अरे, यह दुष्ट भगवानकी आशातना कर रहा है। अतः जैसे ही यह यहाँसे उठकर बाहर निकले उसी समय इसे मार डालना चाहिए।"

इतने ही में भगवानको छींक आई। उस समय वह कुष्टी बोला :—"मृत्यु पाओ-प्राप्त करो, यह सुनकर श्रेणिक और भी अधिक क्रुद्ध हुआ;

थोड़ी ही देरके बाद श्रेणिकको जब छींक आई तब

वह बोलाकि :—"दीर्घकाल तक जियें।' इसके पश्चात् जब अभयकुमारको छींक आई ; तब उसने कहाकि, 'जिये या मर जाय !" और अन्तमें जब कालसौरिकको छींक आई ; तब वह बोला :-"जिये भी मत और मरे भी मत!"

किन्तु प्रभुको छींक आने पर 'मृत्यु पावें' के शब्द उच्चारण करनेसे श्रेणिकने विशेष क्रुद्ध होकर अपने सुभटोंको आज्ञा दे दी थी कि, जैसे ही यह कुष्टी बाहर निकले, तुरन्त इसे पकड़ कर मेरे पास लाया जाय !"

देशना समाप्त होनेपर वह कुष्टी प्रभुको नमन कर जैसे ही बाहर निकला कि श्रेणिकके सिपाहियोंने घेर लिया ; किन्तु उनके देखते ही देखते वह दिव्य रूप धारणकर आकाशमें उड़ गया। सिपाहियों-द्वारा राजाको यह समाचार मिलने पर उसने भगवंतसे उसका स्वरूप जाननेके लिये पूछा :—

भगवंतने कहा :—यह कुष्टी अन्य कोई नहीं ; वरन् दर्दुरांक नामका देवता था। तुम्हारी परीक्षा करनेके लिये ही उसने इस प्रकारकी माया रची थी। वह मुझे गोशीर्ष चन्दनसे ही विलेपन कर रहा था। फिर भी दृष्टि मोहके कारण तुम्हें वह सब विपरीत दिखाई देता था।"

इसके बाद श्रेणिकने फिर पूछा कि :—भगवन् !

जब आपको छींक आई तब उसने कहा कि :—'मृत्यु पावें' और मुझे छींक आनेपर दीर्घकाल तक जीनेकी तथा अभयकुमारके छींकनेपर जिये-चाहे मर जाय, एवं काल सौरिकके छींकनेपर जिये भी मत, मरे भी मत, ये शब्द कहे थे ; इनका आशय क्या है ?"

"हे राजन् ! जब मुझे छींक आई ; तब मृत्यु पानेके शब्द इसीलिये कहे थे कि 'आप संसारमें क्यों रहते हैं ? शीघ्रतासे मोक्ष प्राप्तकर अनन्त लक्ष्मीके भोक्ता बनिये, उसके कहनेका यह आशय था। इसी प्रकार तुम्हें छींक आनेपर उसने दीर्घकाल तक जीने'के शब्द इसीलिये कहे थे कि जबतक तुम जी रहे हो तभी तक सुखी हो बाद में......।"

"बाद में क्या ?" मगधराज अपनी अधूरी बात सुनकर चौंके। अपना भविष्य जाननेको अधीर हो उठे।

"उसके बाद तो पहली नरक पृथ्वी पर तू चौरासी हजार वर्षसे भी कुछ अधिक आयुष्यवाला नारकी होगा। उसीप्रकार अभयकुमारको भी 'जिये या मर जा' कहनेका भी यही आशय था कि वह जियेगा तो धर्म करेगा और मरनेके बाद अनुत्तर विमान (सर्वार्थ सिद्ध) में एकावतारी देव होगा। इसीप्रकार कालसौरिक तो यहाँ जीते हुए भी पाप कर रहा है और मरनेपर भी

सातवें नर्कमें पृथ्वी का मेहमान बननेवाला है। इसलिये उसने कहाकि :—तू जिये भी मत, और मरे भी मत।"

इस प्रकार खुलासा सुनकर तथा अपनी बात जानकर राजाके हृदयमें धक्का पड़ गया। उसने कहा:—"हे भगवन्! आप जैसे अनन्त शक्तिशाली प्रभुकी मेरे सिरपर छत्रछाया होते हुए भी मेरी नरक गति क्यों होगी?"

"राजन्! किये हुए शुभा-शुभ कर्मोंका फल प्राणियोंको अवश्य भोगना पड़ता है। उन कर्मों का बन्धन छुड़ानेमें हम भी समर्थ नहीं हैं। पूर्वकालमें तूने गर्भिणी हरिणीको मारकर नरक गतिका आयुष्य निकाचित रूपसे बाँध लिया है; उसे यादकर! तड़पती हुई मृगीको देखते हुए भी तुझे जरा भी दया नहीं आई; उलटा तू अधिकाधिक प्रसन्न हुआ था; उसे जरा याद कर! उस अनाथ हरिणीने दया करनेके लिए अपनी भाषामें अनेक प्रकारसे प्रार्थना की थी; किन्तु शिकारकी धुनमें उसका आन्तरिक भाव तेरी समझमें नहीं आया। बल्कि रौद्र ध्यानके द्वारा तू उलटा उसे मारकर प्रसन्न हुआ। उस समयके रौद्र ध्यानसे तूने नरक गतिमें जानेका आयुष्य भी निकाचित रूपसे बाँध लिया है। अतएव अब कोई उपाय नहीं हो सकता।"

किन्तु भगवन्! कोई मार्ग हो तो बताईये;

जिससे कि मुझे नरकमें न जाना पड़े !" राजा श्रेणिकने पूछा :—

"राजन् ! किसलिए खेद करते हो ? किये हुए शुभा-शुभ कर्म तो कभी भी अन्यथा-व्यर्थ नहीं हो सकते। अतएव तुम नरकमें तो अवश्य जाओगे। हम भी निकाचित् कर्मोंको क्षय करनेमें समर्थ नहीं हैं। फिर भी तुम आगामी चौबीसीमें इस भरतक्षेत्रमें मेरे जैसे ही स्थिति वाले पद्मनाभ नामके प्रथम तीर्थंकर होगे।"

भगवंतके वचनसे श्रेणिकको किंचित सन्तोष हुआ फिर भी उसने भगवान्से पूछा कि :—भगवन् ; ऐसा उपाय बतलाइये कि जिससे मेरी नरकगति दूर हो जाय !"

"हे राजन् ! यद्यपि ऐसा कभी हो नहीं सकता। फिर भी तेरे मनके संतोषके लिए मैं एक बात कहता हूँ कि "तू तेरी कपिला दासीके हाथसे साधुओंको भिक्षा दिला। अथवा कालसौरिकसे एक दिनके लिये कसाईका काम बन्द करवा दे ; अथवा पुणिया श्रावक एक दिनके सामायिकका फल यदि तुझे देसके ; तो अवश्य काम बन सकता है !"

भगवानका वचन सिद्ध करनेके लिये श्रेणिक परिवार सहित अपने घर लौट गये ; किन्तु उपर्युक्त तीनों

बातों मेंसे एक भी बात महाराज श्रेणिक पूरी न कर सके। न तो कपिला दासीने दान ही दिया और न काल सौरिकने अपना चाण्डाल कर्म यानी नित्यके पाँच सौ पाड़े (भैंसे) मारनेको ही बंद किया और न पुणिया श्रावकने ही अपने सामायिकका फल दिया। इससे महाराज श्रेणिकको अत्यन्त उद्वेग हुआ। उन्हें विश्वास हो गया कि निश्चित ही दुष्कर्मके योगसे भगवानकी वाणी कदापि अन्यथा नहीं हो सकती। हाय! मेरे पापकर्म एवं मेरी दुर्बुद्धिको बारम्बार धिक्कार है!

इकतालीसवाँ परिच्छेद

उसके बाद क्या?

—::❀::—

एक दिन दर्दुरांक नामके देवने श्रेणिक महाराजके समकित की परीक्षा ली; और उनकी अटूट श्रद्धा-भक्ति देख कर देव प्रसन्न हुआ। उसने प्रकट होकर उन्हें एक दिव्य हार तथा दो गोलक प्रदान किये। श्रेणिक राजाने भी वह हार चिल्लणा रानीको दिया और दोनों गोलक नन्दा रानीको दे दिये, किन्तु चिल्ल-

णाको दिव्य हार तथा अपनेको दो सामान्य गोले मिले देखकर नन्दा रानी अप्रसन्न हुई और उसने जब उन दोनों गोलोंको खम्भेसे टकरा कर फोड़ा तो एकमेंसे चन्द्रमाकी कांतिके समान निर्मल दो कुण्डल तथा दूसरेमेंसे देदीप्यमान् दो रेशमी वस्त्र निकले। अतः नन्दाने प्रसन्न होकर वे दिव्य कुण्डल एवं दोनों रेशमी वस्त्र ग्रहण कर लिये; क्योंकि महान् पुरुषोंको जगत्‌में किसी समय अनसोचा लाभ भी हो जाता है।

एकबार राजगृह नगरमें रोहिणिया नामक चोरका उपद्रव बहुत बढ़गया। प्रतिदिन नगरमें चोरी करने पर भी वह पकड़ा नहीं जाता था। अतएव नगरके सबलोग भयभीत हो गये और राजाके सामने जाकर पुकार की :—"हे देव! आप जैसे राजा होते हुए भी हम तो जीते हुए मरेके समान हो रहे हैं। कोई चोर छिपकर निरन्तर चोरी करनेपर भी पकड़नेमें नहीं आ रहा है।

महाजनोंकी शिकायत सुनकर श्रेणिक राजा बहुत ही क्रुद्ध हुए और कोतवालको बुलाकर कहा :—"अरे, क्या तू चोरका भागीदार बनकर मेरा दिया हुआ वेतन खाता है जो कि दिन दहाड़े लुटती हुई जनताको देखकर भी तू चोरको पकड़ नहीं सकता?"

"महाराज! कोई रोहिणिआ नामका चोर नाग-

रिकोंको लूट रहा है। इस बातको जानते हुए भी हम उसे नहीं पकड़ सकते ; क्योंकि वह बन्दरके समान चपलतासे क्षण मात्रमें एक घरसे दूसरे घरमें पहुँच जाता है। यहाँ तक कि नगरका कोट तक लाँघ जानेमें भी नहीं चूकता ; किन्तु जब हम उसका पीछा करते हैं तो दिखाई नहीं देता। उस अदृश्य शक्तिवाले चोरको पकड़ने या मारनेमें हम असमर्थ हो गये हैं। अतः आपका यह कोतवालका अधिकार, वापस लेलीजिये ! कोतवालने लज्जित होते हुये कहा।

कोटवालके इन शब्दोंको सुनते ही महाराजने भृकुटिके संकेतसे अभयकुमारकी ओर देखा। तब उसने कोतवालसे कहा कि :—"तुम नगरके बाहर चतुरंगिनी सेना तैयार रखो और जैसे ही चोर नगरमें प्रवेश करे कि तत्काल सेनाको चारों ओर घेरा डालनेकी आज्ञा देदो। इसके बाद नगरमें हो हल्ला मचा कर चोरको परेशान करो ; जिससे कि जालमें फँसे हुए हिरनकी तरह वह बिजली की गतिसे अपने आप सेनामें कूद पड़ेगा। बस, उसी समय सावधानीसे उसे पकड़कर महाराजके सम्मुख उपस्थित करो।"

अभय कुमारकी आज्ञा पाकर कोतवाल चल दिया और उसने चतुरंगिनी सेना तैयार कर ली ; किन्तु

इस बातका पता किसीको भी न लगने दिया। उधर जिस दिन राजाने यह आज्ञा दी थी, उसी दिन रोहिणिया भी अन्य किसी गाँवको चला गया था ; अतः उसे भी इस बातका पता नहीं लग सका। दूसरे दिन पानीमें हाथीके प्रवेश करनेकी तरह रोहिणियाने नगरमें प्रवेश किया। तत्काल ही सेनाने नगरके चारों ओर घेरा डाल दिया। अतः जालमें फँसनेवाली मछलीकी तरह वह पकड़में आ गया। उसे पकड़कर कोतवालने महाराजके सम्मुख उपस्थित किया।

राजाने चोरको अभय कुमारके सिपुर्द कर दिया। उसने अनेक प्रकारसे पूछनेका प्रयत्न किया कि, तू कहाँका रहनेवाला है ? क्या धन्धा करता है ? और इस नगरमें किसलिये आया है?"

उसने उत्तरमें बतलाया कि :—"मैं शालिग्रामका रहनेवाला दुर्गचण्ड नामका कुर्मी हूँ। मैं स्वाभाविक रूपसे अपने कार्यके लिए ही गाँवमें आया था ; और एक देवालयमें रातको ठहर गया था। बहुत रात बीत जानेपर जब मैं वापस घर जानेके लिये नगरसे बाहर निकला ; तो राक्षसके समान आपके कोतवाल और सिपाहियोंने मुझे पकड़कर आपके सामने हाजिर कर दिया।"

इसपर अभयकुमारने गुप्त रूपसे पता लगानेके लिए

शालिग्राममें सिपाहियोंको भेजा ; किन्तु चोरने पहले ही से लोगोंको संकेत कर दिया था ; अतः उन सबने उसीके अनुसार उत्तर दिया। उस उत्तरको सुनकर राजा और अभयकुमार विचारमें पड़ गये। वे सोचने लगे कि यह चोर होते हुए भी छल-कपट करनेमें बड़ा ही निपुण है। सच है, भलीभाँति की हुई माया जालको समझ सकनेमें स्वयं ब्रह्मा भी असमर्थ हो जाते हैं।

अभय कुमारने चोरको पकड़नेके लिए किसी तीसरे ही उपायसे काम लिया ; किन्तु वह युक्तिभी निष्फल हुई। इसके पहले किसी समय अनायास ही भगवान महावीरके जो शब्द रोहिणियाके कानपर पड़ चुके थे, वे आज काम आये। उन वचनोंके प्रतापसे अभय-कुमारके शिकंजेमें फँसनेसे वह बच गया। इस प्रकार वह सुरक्षित रूपसे छूटकर अपने घर चला गया। अर्थात् किसी भी प्रमाण या युक्तिसे चोर सिद्ध न होनेके कारण उसे छोड़ देना पड़ा ; क्योंकि किसी भी स्थितिमें सज्जन पुरुष नीतिका उल्लंघन नहीं करते। यही कारण है कि कभी-कभी ऐसे निपुण ठगोंरों द्वारा बुद्धिमान् पुरुष भी ठग लिये जाते हैं।"

रोहिणिया चोर राजबन्धनसे तो मुक्त हो गया ; किंतु फिर भी उसमें पूर्वकी भवितव्यताके फलस्वरूप एक

परिवर्तन अवश्य हुआ। उसने विचार किया कि "मैं किनके प्रतापसे मुक्त हुआ हूँ? महावीर स्वामीके अनायास ही कानपर पड़े हुए शब्दोंने मुझे बचाया है। अतः जिन भगवंतके इतनेसे वचन सुनने मात्रसे ही जब मैं बन्धन मुक्त हो गया; तब यदि उन महापुरुषका विशेष प्रवचन सदुपदेश कानपर पड़ सके तो अवश्य ही आत्म कल्याण हो सकता है।" इसप्रकार विचार करके वह महावीर स्वामीकी सेवामें उपस्थित हुआ; और उनकी देशना सुनकर उसकी आत्माको बोध हुआ। अतः किसी जमानेका महान् चोर रोहिणिया आज दीक्षा लेनेको तैयार हो गया; क्योंकि मनुष्यकी चाहे जैसी स्थिति क्यों न हो; अंतमें तो जैसी भवितव्यता होती है वैसा ही होता है।"

रोहिणियाने राजाके सम्मुख जाकर वास्तविक रूपसे सब बातें निवेदन कर दीं। साथ ही राजाके सिपाहियोंको साथ ले जाकर जहाँ-जहाँ चोरीका माल गाड़ रक्खा था, वह सब बतला दिया। फलतः राजाने भी जिस-जिसका वह माल या धन था; उन्हें बुलाकर वापस दे दिया। इसके बाद रोहिणियाने भगवानसे दीक्षा ग्रहण की; और महाराज श्रेणिकने उसका दीक्षा महोत्सव किया।

दीक्षा लेनेके बाद रोहिणिया महातप करके कर्मकी निर्जरा करने लगा। एक उपवाससे लेकर छहमासी उपवास तकका उग्रतप उसने पूर्ण किया। अन्तमें वैभार-गिरिपर पादपोपगमन अनशन करके शुभध्यानमें तत्पर रहता हुआ रोहिणिया महामुनि मनुष्य देह त्यागकर मोक्ष पुरीमें चला गया।

इसके बाद मालव देशके चंडप्रद्योत राजाने अपने चौदह मुकुटधारी राजाओंके साथ अचानक मगध देशपर आक्रमण कर दिया। महासमर्थ चंडप्रद्योतको अपनेसे अधिक बलवान जानकर श्रेणिक महाराजको चिन्ता हुई कि, इस महान क्रूर ग्रहकी तरह आते हुए क्रोधित चंडप्रद्योतको किस प्रकार रोका जाय? अन्तमें राजाने अभयकुमारकी ओर देखा और उसने भी राजाको आश्वासन दिया।

अभय कुमारने युक्तिसे राजा और चौदह सामन्तोंके बीच भेद नीति फैला दी। अर्थात् प्रद्योतके मनमें अपने सामन्तोंके प्रति इस प्रकारकी शंका उत्पन्न कर दी कि वह स्वयं भयभीत होकर अपनी छावनीसे मालव प्रदे-शकी ओर लौट जानेको उद्यत हो गया; किन्तु प्रद्योतके ऐसे व्यवहार-चेष्टासे सभी राजा एवं सेनाको अत्यन्त दुःख हुआ। उस दशामें अन्य चिन्तित सेनाको मगध

राजके सैनिकोंने सहज ही मार भगाया ; उनके हाथी-घोड़े, धन-धान्य आदि उत्तमोत्तम सभी वस्तुओंको लूट लिया। चंडप्रद्योतके भाग जानेसे उसके चौदह महारथी राजा भी उसके पीछे-पीछे लौट गये ; क्योंकि बिना नायकके सेनाकी इस प्रकार दुर्गति हो तो उसमें आश्चर्य जैसी बात ही क्या हो सकती है !

चंडप्रद्योत राजा एकदम अपने नगरमें चला आया और उसके चौदह मुकुटधारी राजा भी पीछे-पीछे आपहुँचे। इसके बाद परस्पर वार्तालाप होने पर जब उन्होंने अपनी वफादारीका प्रमाण दिया ; तब चंड-प्रद्योत राजाको अभय कुमारकी कूटनीतिका पता चला। चंडप्रद्योत राजाने बहुत कुछ उलट फेर किया ; किन्तु हाथमें आई हुई बाजी वह हार चुका था ; अतएव अब पछताना व्यर्थ ही था। इसीलिए अन्य किसी समय मगध राजको फँसानेको बात मनमें रखकर वह अपना समय व्यतीत करने लगा।

एकबार महावीर स्वामी राजगृह नगरमें पधारे उस समय उनके साथ एक महान् तेजस्वी मुनिको देखकर अभय कुमारने भगवंत से पूछा :—"हे प्रभो ! ये कौन हैं ?"

भगवंतने बतलाया कि:—"ये महापुरुष सिन्धु सौवीर देशके वित्तभय नगरके स्वामी उदायन

राजर्षि हैं।" इत्यादि उनका इतिहास भी कह सुनाया; और अन्तमें कहा कि :—"इस चौबीसीमें अंतिम राजर्षि ये उदायन ही हैं। इनके बाद कोई भी राजा दीक्षा ग्रहण नहीं कर सकेगा।"

वीर भगवंतको वन्दन करके अभय कुमारने घर आकर महाराजसे निवेदन करते हुए दीक्षा लेनेकी आज्ञा माँगी। ईसपर मगध राजने बहुत कुछ आनाकानी की, और राज्य लेनेको भी कहा; किन्तु अभय कुमारने राज्य लेनेसे मनाकर दिया; और अपनी दीक्षा लेनेकी बातपर ही वह कायम बना रहा। अन्तमें मगधपतिसे अनुमति प्राप्तकर अभय कुमारने प्रभुसे चारित्र ग्रहण किया। उसके साथ-साथ उसकी माता नन्दा रानीने भी स्वामी की आज्ञा प्राप्तकर चारित्र अंगीकार किया। स्वयं दीक्षा लेनेके उद्देश्यसे उसने वे दोनों कुण्डल और रेशमी वस्त्र हल्ल-विहल्लको दे दिये। इसकेबाद अभय कुमार विविध प्रकारसे चारित्रका पालन कर सर्वार्थसिद्ध नामके पंचम अनुत्तर विमानमें देव रूपमें उत्पन्न हुए और उसकी माता नन्दाने भी आत्म-साधन किया।

इसप्रकार अभय कुमारके दीक्षा लेनेके बाद एक-दिन मगधपति श्रेणिकने विचार किया कि :—"महा-

नुभाव अभयने तो दीक्षा ग्रहणकर अपना स्वार्थ सिद्धकर लिया, किन्तु राज्यका उत्तराधिकारी भी वही था। अतएव अब उसके पश्चात् राज्यका अधिकारी मेरा पुत्र कोणिक ही हो सकता है; क्योंकि वह महान् पराक्रमी होनेसे उसके मस्तकपर राज्यभार डालकर मुझे भी अब आत्मकल्याण साधना चाहिए।" अतः श्रेणिकने हल्ल-विहल्लको अठारह चक्रका हार और सेचनक हाथी देकर संतुष्ट किया और शुभ मुहूर्तमें कोणिकको राज-मुकुट धारण करानेका निश्चय किया।

किन्तु इधर कोणिककी नीयत भी बिगड़ी। अपने काल आदि दस बन्धुओंको एकत्रकर उसने एकान्तमें विचार किया कि, अपना पिता वृद्ध हो गया है; फिर भी वह राज्यसे तृप्ति नहीं पा सका है, किन्तु संसारकी यह नीति है कि जब पुत्र कवचधारी हो जाय; तब राजालोग व्रत ग्रहण कर लेते हैं। हमारे ज्येष्ठ बन्धु अभयको धन्य है कि, जिसने युवावस्थामें ही राज्यलक्ष्मी त्यागकर व्रत ग्रहण कर लिया; किन्तु हमारा विषयांध पिता तो इस बातपर कुछ ध्यान ही नहीं दे रहा है। ऐसी दशामें तो हमें ही उसको समझा देना होगा। अर्थात् उसे बाँधकर कारागृहमें डाल देना और हमें राज्य भार ग्रहणकर ग्यारह भागोंमें बाँट लेना चाहिए।

क्योंकि इस प्रकार समयानुकूल कार्य करनेसे हमें किसी प्रकार भी अपवादके भागी नहीं होना पड़ेगा।

कोणिककी इस योजनाको सुनकर काल आदि उसके अन्य बन्धु भी भवितव्यताके योगसे उसकी बातमें सहमत हो गये। इसके बाद शीघ्र ही एक दिनके लिए इसकामको पूरा करनेका निश्चय करके वे विदा हो गये, किन्तु दूसरे ही दिन कोणिकको अपना निश्चय पूरा करनेका मौका मिल गया।

बयाँलीसवाँ परिच्छेद

अन्तमें

—::❀::—

एक दिन अवसर पाकर कोणिकने अपने सुभटोंके साथ एकान्तमें मन्त्रणा करते हुए पिता मगधराज श्रेणिक-बिंबिसार पर आक्रमण करके उन्हें कैद कर लिया। उन्हें कारावासमें डालकर उनपर सख्त चौकी पहरा लगा दिया। साथ ही पहरेदारोंको इस बातकी भी सख्त-ताकीद करदी गई कि कोई भी राजाके पास न जासके।

इसके बाद कोणिक मगधके सिंहासन पर बैठा ; और थोड़े ही दिनोंमें उसका पिता श्रेणिक कारागृहमें परलोकको प्रयाण कर गया। इसी प्रकार कोणिकके सिंहासन पर बैठनेके बाद लगभग आठ वर्षके बीच बुद्धने भी अस्सी वर्षकी अवस्थामें निर्वाण प्राप्त किया। कोणिक पहले बुद्धका उपासक बना था ; किन्तु बादमें वह उनका शत्रु भी हो गया था।

अपने बाहुबलसे कोणिकने पृथ्वीके समस्त राजाओंको अपने अधीन कर लिया था। इस प्रकार तीनों खण्डके राजाओंको जीतकर वह अन्तमें वैताढ्यकी तिमिश्रा गुफाके भी दर्शन कर आया था। उसे तेरहवाँ चक्रवर्त्ती बननेकी प्रबल इच्छा थी ; किन्तु यह लालसा उसके मनमें ही रह गई।

उसके राजा बननेके सोलह वर्ष पश्चात् महावीर स्वामी मोक्ष पदको प्राप्त हुए। उनके पाटपर गौतम स्वामीने सुधर्मा स्वामीको स्थापित किया। महावीर-स्वामीके मोक्ष गमनके बाद लगभग साढ़े तीन वर्षमें चौथा आरा पूर्ण होकर इक्कीस हजार वर्षका पाँचवा आरा आरम्भ हुआ।

लगभग ३२ वर्षसे अधिक समय तक राजगादी भोग-कर अजातशत्रु (कोणिक) चक्रवर्त्ती होनेकी लालसा

मनमें रखते हुए ही परलोक सिधार गया। उसकी राजधानी चम्पा नगरी थी। उसके मन्त्रियोंने उसीके पुत्र उदायोको मगधके सिंहासन पर विठाया। उदायी इस शिशु नागवंशका अन्तिम राजा था। उसने पाटली-पुत्र बसाकर वहीं राजधानी स्थापित की। उसके बाद मगधका साम्राज्य नन्दवंशके अधिकारमें चला गया।

मगधराज बिम्बिसारके समयमें मगधकी राजधानी राजगृहीमें थी। उसके बाद अजातशत्रुने राजगृहीसे हटाकर चम्पानगरीमें राजधानी स्थापित की; किन्तु उसके पुत्र उदायीने चम्पानगरीसे हटाकर पाटलो-पुत्र नामका नया नगर बसाया और वहाँ राजधानी स्थापित की।

मगधराज बिम्बिसार पहले बौद्ध था और बादमें श्री महावीर स्वामीके परिचयमें आनेपर वह जैन बन गया था। यह इतिहास जग जाहिर होनेसे अन्य ग्रंथों द्वारा जान लेना चाहिये। बुद्ध और महावीर समकालीन थे। श्री महावीर स्वामीने केवलज्ञान प्राप्त करनेके बाद पृथ्वीपर अहिंसा धर्मको प्ररूपणा की और पहलेसे चले आते हुए धर्मकी मंद ज्योतिको पूर्ण रूपसे प्रकाशमान् बनाया। भारतके कितने ही राजा उनके परम भक्त श्रावक थे। राजगृहीका बिम्बिसार राजा, चम्पानगरीका

अजातशत्रु २, वैशाली नगरीका चेड़ा महाराज ३, काशी देशके मल्लिक जातिके नौ राजा; तथा कौशल देशके लेच्छिक जातिके नौ राजा, २१, पुलाशपुरका विजय राजा २२, अमल कल्पाका श्वेतराजा २३, वीतभय पट्टनका उदायी राजा २४, कौशाम्बी नगरीका शतानिक राजा २५, क्षत्रिय कुण्ड ग्रामका नन्दिवर्धन राजा २६, मालवा-उज्जैनका राजा चण्डप्रद्योत २७, हिमालय पर्वतके उत्तरमें बसे हुए पृष्ठ चम्पा नगरके शाल-महाशाल राजा (दोभाई) २८; पोतनपुरका राजा प्रसन्नचन्द्र २९, हस्तशीर्ष नगरका अदिनशत्रु राजा ३०, ऋषभपुरका धनावह राजा ३१, वीरपुर नगरका वीर कृष्णमित्र राजा ३२, विजयपुरका वासवदत्त राजा ३३, सौगन्धिकका अप्रतिहत् राजा ३४, कनकपुरका प्रियचन्द्र राजा ३५, महापुरका बलराजा ३६, सुघोष नगरका अर्जुन राजा ३७, चम्पा नगरीका दत्त राजा ३८, साकेतपुरका मित्रनंदी राजा ३९, आदि अनेक राजा श्री महावीर स्वामीके भक्त एवं अहिंसा धर्मके उपासक थे। इन राजाओंमें कितनेहीका बौद्ध शास्त्रोंमें उल्लेख आता है। इसपरसे प्रकट होता है कि पहले ये गौतम बुद्धके समागममें आनेसे बौद्ध बने होंगे और बादमें भी महावीर स्वामीके समागममें आनेपर जैन धर्मानुयायी बन गये होंगे।

इसी प्रकार गौतमबुद्ध महावीर स्वामीसे सोलह वर्ष पहले स्वर्ग सिधार गये थे, अतएव गौतमबुद्धकी मृत्युके बाद सोलह वर्ष पर्यन्त महावीरस्वामी विचरते रहे हैं।

गौतमबुद्धके अनेक शिष्योंमें मौद्‌गलायन और सारिपुत्र नामक दो शिष्य मुख्य थे। उन्होंने सभी मतोंके अध्यक्षोंमें बुद्धको उच्चसे-उच्च पद प्रदान कर अपने धर्मकी महत्ताको बहुत बढ़ा दी थी। इसी प्रकार बुद्धके आनन्द नामके एक भक्तने भी बुद्धकी महत्ता बढ़ानेमें पूर्ण रूपसे भाग लिया था।

बुद्धका देवदत्त नामका एक शिष्य भी था। उसने बुद्धको मांस त्यागनेके लिए बहुत कुछ समझाया; किंतु उस शाक्य मुनि बुद्धने उसका त्याग नहीं किया। तब देवदत्त बुद्धको छोड़कर चला गया।

बुद्धके चरित्र परसे प्रकट होता है कि अन्तमें ८० वर्षकी अवस्थामें चन्द नामके स्वर्णकारके यहाँ चाँवलके साथ शूकर-सूअरका माँस पकाया गया था और उस माँसयुक्त चावलको खाकर ही बुद्धकी मृत्यु हुई थी।

इसी प्रकार गौतम बुद्धका जन्म होते ही उसकी माता मायादेवी इस लोकसे विदा हो गई थी। यह भी सुननेमें आता है कि जब गौतमबुद्ध गर्भमें थे; तभी उनकी माताकी मृत्यु हो जानेसे उसका

उदर-पेट चीरकर बुद्धके गर्भकी रक्षा की गई थी। युवराज अवस्थामें वह शिकार करने भी जाता था ; अतएव गृहस्थाश्रममें भी सम्भवतः वह मांसाहार करता होगा। अन्यथा मृत्युके समय तक भी उसकी इस प्रकार मांसकी ओर लालसा क्यों रहती ?

आज भी बौद्धमतके साधु माँस मदिराका उपयोग करनेमें घृणा नहीं करते। इसी कारण माँसाहारी जनतामें उस धर्मका प्रचार विशेष रूपसे होसका है। भारतमें भी उसके दो शिष्योंने उसका उच्चसे उच्च चरित्र कल्पित कर संसारके सम्मुख उपस्थित किया ; और अहिंसा-अर्थात् किसी जीवको न मारनेका सिद्धान्त प्रतिपादन कर लोगोंको अपने धर्मकी ओर आकर्पित कर लिया था। इस प्रकार जीवोंको नहीं मारनेकी उद्घोपणा कर न्यायनीतिका नियम बताया एवं माँस-मदिरा खानेमें पाप न होनेकी मिथ्या प्ररूपणा भी की।

बुद्धके समयसे लेकर अशोकके समय तक इस धर्मका उचित आश्रय प्राप्त हो सका था ; किन्तु उसके बाद राजा कनिष्कके समयमें भी इस धर्मने खासी प्रगति की थी। ई० सन् १००० वर्षके लगभग-पर्यन्त यह धर्म भारत वर्षमें विद्यमान था ; किन्तु उसके बाद भारत वर्षमें उसका अस्तित्व नष्ट हो गया। आज चीन

आदि मांसाहारी देशोंमें करोड़ोंकी संख्यामें उनके भक्त देखनेमें आते हैं।

श्री महावीर स्वामी बुद्धके समकालीन होनेसे बुद्धके शिष्य मौद्‌गलायन और सारीपुत्रने महावीरस्वामीके चरित्रका आदर्श सामने रखकर बुद्धके रूपको महावीर स्वामीके समान प्रतिपादित किया। संसारके सामने भी उनका चरित्र इसी रूपमें प्रकट हुआ। इसी कारण आज भी उस कल्पित चरित्रके द्वारा ही बुद्धकी महत्ता लोगोंमें गाई जा रही है।

श्री महावीर स्वामीके पश्चात् सुधर्मा और उनके पाट पर जंबुस्वामी हुए। तत्पश्चात् उनके पाटपर छह चौदह पूर्वी हुए और उसके बाद दशपूर्वी हुए। इस प्रकार क्रमशः अविच्छिन्न रूपसे आजतक उनकी पाट परम्परा चली आ रही है।

मगधराज बिम्बिसार, अजातशत्रु और उदायीके पश्चात् मगधका साम्राज्य नव नन्दोंके हाथमें गया। उनके बाद मौर्यवंशकी सत्ता स्थापित हुई। तदनन्तर कालक्रमसे उनके बाद भी अनेक राजा हुए। इस प्रकार अनेक सत्ताएँ स्थापित हुईं और नष्ट हो गईं।

जगत्‌के आरम्भमें ऋषभदेव भगवानने जैनधर्म चलाया। उस समय भारतवर्षमें जैन-धर्म ही राष्ट्र धर्मके

रूपमें था। उसके बाद सांख्यदर्शन उत्पन्न हुआ। तीसरे नम्बरमें लोग वैदिक कर्मकाण्ड करने लगे अतः वेदान्त मत निकला, उसके बाद पातंजलि मत, पाँचवा नैयायिक मत और छठा बौद्ध मत और सातवाँ वैषेशिक मत चला। तत्पश्चात् शिव मतकी उत्पत्ति हुई। उसके बाद वाममार्गी, रामानुज माध्व एवं निम्बार्कके क्रमसे कई मत उत्पन्न हुए। कबीर मत, नानक मत, वल्लभ मत, दादूमत, रामानन्दियोंका मत, स्वामीनारायणका मत, ब्रह्म समाजियों और इक्कीसवाँ आर्य समाज मत दयानन्द सरस्वतीने स्थापित किया। जैनधर्मके बाद काल-बलके क्रमसे एकके बाद दूसरे नये धर्म जगत्में आरम्भ हुए हैं।

यद्यपि पाँचवें आरेमें इक्कीस हजार वर्ष पर्यन्त जैन-धर्म अखण्डित बना रहेगा; फिर भी इस समय दो हजार वर्षके भस्मग्रहकी स्थितिके कारण वह जगमगाती ज्योति मन्द हो गई है। वर्तमान समयमें जो कुछ विचित्रता दिखाई देती है, वह सब इसीका परिणाम है। वैसे तो अभी इस धर्मकी विशेष महत्ता प्रकट होनेका मंगलाचरण होनेमें थोड़ा ही समय शेष प्रतीत होता है। तेइसवें उदयमें अब इक्कीस उदय होनेको हैं। इन उदयोंमें कई प्रखर युग प्रधान होंगे कि जिनकी अपूर्व शक्तिके समक्ष सभी सत्ताधारियोंको मस्तक नवाँना पड़ेगा। बड़े

बड़े अभिमानियोंके गर्व भी उनके सम्मुख गलित हो जायेंगे। इस जैन धर्मके उदयके साथ ही भारतका भी अभ्युदय होना निश्चित है। इस अहिंसाके उद्धारमें ही भारतवर्षकी उन्नति निहित है। जबतक जैन-धर्म इस भारतवर्षमें विद्यमान है, तबतक भारतकी उन्नति उसके उत्कर्ष, तेज, गौरव, और व्यवहार भी जीवित हैं। अतएव जैनधर्ममें जितनी ही क्षति पहुँचेगी; उतनी ही इनमें भी क्षति होगी। इसीप्रकार जितना ही इस जैन धर्मका उत्कर्ष होगा, उतना ही भारत वर्षका भी उत्कर्ष समझना चाहिए। पहले यह बात सिद्ध हुई दिखाई दी है। जबतक भारतवर्षपर जैन-धर्मका जोर रहा; तबतक इस देशके उत्कर्ष तेज, गौरव, स्वातन्त्र्य और कला कौशलके अपूर्व स्रोत प्रवाहित होते रहे, किन्तु जैन धर्मकी अवनतिके साथ ही ये सब उतकर्ष नष्ट होकर लोग हिंसापरायण एवं मांसाहारी हो गये और आज यह स्थिति प्राप्त होनेका अवसर आ गया। अतः भविष्यमें जब लोग अपनी भूल समझकर पाप मुक्त होकर जैन धर्मके उपासक, दयालु बन जायेंगे; तब उसके साथ-साथ ये सब उत्कर्ष अपने आप चले आवेंगे।

इस मङ्गलमय जैन धमकी गूॅज संसारके कोने-कोनेमें फैल जाय; जिससे कि प्रत्येक समाजके अन्तःकरणमें